बडा अभिमान है कि महाराणाओंने आर्योंके वर्णाश्रमधर्मकी रक्षा करके सच्चे क्षात्रधर्मका गौरव रक्खा ।

धन्य है सीसोदियोंके वंशको जिसमें वडे २ धर्माभिमानी वीरपुङ्गवोंका जन्म हुआहै कि, जिनके वीरचरित यावच्चन्द्र-दिवाकर संसारमें स्थायी होगये हैं । अत एव मैंने वहुत कालसे महाराणाओंके सम्बन्धमें जो फुटकर चमत्कारी काव्य मिले उनका धीरे २ संग्रह किया, और इनकी अधिक प्रतियां होजायं तो वहुत अच्छाहो यह विचार कर "महाराणायशप्रकाश" के नामसे पुस्तकाकार छपवा कर विद्वानों की सेवामें उपस्थित कियाहै । यद्यपि मेदपाटेश्वरोंका यश समुद्ररूप है और मेरा उसके संग्रह करनेमें प्रवृत्त होना समुद्रको अञ्जलिद्वारा ग्रहण करनेकी भांति परिहासास्पद साहस है क्योंकि महाराणाओंके यशका भलेप्रकार वर्णन करना तो सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक मान्यवर कर्नल जेम्स टॉड साहव तथा राजपूतानाके भूषण कविवर मिश्रण ठाकुर सूर्यमल्लजी जैसेही विद्वानोंकी लेखनीका सामर्थ्य है कि जिन्होने टाडराजस्थान और वंशभास्कर नामके वृहत् इतिहास ग्रन्थ निर्माण कर देशभरका उपकार कियाहै । परन्तु मेरा अभिप्राय इस संग्रहसे यह है कि जो चमत्कारी काव्य अवतक उपलब्ध हुए हैं उनका किसी वडे ऐतिहासिक ग्रन्थमें संयुक्त न होनेके कारण समयके फेरफारसे लुप्त होनेका संदेह है । आशाहै कि मेरा यह व्यवसाय विद्वानोंको अरुचि कर न होगा तो मैं अपने परिश्रमको सफल समझूंगा ।

आगे मैं इस अवसर पर प्रथम ही प्रथम न्यायकारी और दयालु व्रिटिश गवर्नमेंटका अन्तःकरणसे धन्यवाद करताहूं

कि जिसके शान्तिमय और न्यायपरायण राज्यशासनमे भारतवासियोंको असीम सुख प्राप्त होरहा है जो जगद्विख्यात है। यवनराज्यके पश्चात् जो उपद्रव मरहटो और मीरखां आदि उपद्रवीलोगोंसे भारतवर्ष व राजपूतानेमे हुआ कि जिसके स्मरणमात्रसे भी अत्यन्त संताप होताहै। परन्तु हमारे देशके अहोभाग्य थे जो उन देशनाशकोंके अन्यायसे बचानेके निमित्त परमेश्वरने यहां दयालु गवर्नमेंट ब्रिटानियाका राज्य शासन जमाया जिसका विशेष वृत्तान्त लिखा जाय तो एक पृथक् पुस्तक बन सकती है। राजपूतानेका कौन मनुष्य होगा जो परमदयालु गवर्नमेंट ब्रिटानियाके उपकारोंका स्मरण करता हुआ अपने अन्तःकरणसे परमेश्वरसे यह प्रार्थना न करे कि गवर्नमेंट ब्रिटानियाका धर्मराज्य सदैव वृद्धिको प्राप्त हो। गवर्नमेंट ब्रिटानियाने हमारी प्राचीन और पवित्र राजधानी मेवाड़को मरहटोंके उपद्रवसे बचाकर जो अप्रतिम सहानुभूति की उसका वृत्तान्त बहुतही कृतज्ञताके साथ वर्णन करने योग्यहै जैसा कि टाडराजस्थान आदिमें उल्लेख किया गया है। पश्चात् बहुत प्रसन्नता और कृतज्ञताके साथ कर्नल जेम्स टॉड साहबका धन्यवाद करताहूं कि जिन्होंने 'टाडराजस्थान' नामका बृहत् इतिहास लिखकर क्षत्रियमात्रके साथ अनुपम सहानुभूति की जिससे राजपूतानेका परम उपकार हुआहै। यदि उक्त महानुभावका अतुल परिश्रम न होता तो कब सम्भव था कि हम लोग अपने पूर्वजोंके इतिहाससे अभिज्ञ होते। यह टाड महोदयके ही प्रशंसनीय उद्योगका फल है कि मेवाड़का इतिहास सर्वसाधारणको ज्ञात हुआ और सब लोग महाराणाओंके गौरवसे परिचित हुए। ऐसे सुयोग्य और महान् पुरुषका परिश्रम संसारमें सर्वदा प्रशंसनीय रहेगा।

अब मैं उन महोदयोंका धन्यवाद करताहूं कि जिनसे मुझे इस महाराणा यशप्रकाशके सम्पादनमें सहायता मिली—

(१) बारहठ रामनाथजी रत्नू मैम्बर कौंसिल रियासत किशनगढ़ कि जो राजपूतानेके इतिहास रचयिता प्रख्यातहै। कालान्तरमें इन्हींकी अमृतवाणीसे टाड साहबका बृहत इतिहास वा अन्य अन्य मेवाड़के इतिहासकी कथाएँ कि जो इन्हे उपस्थित हैं सुन २ कर मेरे हृदयमें यह अङ्कुर पैदा हुआ था कि सूर्यवंशकी प्रतिष्ठा रखनेवाले महाराणाओंका काव्यरूप सुयश संग्रह करना चाहिये ।

(२) श्रीमान् स्वर्गवासी स्वामी गणेशपुरीजी महाराजकी जो राजपुतानेमें साहित्यशास्त्रके सुप्रसिद्ध विद्वान् थे और राजधानी मेवाड़में बहुत कालतक रहनेका संयोग हुआथा, उनके मुखारविन्दसे भी अनेक कथाएँ सुनी और उनके बनाये हुए काव्यभी मिले जो महाराणायशप्रकाशमें यथास्थान लिखे गये हैं ।

(३) पंडित गौरीशंकरजी हीराचंद ओझा कि जो इस समय इतिहास वेत्ताओंमें अग्रगण्य हैं। इन्होंने कृपा करके समय समय पर बहुत सहायता दीहै ।

(४) कविराजा भैरूंदानजी बीकानेर जिनसे कि महाराज पृथ्वीराजजी (जो बीकानेर महाराज रायसिंहजीके कनिष्ठ भ्राता हुएहैं और बडे विद्वान् व अद्वितीय सहानुभूति करने वाले तथा प्रसिद्ध ईश्वरभक्त थे जिनको सद्गुणोंके कारण क्षत्रियोंके शिरोमणि कहने चाहिये) का रचाहुआ एक गीत और कुछ दोहे मिले कि जो अद्वितीय हैं ।

(५) कविराजा मुरारिदानजी आशिया महामहोपाध्याय जोधपुर कि जो इस समय राजपूतानेमें वास्तवमें कविराजा पद को सार्थक करनेवाले हैं, उनसे भी कुछ काव्य मिले और उनके अल्प कालके उपदेशसे मुझे इस संग्रहके लिये बहुत ज्ञान प्राप्त हुआ ।

(६) बारहठ कृष्णसिंहजी सौदा एक बहुत प्रशंसनीय विद्वान् और मुझपर बडी कृपा रखनेवाले थे । उनसे प्रायः प्राचीन गीत मिले और उन्होंने स्वयं परिश्रम करके इस पुस्तकके सम्पादनमें सहायता दी जिसका मैं बहुत ही कृतज्ञ हूं दैववश वे इस पुस्तकको मुद्रित नहीं देखसके ।

(७) महियारिया मोड़सिंहजी उदयपुर निवासी इन्होंने भी बहुत उत्तम २ काव्य देकर बहुत रुचिसे मुझे कृतार्थ किया ।

(८) उज्वल फतहकरणजी जो चारण सरदारोंमें उत्तम विद्वान् हैं अपनी रची काव्य वा अन्य प्रकारकी कथाओंसे स्नेहपूर्वक सहानुभूति की ।

(९) कवि ऊमरदानजी 'विरुद छिहत्तरी' प्रथम उन्हींके परिश्रमसे प्राप्त हुई कि जिसको सिंघी बच्छराजजी पहले छपवा भी चुके हैं । उस पुस्तकमें भावार्थका उल्लेख नहीं किया गया था इस लिये भावार्थ सहित महाराणायशप्रकाशमें पुनः छपवाना उचित समझा गया ।

(१०) युकतीदानजी देथा व हिंगलाजदानजी कवियाने भी स्वयं रचित काव्य देनेसे मेरे अभिप्रायको संतुष्ट किया ।

(११) मुन्शी समर्थदानजी मालिक राजस्थान यन्त्रालय अजमेर कि जिनसे इस ग्रन्थके संग्रहमें सहायता मिली ।

मैं उन्हींके प्रेसमें इस ग्रन्थके छपानेका अभिलाषी था और वे रुचिपूर्वक इस ग्रन्थकी छपाईके सुधार करनेमें सन्नद्ध थे परन्तु संयोग वश उनके शरीरमें अस्वस्थता होनेपर "श्रीवेंकटेश्वर" प्रेस बम्बईमें इस ग्रन्थके छपानेका प्रयत्न किया कि जहां सेठ खेमराजजीने बहुत प्रीतिपूर्वक पुस्तकको पूर्णताको पहुंचाया ।

(१२) बारहठ बालाबक्सजी पालावत हणूत्या ग्रामनिवासीने इस पुस्तकको शुद्ध करने वा काव्योंका भावार्थ लिखानेमें बहुतही दत्तचित्त होकर परिश्रम किया कि जिससे सर्वसाधारणके समझनेमें बडा उपयोग होगा इनके परिश्रमका मैं बहुत आभारी हूं ।

(१३) साहित्यशास्त्री पण्डित माधवप्रसादजी गौड़ जैपुरनिवासी जिन्होंने बारहठजीकी सम्मतिसे रुचिपूर्वक इस कार्यमें परिश्रम करके इसको सफलता पर पहुंचाया ।

जो जो काव्य रुचिकर हुए मैंने संग्रह किये हैं और जहां तक होसका सर्वसाधारणके समझनेके लिये उनका अर्थ भी लिखा गयाहै परन्तु मेरा यह विचार कदापि नहीं है कि इसमे कोई त्रुटि न हो प्रत्युत मैं सर्व विद्धज्जनोसे प्रार्थना करताहूं कि जहां कहीं किसी प्रकारकी अशुद्धि वा भूल हो उसे सुधारेगे तो मैं अत्यन्त कृतज्ञ होऊंगा ।

सब सज्जनोंका कृपाभिलाषी—

भूरसिंह शेखावत,

मलसीसर राज्य—जयपुर.

विशेष द्रष्टव्य।
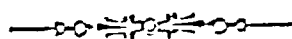
(१) इस पुस्तकमें प्रथम महाराणाओंका वंशक्रमानुसार संक्षिप्त वृत्तान्त लिखा गया है और आगे जिन २ महाराणाओंके काव्य मिले उन काव्योंकी स्थिति है। एवं जिन काव्योंके सम्वन्धमें विशेष लिखना आवश्यक समझा गया उनके नीचे आवश्यक विषय नोट किये गये हैं। नोटोंके नीचे सर्वसाधारणके सुबीतेके लिये काव्योंका भावार्थ भी संयुक्त किया है।

(२) 'डिगल' भाषामें ऋ, ॠ, ऌ, ए, ऐ, औ ये स्वर नही होते। और (श) तालव्य तथा (ष) मूर्धन्यके स्थानमें दन्त्य सकारही लिखा जाताहै। इसी प्रकार 'ख' के स्थानमें 'ष' और अनुस्वारका अनुस्वारही रहताहै परसवर्ण वा अनुनासिक (अर्धानुस्वार) नही होता।

इस पुस्तकमें प्रायः डिंगल भाषाकी कविता आई है इस लिये डिंगल कविताओंका लेख उक्त नियमानुसारही किया गया है परन्तु छन्दोभङ्गके भयसे कहीं २ लघु अक्षरपरके अनुस्वारको ँ अर्धानुस्वार बना दियाहै।

यह फेरफार डिंगलके नियमोंके अनुरोधसे करना पड़ाहै सो पाठकगण उन २ स्थलोंपर अशुद्ध न समझें।

सूचीपत्र।

इति शम् ।

इति

अनुक्रमणिका

समाप्ता ।

॥ श्रीः ॥

महाराणा-यशप्रकाश।

मङ्गलाचरण।

सोरठा।

जिहि सुमिरत सिधि होइ, गणनायक करिवरवदन।
करहु अनुग्रह सोइ, बुद्धिराशि शुभगुन सदन॥१॥
मूक होइ वाचाल, पंगु चढइ गिरिवर गहन।
जासु कृपा सु दयाल, द्रवहु सकल कलिमलदहन २॥

[गोस्वामी तुलसीदासजी.]

दोहा।

अङ्ग भसम, अरधँग उमा, शीश गङ्ग, शशिलेश।
रिपु अनङ्ग, मङ्गल करन, एकलिङ्ग आदेश॥३॥

[बारहठजी बालाबख्शजी]

वह सूर्यवंश परम धन्यहै जिसमे महाराजाधिराज श्रीरामचन्द्र जैसे मर्यादापुरुषोत्तमका अवतार हुआहै। उन्हीं महाराजा रामचन्द्रके पुत्र कुश और लवकी वंशपरम्परामें राठौड़, कछवाहे और सीसोदिये नामके ३ वंश वर्त्तमानमे सुप्रसिद्धहैं। (कितनेही विद्वानोका मतहै कि अयोध्याके अन्तिम राजा सुमित्रसे यह उक्त वंश विभाग हुआहै) जिनमे महाराणा साहबका यह वंश

लवसे प्रचलितहै । जिसकी प्राचीन राजधानी अयोध्यामें रही । और अयोध्या छूटने पीछे लवपुर(लाहोर)वा वल्लभी पुरमें रही ।

वल्लभीपुरके अन्तिम राजा शिलादित्यपर शत्रुओंने आक्रमण किया जो गूजर कहेजाते हैं, राजा शिलादित्य उस युद्धमें मारे गये और उनकी गर्भवती राणी पुष्पावती आबू पर्वतकी उपत्यका (निकटकी भूमि) में देवी अंबिका (अंबाजी) के दर्शन करनेके लिये आई थी सो उसने भगकर ईडरके पर्वतोंमें प्राण-बचाये जहां उसके गुहनामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसे गुहादित्यभी कहते हैं और उन्हीके नामसे इस वंशको 'गुहिलोत' (गुहिल पुत्र) कहते हैं ।

राजा गुहिलसे लगाकर महारावल् वापातक सात राजा हुए जिनके नाम ये हैं ।

---

(१) प्रायः ऐतिहासिक विद्वान् लोग उक्त वंशको कुशसे भी मानते है ।

(२) सन् १९०६ से लेकर "खड्गविलास" प्रेस वांकोपुरसे "टाड् राजस्थान" का हिन्दी अनुवाद मासिकपत्रके रूपमे प्रकाशित होता है । उसके प्रथमवर्षकी ९ वीं संख्यामे उक्त अनुवादके सम्पादक प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् पं०गौरीशंकर हीराचन्द ओझाने पृष्ठ३१७वे पृष्ठके सिरेपर १३ नंवरका टिप्पण लिखा है सो नीचे लिखा जाता है—सन् १९०२ मे हमने टाड् साहिबका जीवनचारित लिखा, उस समय तक टाड् साहिबके लेखानुसार हम भी यहही मानते थे कि मेवाडके राजा "वल्लभी" के खानदानसे निकले हैं. परन्तु उसके पीछेके शोधसे कितने एक प्रमाण ऐसे मिले जिनसे पायाजाता है कि मेवाडके राजाओंका वल्लभीके राजाओंसे कुछभी सम्बन्ध नहीं है मेवाडमे गुहिल वंशका राज्य स्थापन करनेवाला गुहिल वा गुहदत्त गुजरातके आनन्दपुरनामक नगरसे आया था ऐसा लिखा मिलता है ।

१ गुहिल वा गुहादित्य

२ भोज

३ महेन्द्र

४ नाग

५ शील

६ अपराजित (ये वि० सं० ७१८ में विद्यमान थे)

७ वापा (महेन्द्र) ने (वि० सं० ७९१ मे चित्तौड़ मोरि चहुवानसे विजय किया और वि० सं ८१० नागदा नगरमे समाधि ली)

[नोट—जिन राजाओंके शक संवत् नहीं मिले न जिनकी कविता उपलब्ध हुई उनके केवल नामही देदिये हैं और जिनके संवत् मिले है वे उनके नामके आगे देदिये हैं और जिनकी कविता मिली है उनकी कविता और इतिहास आदि भी लिख दिये हैं यह बात सर्वथा असंभव है कि गुहिल और भोज जैसे वीर और वदान्य राजाओंको कवि भूल गये हो पर अभाग्य वश हमको उनकी कविता प्राप्त नहीं हुई संभव है कि किसी पुस्तक विशेषमे न लिखे जानेके कारणसे लुप्त होगई हो इसी लिये हमने इस पुस्तकका संग्रह कियाहै कि इस समय तक जो कविता प्राप्त है वह तो लुप्त न हो जाय।]

महारावल श्रीवापा।

रावल महेन्द्रने 'जिनका उपपद वापा था, क्योंकि संसार इन्हे पिता मानता था, मोरियोंसे विक्रमी संवत् ७९१ में

---

१ यहां ७ नंबर पर पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझाने अपनी टाड राजस्थानकी टिप्पणीमे पृ० नं. ३२१ मे "महेन्द्र" दूसरा लिखकर वापाको ८ नंबर लिखा है।

चित्तौड विजय किया और संवत् ८१० मे नागदा नगरकी सीमामे समाधि ली वह स्थान श्री एकलिङ्गेश्वरकी पुरीके समीप उत्तर दिशामे अव भी वापारावलके नामसे प्रसिद्ध है इनके पिताका नाम अपराजित था भोज इनसे पांच पीढ़ी पहिले हुए थे.

गीत (१) महारावल श्रीबापाजीका।

पूरवंजां[१] तणी म्रजाद न पलटी,
पहलां लें हींदू प्रबल ॥
वसूं[२] जीत सायरां बिचाले,
वापै लीधी आप वल ॥ १ ॥
मोरी मारलिया मेवाड़ै,
भांमी भोजतणा वलभीम ॥
रामलीह[६] लोपी नह रावल,
सात समँद विच कीवी सीम ॥ २ ॥
जिका सस्त्र लोपी नह जावै,
क्षत्रियांगुर ताँ अडँग खँमी ॥
वापै लीधी आपतणैं वल,
जोजन कोड़ पचास जमी ॥ ३ ॥

गढ गढ पत गाजें गहलोतां,
कुळ सारांमें येम कह्यो ॥
समँदां परें न गो दससहँसो,
राम वाणरै मांह रह्यो ॥ ४ ॥

[नोट-सोदा वारहठ कृष्णसिंहजीका मत है कि यह गीत बापाके समयका बना हुआ नहीं प्रतीत होता किसी कविने पीछेसे बनाया है ।]

टीका-महाराणा बापाने अपने१ पूर्वजोंकी मर्यादा नहीं छोड़ी। किन्तु प्रबल बापाने २ सागरोंके ३ मध्यकी ४ भूमिको अपने बलसे जीतली ॥ १ ॥ हे अतुल बलशाली भाभी अर्थात् ५ न्योछावर करने योग्य मेवाड़पति बापा ! तैंनें मोरियोंका नाश करडाला । हे रावल ! तैंनें ६ रामचन्द्रकी मर्यादाको नहीं तोड़ी और सात समुद्रोंके बीचमें अपने राज्यकी सीमा नियत करली ॥ २ ॥ क्षत्रियोंमें गुरु अर्थात् श्रेष्ठ बापाने ७ उस ८ नहीं हटनेवाली मर्यादाको ९ सहनकी और अपने बलसे पचास कोटि योजन पृथ्वी लेली ॥ ३ ॥ १० दश हजार गामोंके पति गहलोत वंशी बापाने अनेक गढ़ और गढ़पतियोंका गर्व गंजन किया अर्थात् जीतलिये । और समुद्रोंके पार नहीं गया मानों रामबाणकी जो मर्यादा है उसके इस पारही रहा नहीं तो बापा समस्त भूमण्डल ले लेता। भाव यह है कि बापाने पचास कोटि योजन भूमिही ले ली ॥ ४ ॥

मनोहरम् (२)

धारि कठिनाई धीर गुरुकी चराई धेनु,
इष्ट वर पाय पुनि पूर निधि पाई तैं ॥
विक्रमाब्द इन्दु नन्द द्वीप मानमोरी मारि,
चित्रकूट राजधानी जबर जमाई तैं ॥
खुरासान आदिक घमंडी दूरदेशी घाय
पाइ प्रभुताई सुख नीति सरसाई तैं ॥
बीर बर ! बापा ! यों बिथारि निज बाहुबल,
आसमुद्र छोनी एक आतपत्र छाई तैं ॥

[**नोट**–यह कवित्त महाराणा श्रीफतहसिंहजीने बापा-रावलकी तसवीरपर लिखानेके लिये बारहठ कृष्णसिंहजीसे बनवाया ।]

टीका–धीर बापा ! तैंनें दृढता धारण करके १ गुरु "हारीत" ऋषिकी गाय चराई । और उनसे वरदान २ पाकर तैंने पूर्ण निधि (सम्पत्ति) पाई । ३ विक्रम संवत् ७९१ में मोरियोंको मारकर हे बलवान् ! तैंने ४ चित्तौड़की राजधानी जमाई । खुरासान आदिक घमंडी विदेशियोंको ५ मारकर और प्रभुतापाकर तैंने सुखनीति सरसाई । हे वीरवर बापा ! इस प्रकार अपने बाहुबलको बिथारि अर्थात् विस्तार करके ६ समुद्र पर्यन्तकी ७ पृथ्वीको एक ८ छत्रसे छाई अर्थात् अपने अधिकारमें करली ॥

वापा और गड लक्ष्मण सिंहके बीचमें ३७ राजा हुयेहैं इनके विषयकी भी कोई कविता हमको उपलब्ध नहीं हुई

(१) प. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा महारावल वापा और गड-लक्ष्मणसिंहजीके बीचमें होनेवाले राजाओंकी संख्या ३७ से अधिक मानते है। वे अपने सम्पादित "टाडराजस्थान" वर्ष १ संख्या ९ के ३२१ वे पृष्ठमे लिखते है कि——आजतकके शोधके अनुसार शुद्ध कोहुई गुहिलसे राणा हमीरसिंह तककी मेवाडके राजाओंकी वंशावली——(वापा तककी वंशावलीमे विशेष भेद नहीं है इसलिये वापाके आगेसेही वंशावली लिखी जाती है। यद्यपि महाराणा गड-लक्ष्मणसिंह तकही इस वंशावलीका उल्लेख करना आवश्यक है तथापि राणा हमीरसिंह तककी पीढियोंमे विसंवाद (न मिलना) पाया जाता है इसलिये हमीरसिंह पर्यन्तकी पीढियोंका उल्लेख कियाजायगा। इन क्रममे सत्यासत्य निर्णय करना सुयोग्य पाठकोंके विचारपर निर्भरहै।)

८—कालभोज (वापा)—मेवाडका प्रसिद्ध राजा वापा या वापारावल यहही होना चाहिये, जिसको डूंगरपुर इलाकेसे मिलेहुए कितने एक शिला लेखोंमे खुम्माणका पिता लिखा है, और ऐसा ही मेवाडकी ख्यातोंमे लिखा मिलता है. राणा रायमलके समयके "एकलिङ्गमाहात्म्य"से पाया जाता है कि उसने विक्रम सं० ८१० (ई० स० ७५३) मे राज्य छोडा था।

९—खुम्माण

१०—मत्तट

११—भर्तृभट

१२—सिंह

१३—खुम्माण (दूसरा)

१४—महायक

और न शक संवत् हस्तगत हुए अतः केवल नामही लिख देते हैं ॥

१५–खुम्माण (तीसरा)

१६–भर्तृभट (दूसरा)–इसकी राणी महालक्ष्मी राठौड़ वंश की थी जिससे अल्लटका जन्म हुआ था ।

१७–अल्लट–इस राजाके समयका शिलालेख वि० स० १०१० ई० स० ९५३) का मिला है। इसकी राणी हरियादेवी हूण राजाकी पुत्री थी.

१८–नरवाहन–इसके समयका एक शिलालेख वि० सं १०२८ (ई० स० ९७१) का मिला है इसकी रानी चौहान राजा जेजयकी पुत्री थी।

१९–शालिवाहन–

२०–शक्तिकुमार–इसके समयका एक शिलालेख वि० सं० १०३४ (ई० स० ९७७) का मिला है ।

२१–अंबाप्रसाद

२२–शुचिवर्मा.

२३–रनवर्मा.

२४–कीर्तिवर्मा

२५–योगराज.

२६–वैरट

२७–हसपाल

२८–वैरिसिह

२९–विजयसिह–इस राजाका विवाह मालवाके प्रसिद्ध परमार राजा उदयादित्यकी पुत्री श्यामलदेवीसे हुआ था, जिससे आल्हणदेवी नामक कन्या उत्पन्न हुई थी, जिसका विवाह हैहयदेश

१ कालभोज

२ खुम्माण

---

* चेदी-(कलचुरी)-वंशी राजा गयकर्ण-देवसे हुआ था राजा विजयसिंहका एक ताम्र-पत्र विक्रम सं० ११६४ (ई० स ११०७) का मिला है।

३०-अरिसिंह
३१-चौंडसिंह
३२-विक्रमसिंह
३३-रणसिंह या करणसिंह-इस राजामें दो शाखा फटी

रावल शाखा	राणा शाखा
३४-क्षेमसिंह	राहप
३५-सामन्तसिंह	नरपति
३६-कुमारसिंह	दिनकर
३७-मथनसिंह	जशकरण
३८-पद्मसिंह	नागपाल
३९-जैत्रसिंह	पूर्णपाल
४०-तेजसिंह	पृथ्वीपाल
४१-समरसिंह	भुवनसिंह
४२-रत्नसिंह	भीमसिंह
	जयसिंह
	लक्ष्मणसिंह

लक्ष्मणसिंह → अरिसिंह, अजयसिंह

अरिसिंह → ४३ हमीरसिंह

३	भर्तृभट
४	सिंह
५	अल्लट (विक्रमी संवत् १०१० मे विद्यमान थे)
६	नर वाहन
७	शालि वाहन
८	शक्ति कुमार (वि. सं. १०३४मे विद्यमान थे)
९	महारावल शुचिवर्मा
१० "	नर वर्म्मा
११ "	कीर्ति वर्म्मा
१२ "	वैरट
१३ "	वैरिसिंह
१४ "	विजयसिंह
१५ "	अरिसिंह
१६ "	चौंडसिंह
१७ "	विक्रमसिंह
१८ "	क्षेमसिंह
१९ "	सामन्तसिंह
२० "	कुमारसिंह
२१ "	मथनसिंह
२२ "	पद्मसिंह
२३ "	जैत्रसिंह (वि. सं १२७०मे विद्यमान थे)
२४ "	तेजसिंह (वि. सं १३२४ मे विद्यमान थे)
२५ "	समरसिंह (वि. सं १३३० से १३४४तक थे)
२६ "	रतनसिंह (वि.सं. १३५९ मे विद्यमान थे)

२७ " कर्णसिंह
२८ महाराणा राहप
२९ " नरपति
३० " दिनकरण
३१ " यशकरण
३२ " नागपाल
३३ " पूर्णपाल
३४ " पृथ्वीपाल
३५ " भुवलसिंह
३६ " भीमसिंह
३७ " जयसिंह

---

(१) इनके लिये "वंशभास्कर" की चतुर्थराशिमें निम्नलिखित प्रकारसे उल्लेख किया है-

पादाकुलकम्।

"पट्ट इत चित्रकूट गढ भूपति, राना पृथ्वीमल्ल धर्मरति।
काशी पत्त ईश दर्शन कहँ, तनु रन तजिय जानि गोवध तहँ ॥

सचरण गद्यम्।

पहिलेंहू याके पिता राना पुण्यपाल १ जाको पूर्णमल्ल १ हू कहैं तानें अरु याही पृथ्वीमल्लके पितामह नागपाल २ नेंहू विश्वेश्वरकी यात्रामें ऐसेंही गोवधके निमित्त महा अवमर्दमें देह डारे। तैसेंही राना पृथ्वीमल्लहू काशीपुरीके परिसरमें महारन रचि तनु तजत सुरभिनके सन्तापक सहस्रन म्लेच्छ मारे॥ ऐसे म्लेच्छनको मण्डल प्रतिदिन वलिष्ट वनि आर्यावर्तमें थाना जमावत ठाम २ फैलि आर्यधर्मको ह्रास करत भयो। अरु इनको राना पृथ्वीमल्लको तनूज "भुवनाङ्ग" जाको दूजे नाम करि भीमसिंहहू कहें सो चित्रकूटको आधिपत्य धरत भयो॥"

महाराणा श्रीगढलक्ष्मण सिंहजी।

महाराणा गढलक्ष्मणसिंहजी कौनसे विक्रमी संवत्में जन्में और कौनसेमे गद्दी विराजे सो अनिश्चित है, इनका देहांत वि. सं. १३९० के समीप हुआ, दिल्लीके बादशाह मुहम्मद तुगलकके साथ वि. सं १३९० के समीप इनका युद्ध हुआ जिसमे उक्त महाराणा अपने पुत्रों और भाइयों सहित काम आये.

गीत (३)

तेरासै सँमत बरस इकतीसै,
　　जवन हींदवाँ हुवो जुद ॥
राणै वात अवीढी राषी,
　　तेरा पीढी झूड़ी तद ॥ १ ॥
गढलिषमण सारीसा गुडिया,
　　अड़सी कुल मंडण आरोड़ ॥
आया काम दिली दळ आतां,
　　चोरासी राजा चीतोड ॥ २ ॥
दीन अलाव फिरे गढ दोळा,
　　हर सिर माळ बणाव हुवा ॥
सात लाख झड खत्री सरॉरा,
　　मेछ अठारा लाख मुवा ॥ ३ ॥

रासायण भारथ विध राणां,
सूरां सुमिरण मरण तिसो ॥
साको कीधों गढ लिपमणसीं,
अवर न साको हुवो इसो ॥ ४ ॥

[नोट—इस गीतके लिये ऐसाभी सुनाजाता है कि यह महाराणा गढलक्ष्मणसिंहके समयका बनाहुआ नहीं है। इसके संवत् और इतिहासमें भी मतभेद है कि अलाउद्दीन और महाराणा गढ लक्ष्मणसिंह समकालीन नहीं थे संवत १३५९ में अलाउद्दीन और रावल रत्नसिंहजीसे पाद्मनीके

(१) पं. गौरीशंकरजी हीराचन्द ओझाके मतानुसार उक्त गीतका इतिहास यद्यपि सही है तथापि सम्वत तो भिन्नही है। पं जी "टाड राजस्थान" प्रथम वर्ष संख्या ९, पृष्ठ ३१९ नोट नम्बर २३ में लिखते हैं कि—"राजा विक्रमसिंहके उत्तराधिकारी 'रणसिंह' से जिसको "करणसिंह" भी कहते थे दो शाखा फटी जिनमेंसे बड़ी रावल और छोटी राणा नामसे प्रसिद्ध हुई। रावल शाखामें चित्तोड़का अन्तिम राजा 'रत्नसिंह' हुआ जो अलाउद्दीन खिलजीकी लडाईमें विक्रम सवत् १३६० (ई० सन् १३०३) में काम आया, और चित्तोड़पर मुसलमानोंका अधिकार होगया, जिससे रत्नसिंहके वंशजोंने डूंगरपुरका राज्य स्थापन किया और वे वहीं रहे। राणा नामकी दूसरी शाखाका पहला पुरुष राहप हुआ, जिसका वंशज लक्ष्मणसिंह (गढलक्ष्मणसिंह) अलाउद्दीनके हमलेके समय रावल रत्नसिंहके पक्षमें लड़कर अपने सात पुत्रों सहित काम आया। उसके पौत्र हमीरसिंहने चित्तोड़का किला लेकर यहांपर फिर अपने वंशका राज्य काइम किया, तबसे राणा शाखावाले मेवाड़के स्वामी हुए॥ ऐसे गम्भीर ऐतिहासिक विषयोंका निर्णय करना अत्यन्त दु:साध्य है। पाठकगण जैसा योग्य समझें वैसाही स्वीकार करें॥

कारण युद्ध हुआ था और महाराणा गढलक्ष्मणसिंह मुहम्मद तुगलकके युद्धमें संवत् १३९० के समीप काम आये थे जो ऊपर लिखआये हैं.]

टीका–संवत् १३३१ में मुसलमान और हिंदुओंमे युद्ध हुआ उस समय महाराणाओंकी तेरह पीढी काम आगई पर उन्होंनें अपना हठ न छोडा ॥ १ ॥ जिस युद्धमे महाराणा गढलक्ष्मणसिंह और कुलके भूषण कुमार अडसी (अरिसिंह) सरीखे मारे गये और चीतौड़के मददगार अन्य चौरासी राजा दिल्लीकी फौज़के हाथोंसे काम आये ॥ २ ॥ अलाउद्दीनने गढके गिर्द घेरा दे लिया । और महादेवने भी मस्तकोंकी मालाका भूषण बनाया था। जहां सात लाख वीर क्षत्रिय और अठारह लाख म्लेच्छ (मुसलमान) मारे गये ॥ ३ ॥ महाभारत और रामायणकी तरहं स्मरण रखने योग्य यह वीरोंका संहार हुआ था, गढलक्ष्मणसिंहनें जैसा साका किया वैसा पहिले कभी नहीं हुआ था ॥ ४ ॥

मनोहरम् (४)

धायन त्रिहायन लों सन्तत समर मंडि,
राखि रनथंभराज सौंपन समाह्यौ नाँ ॥
साह्यो हठ वप्पवंस विरुद वढावनकों,
रावनकों रीढा दै सिटावनकों साह्यौ नाँ ॥
जात जान्यों जनन पै मन न मुरात जान्यौ,
वृत्तहिं निवाह्यौ अपकीरति विवाह्यौ नाँ ॥

देखो रान लक्खन अलाउद्दीन अंतकको,
ऐन देन चाह्यो पर रैन देन चाह्यो नाँ ॥

[महाकवि श्रीसूर्यमल्लजीकृत]

[नोट-इस कवित्तका इतिहास सत्य नहीं प्रतीत होता क्योंकि उस समय रत्नसिंहजीका लक्ष्मणसिंहजीके शरण जाना प्रमाणसिद्ध नहीं है। संभव है कि, बडवा भाटोंके लिखानेसे ऐसा उल्लेख किया गया हो। इस सम्बन्धमें बारहट कृष्णसिहजीने वंश भास्करकी टीकामें बहुत कुछ लिखा है।]

टीका-जिसने तीन वर्ष तक निरन्तर युद्ध करके घाट (निरंतर प्रहार) वजाई और रणथंभके राजा रत्नसिंहको शरण रखकर पुनः दे देना अंगीकार नहीं किया. जिसने वापाके वंशके विरुदको वढानेकाही हट वनाया रक्खा और जो हठमें रावणसेभी आगे वढ निकला परंतु लज्जायुक्त कभी नहीं हुआ. जिसने अपने वंशके क्षय निश्चयपूर्वकजानलेनेपर भी मन नहीं मोडा, जिसने (शरणागत वत्सल) व्रतकोही निवाहा, परन्तु अपकीर्तिके साथ विवाह नहीं किया, उस महाराणा गढ लक्ष्मणसिंहको देखो कि जिसने अलाउद्दीन रूपी कालको अपना घरही दे देना चाहा परन्तु शरणागत रत्नसिंहको देना अंगीकार नहीं किया ॥

मन हरम् (५)

लक्खन वियक्खनके चक्खन निकारिवेकी,
लखो रान लक्खनके चाली चित चालीको॥

काटे जिन गोधनके कंठ तिन कंठवारे,
कंधनकों काटे काटे कंध घटा वालीको ॥
क्रूर करनाल करवाल खितभाल भमें,
चिब्बुकलों श्रोनताल कांप्यो जियकालीको॥
बक्रतुंड तुंड न वितुंडनके तुंडनसें,
मुंडनमें मुंड न लखात मुंडमालीको ॥

[स्वामि गणेशपुरीजीकृत]

टीका—लाखों शत्रुओंकी आंखे निकाललेनेमें महाराणा गढ लक्ष्मणसिंहके मनकी हिम्मत वढी जिसको देखो कि जिसने गौओके कंधे काटनेवालों (मुसलमानो) के कंठोको कंधों सहित काट डाले और हाथियोंके कंधे भी काट डाले जिस युद्धमे भयंकर करनाले (वाद्य विशेष) वाजी और तरवारे पृथ्वीपर भमती थी, जहां ठुड्डी तक लोहूका तालाव भरगया जिसमे हाथियोके वहुतसे कटेहुए मस्तक देखकर इसमे कहीं गणेशकाभी मस्तक न हो ऐसी शंका करके कालीका हृदयभी कांप उठा । और जहां रणक्षेत्रमे पडेहुए मस्तकोंमे शिवका मस्तक नही दीखता था ॥

महाराणा श्रीअजयसिंहजी ।

महाराणा अजयसिंहजी किस संवत्मे गद्दी वैठे सो अनिश्चित है, परन्तु वि सं १३९० के समीप महाराणा गढलक्ष्मणसिंहजी काम आये । और उस समय चित्तौडतो इनके अधिकारसे छूटकर मुहम्मद तुगलकके अधिकारमे हो-

गया था और कुछ प्रदेश काठियावाड़के समीपका [illegible]
गया था सो वहां जाकर उक्त महाराणा रहे थे [illegible]
लिये इनको 'केलपुरा' कहते हैं. इनने चित्तौड़ लेनेकी बहुत
कोशिशकी परन्तु हाथ नहीं लगा इनका देहान्त समयभी
अनिश्चित है । इनका विशेष वृत्तान्त "वंश भास्कर" में
लिखा है ॥

महाराणा हम्मीरसिंहजी ।

महाराणा हम्मीर सिहजीका जन्म कौन विक्रमी संवत्में हुआ था सो अनिश्चित है, मुहम्मदतुगलकके उपरोक्त युद्धमें महाराणा गढलक्ष्मणसिहजी सकुटुंब काम आये। और इनके छोटे पुत्र अजयसिहजी घायल होकर बचगये जो केलवाड़ा नगरमें जाकर मेवाडके सिहासन पर बैठे । इनका देहान्त हुए पीछे अजयसिहजीके भतीजे और अरिसिहजीके पुत्र महाराणा प्रथम हम्मीरसिहजी गद्दी बैठे। और अनेक युद्ध करके थक गये परन्तु चित्तौड़ पर पुनः अधिकार नहीं करसके। तब आत्मघात करनेको द्वारका जाने लगे उस मार्गमें गुजरातमें खोड़नामक ग्राम मिला, जहां सोदा बारहठ शाखाके चारण बारूजीकी माता बरवडीजी रहते थे, जो शक्तिके अवतार थे। उनके पास जाकर महाराणाने अपना दुःख निवेदन किया तब माता बरवडीजीने महाराणाको द्वारका जानेसे रोककर चित्तौड़ विजय करनेका वर दिया। तब महाराणा हम्मीरसिंहजी पीछे कैलवाडे

आगये। उस समय महाराणाके पास कुछ सामग्री नहीं रही थी इसलिये देवी वरवड़ीजीने अपने पुत्र वारूजीको ५०० घोड़े लेकर महाराणाके पास भेजा जिस सहायतासे महाराणा हम्मीरसिंहजीने संवत् १४०० के प्रारंभमें चित्तौड़ पर अपना अधिकार करलिया। और इन वरवड़ी माताका जिनका दूसरा नाम अन्नपूर्णा था चित्तौड़के किलेमें मन्दिर बनवाया जो अबतक वहां विद्यमान है। और महाराणा प्रतापसिहजीने एक चबूतरा उदयपुरमें ब्रह्मपुरीकी तरफ बनवाया जहां अब भी नवरात्रिके दिनोंमें श्रीवरवडीजीके दर्शनार्थ महाराणा जाया करते हैं। इन सोदा वारहठ वारूजीको महाराणा हम्मीर सिंहजीने वहुत धन ग्राम और इज्जत देकर अपना पोळपात वनाया जिस विषयका यह निम्नलिखित गीत है। इन महाराणाका देहांत वि० सं० १४२१ में हुआ।

गीत (६)

वैठक ताजीम गाम गज वगसे,
किवरो मोटो तोल[१] कियो॥
वड दातार हमें वारूनें,
दे इतरो वा[३]रठो दियो॥ १॥
पोळ प्रवा[४]ह करे पगपूजन,
वड़ा अवा[५]स छोळ[६] द्रव वेग॥

सिंधुर सात दोय दस सांसण,
नागद्रहे दीधा इम नेग ॥ २ ॥
सहँस दोय सहिंपी अन सुरभी,
कंचन करहां भरी कतार ॥
रीझे दिया पांचसे रेवँत,
दस सहँसा झोका दातार ॥ ३ ॥
कोड़ पसाव पेप जग कहियो,
अधपत यों दाखे इण ओर ॥
श्रीमुख सपथ करे अडसीसुत,
सोदां नह विरचे सीसोद ॥ ४ ॥

[सोदा बारहठ बारूजी कृत]

टीका–बैठक, ताजीम, ग्राम और हाथी वगैरह देकर कविका बहुत बडा १ सन्मान किया । और इतना देकर उस बड़े दातार २ हम्मीरसिंहने कवि बारूको अपना ३ पोलपात बनाया ॥ १ ॥ द्वारपर ४ चरण धोकर पैर पूजे और बड़े बड़े ५ मकानोंका भी रहनेके लिये ६ दान किया सात ७ हाथी और बारह ग्रामों सहित (पचीस हजार रुपये सालियाना आमदनीका आंतरीका) पटा, इस तरह ८ नागदाके पति (महाराणा) ने नेग बखशे ॥ २ ॥ दो हजार गाएं और ९ भैंसें और स्वर्णकी भरी हुई १० ऊंटोंकी कतार और फिर खुश होकर उस दस हजार ग्रामोंके पति

(महाराणा) बड़े दातारने पांचसौ ११ घोड़े भी दिये॥३॥ इस प्रकार क्रोड़ पसाव देकर महाराणाने अपने मुखसे यह १२ आज्ञादी कि मैं शपथ पूर्वक कहता हूं कि इस वंशमें कोई शीसोदिया सोदा बारहठोंसे नहीं १३ बदलेगा ॥ ४ ॥

गीत (७)

ऐलां चीतौड सहै घर आसी,
हूं थारा दोषियां हरूं ॥
जणणी इसो कहूँ नह जायो,
कहवै देवी धीज करूं ॥ १ ॥
रावल़ बापा जसो रायगुर,
रीझ खीज सुरंपतरी रूंस ॥
दससहँसा जेहो नह दूजो,
सकती करै गल़ारा सूंस ॥ २ ॥
मन साचे भाषै महँमाया,
रसणा सहती बात रसाल़ ॥
सरज्यो है अडसीसुत सरखो,
पकडे लाऊं नाग पयाल़ ॥ ३ ॥
आलम कलमें नवैखंड एल़ा,
कैलपुरारी मींढ किसो ॥

देवी कहै सुण्यो नह दूजो,

अवर ठिकाणे भूप इसो ॥ ८ ॥

[सोदा बारहठ बारूजीकृत]

[नोट—यह गीत बरवडीजीके वरदान और आज्ञाके अनुसार उनके पुत्र बारूजीने बनाया है इस विषयमें ' वंशभास्कर ' का लेख दूसरे प्रकारसेभी मिलता है जिसका निर्णय पाठक जनोंकेही विचारपर निर्भर है]

चीतोड़की सब १ भूमि तुम्हारे घर आवेगी और मैं तेरे २ शत्रुओंका नाश करडालूंगी । देवी कहती है कि मैं शपथ करतीहूं कि, किसी ३ माताने महाराणा हम्मीरसिंह सरीखा नहीं जना ॥ १ ॥ जो बापा रावलके समान ४ राजाओंका राजा है और जिसकी रीझ और कोप ५ इंद्रके समान है. शक्ति अपने कंठकी ६ शपथ करके कहती है कि, ७ दश सहस्र ग्रामोंके पति (महाराणा) के समान अन्य नहीं है ॥ २ ॥ जिह्वाको शोभा देती हुई ८ सरस वार्ता महामाया सच्चे मनसे कहतीही है कि यदि अडसी (अरिसिंह) के पुत्र (हम्मीरसिंह) के समान परमेश्वरने किसीको बनाया होतो मैं उसे पातालसे पकड लाऊं ॥ ३ ॥ ९ कलमा पढनेवालो (मुसलमानो) की दुनियामें वा १० पृथ्वीके औरभी नवही खंडोंमें महाराणाकी बराबरी करनेवाला कौन है, देवी कहती है कि, मैंने तो अन्य ठिकानोंमे ऐसा राजा नहीं सुना ॥ ४ ॥

गीत (८)

हर हर तणा हमीर नरेसुर,
लाभ थका मूका रह लोय ॥
एकण आस तुहाळी ऊपर,
सीसोदा आवै सह कोय ॥ १ ॥
जट धारी धारी जानोई,
कविताधारी कंथाधार ॥
मारग दस मेवाड नरेसुर,
वहै तुहाळै बड दातार ॥ २ ॥
हर पँथ अघहर पंथ अहै हुय,
प्रभा हुवंती समोप्रवाह ॥
एक हमीर वहै कांकणिये,
आज तुहाळै उतळै तियाह ॥ ३ ॥
उर्हव थयां नां कोई वह आवै,
सुरियण मारग अन्य सह ॥
मेर्क वहै अरसीह समोभ्रम,
प्रथी विलग्गी तूझ पँह ॥ ४ ॥

टीका—शिवके अंशवाले महाराणा हम्मीर सिंह ! तेरी आशा करके सब लोग आते हैं और हे शीसोदिया ! जो

अपने लाभके लिये आते हैं वे १ लोग गूंगे रहते हैं अर्थात् उनको विना मांगे ही मिलता है ॥ १ ॥ हे बड़े दानके मेवाड़के पति महाराणा ! तेरे यहां दशों दिशाओंके मार्गसे जटाधारी (साधु), जनेऊधारी (ब्राह्मण.) कविताधारी (कवि) और कंथाधारी (संन्यासी आदि) सब आते हैं ॥ २ ॥ हे महाराणा ! तेरा यह दानका मार्ग शिवके मार्गके समान पाप हरनेवाला होगया है, और तेरे दानके प्रवाह के साथ तेरी क्रान्ति भी वढगई है. हे २ अतुल त्यागी हम्मीर-सिंह ! आज यह उदारताका ३ मार्ग तेरेही यहां वहता है (यहां अतुल त्यागीके संबन्धमें उदारताका अध्यारोप होता है) ॥ ३ ॥ तुह्मारे इस दानमें ४ त्याज्य हुये वे और सब (कृपण राजा) इस ५ देवमार्गमें नहीं आसकते हैं और सिंहकी समानता करनेवाले हम्मीरसिंह ! ६ एक तुम ही इस मार्गमें वहतेहो सो हे ७ प्रभो ! (हमीरसिंह) यह पृथ्वी तेरे ही साथ लगी हुई है ॥ ४ ॥

गीत (९)

कुल़ करसण करै वरीसण कोड़ी,
ढींकै कनक मझ ढालड़िया ॥
अड़सी संभ्रम ठोड़ सिंचै इम,
हम्म महादत हालड़िया ॥ १ ॥
परठी आभ गयण लग पूंहतै,
कीरत वाड़ी मोर कल़ी ॥

सुतियागी आरत कर सींची,
फल किव बयणा सुफल फली ॥ २ ॥
विमल प्रवाह गंग गोंम वासंह,
घणी कियारी कवत घणा ॥
संभारिया पात सोब्रनमें,
त्रहुं अण हात हमीर तणा ॥ ३ ॥
बाड़ लियाड़े उचत पांच बिध,
न्याय कनक कर मिसर नखै ॥
रोर वंराह समँद पैली रुख,
राम रंवा कर राम रखै ॥ ४ ॥

टीका—राणाहमीरसिंहने१कुल खेती की.२ढोंकली, चांच (जल निकालनेका यंत्र) से सोनारूपी पानी सींचा ३ प्रतिष्ठित पाई, ४ पहुंचकर ५ आकाशमें वास करनेवाली गंगा (आकाशगंगा) के प्रवाहसे. ६ याद किये उस खेतीकी रक्षाके लिये पांच प्रकारकी ७ वाड वनाई स्वर्णरूपी ८ खात डाला. इस खेतीको नष्ट करनेवाला ९ पापका मार्ग है सो समुद्रके परलीपार रहै. परमेश्वर इसे १० जारी रखकर इसकी रक्षा करै ॥

महाराणा खेताजी ।

महाराणा श्रीखेताजी विक्रमी संवत् १४२१ में पाट वैठे और १४३९ मे वारूजी वारहठका वेर लेनेके कारण

हाडा लालसिंहजीसे लड़कर बूंदीमें काम आये थे । [illegible]के इतिहासमें महाराणा खेताजीका गयासे यवनोंसे युद्ध करना नहीं पाया जाता पर यह गीत उसी समयका बनाहुआ सुना जाता है इसलिये ऐसा खयाल होता है कि इनके राज्यसमयके इन्हीं अठारह वर्षोंमें यह युद्ध हुआ होगा ॥

गीत (१०)

ओडंण पुड़ येक येक पुड असमेर,
हाते सूंठज हातैं लिया ॥
कोप पुधारे थके तल काटां,
दांणव भांत नवी दलिया ॥ १ ॥
धर धूजवी धरापुड़ धुंवते,
घरट घाय धण घेरविया ॥
रातमुखा गोहूं अर राणै,
आवध धारे ओरविया ॥ २ ॥
अणियां धार अनेक आवरंत,
पाड़े सूंठज पाण गया ॥
खडग पपाण खेडतै खेता,
थाट रवंद रण लोट थया ॥ ३ ॥

पड़ पकवान प्रवाड़ा प्रमरथं[11],
साहां सेन करे वोह संग ॥
सैदा फटक महारसं[12] मसले,
जीम्हण राण कियो रणजंग ॥ ४ ॥

टीका—यह जीमन याने खानेका रूपक है आटा बूंदनेके लिये पात्र चाहिये सो एक पुड तो १ ढालका और दूसरा पुड़ २ तलवारका है, तलवारकी मूंठमे हाथ है वही ३ मसलना है उसमें जिस तरह देवताओंने दैत्योंको पीस डाले थे (यह अध्याहार है) उसी प्रकार ४ क्षुधारूपी कोपमे ५ मुसलमानरूपी दानवोंको ६ काठे गेहुओंकी तरह तेनें पीसकर तल डाले ॥१॥ इस महाराणाने आयुध धारण करके अथवा आयुधोंकी धारसे ७ लाल मुखवालों (यवनों) को " दूसरे पक्षमें काठे गेहुओंको " ८ जलतेहुए पृथ्वीके पुटपर घरटमे गेहूंकी तरह ऊरे उस समय पृथ्वीभी धूजने लगगई ॥२॥ उस युद्धमें यवनोंकी कई ९ सेनाओंको महाराणा खेताने अपनी मूठके पराक्रमसे गयामें मारडाली और १० मुसलमानोंके कई झुंडोको युद्धक्षेत्रमें अपनी तलवारके बलसे सुला दिया ॥३॥ उस महाराणाने केवल ११ परमार्थके लिये युद्ध करके बादशाही सेनारूपी मैदाको १२ रुधिरमें मसलकर उस युद्धमे पक्वान्नोंका वडा जीमन किया ॥ ४ ॥

महाराणा श्रीलाखाजी ।

महाराणा लाखा विक्रमी संवत् १४३९ में मेवाड़के राज्य सिंहासन पर बैठे और संवत् १४५४ मे इनका देहांत हुआ ॥

गीत (११)

पग्रदल नह पार सँख्या नह साहँण.

कटक पयाणां रंभ किये ॥

मात कसी दूजा मंडलीकां.

लाखो लियतो लंक लिये ॥ १ ॥

खोहँण कटक मिले खेतावत,

साकुर सुभट इसे समदाव ॥

लागण हार होयतो लेवे,

राकस रध सेवाड़ो राव ॥ २ ॥

हैदल कलल पायदल हूंकल,

सीसोदै खडतै सँनंढ ॥

गंहके हो बीजांगढ पतियां,

गँजै अगँजी त्रिकुट गढ ॥ ३ ॥

टीका–पैदलोंका पार ही नही है और १ घोड़ोंकी संख्या नही है इस तरहकी बड़ी सेना सहित जिसने २ प्रयाण किया है सो अन्य ३ राजाओंकी तो बातही क्या यदि महाराणा लाखा चाहै तो लंका भी ले सकता है ॥ १ ॥ जिसके ऐसी ४ समृद्धिवाले ५ घोड़े और सुभट है और जो एक ६ अक्षौहिणी सेना रखनेवाला है वह राणाखेताका पुत्र यदि लेना चाहे तो राक्षस (रावण) की ७ समृद्धि भी ले

सकता है॥२॥घोड़े और पैदलोंके रौरव शब्दके साथ मेदपाटेश्वर सीसोदिया ८ सज्जित होकर चलता है उस समय दूसरे कौनसे राजा इस बातका ९ गर्व करसकते हैं कि जो विजय नहीं किये जाने योग्य १० चीतोड़ गढको जीतें ॥ ३ ॥

[नोट–यह गीत पंखाला जातिका है जो तीन दोहोंका ही होता है ।]

गीत (१२)

प्रथीपुड़ सांकडों मेरहै कापड़ो,
वोहलों जास सुबास वहै ॥
मोटापणां तणों मेवाड़ा,
लाखा कवण प्रमाण लहै ॥ १ ॥
आयत इळा अनैलपुड़ आयत,
समँद आयतां वळेज सात ॥
लाखां तेथ वँहाँचिया लाखै,
वडा वडा जुग रहसै बात ॥ २ ॥
यल न अनड ऊवहै आन का,
नैणां दीसै सहै नवाय ॥
यो करतार आवियो करतां,
मोटेरो मेवाड़ो राय ॥ ३ ॥

लाख वरीस महत तूं लाखा,
तायक समवड कीजे ताय ॥
इल अणवूठै कमो अंबहर,
अनड़ अडठे उहवे आय ॥ ४ ॥

टीका-पृथ्वीका पुट छोटा है और सुमेरु पर्वत भी पृथ्वी का एक १ टुकड़ा है और महाराणाका २ यश बहुत दूर तक चला गयाहै इसलिये हे लाखा ! तुम्हारे बड़प्पनका प्रमाण कौन लेसकताहै ॥१॥ पृथ्वी छोटीहै और ३ पर्वतोंका पुट भी छोटाहै और समुद्र छोटे होने पर भी जलके मानने हैं परन्तु महाराणा लाखाने तो लक्षावधि द्रव्य ४ बांट दिया है सो यह वार्ता अनंत युग तक रहेगी॥२॥पृथ्वी और पर्वत नत नम (झुके) हुए और छोटे दीखतेहैं परंतु परमेश्वरकी सृष्टिमें एक मेवाड़का राजाही बडा होकर आया हुआ दीखताहै॥३॥हजारों रुपये देनेवाले लाखा तू बड़ाहै तेरी बराबरी कौन करे, जो पृथ्वीपर नहीं बरसता वह मेघ किस कामका ।

महाराणा लाखाजीके ज्येष्ठ पुत्र राव चूंडाजी ।

राव चूंडाजी लाखाजीके ज्येष्ठ पुत्र होनेके कारण यद्यपि गद्दीके हकदार थे परन्तु केवल इसी कारणसे इन्होंने जानबूझ कर गद्दीका हक छोड दिया था कि एक दिन दर्बारमें महाराणा लाखा अपने राजकुमार चूंडा सहित बैठे थे तो मारवाड़के राजा रिड़मलजीने चूंडाजीके साथ अपनी पुत्रीका

संबन्ध करनेके लिये टीका भेजा इसपर लाखाजीने कहा कि हम भी जवान थे तब हमारे लिये भी योंही टीके आया करते थे इसपर चूंडाजीने यह समझकर कि यह शादी करनेकी मेरे पिताकी इच्छा है शादी करनेसे इनकार करदिया और बोले कि मेरे पिताकी जिस राजकुमारीसे शादी करनेकी इच्छा है वह तो मेरी माता है इसपर लाखाजीने इन्हे बहुत समझाया कि मैंने इस इच्छासे नहीं कहा केवल प्रस्ताव आनेसे कहदिया था पर उन्होंने एक न मानी लाचार टीका वापस भेजनेमें रिड़मलजीका अपमान होता देख महाराणा लाखाने विवाह करना स्वीकार किया इसपर रिड़मलजीके भेजेहुए आदमि-योंने उज्रकिया कि हम महाराणा साहबको व्याहदें तो हमारा भानजा गद्दीका हकदार नहीं होसकता अतः यदि चूंडाजी यह लिख देवे कि गद्दीका मालिक हमारा भानजा होगा तब हम महाराणा साहबको व्याहसकते हैं इसपर चूंडाजीने खुशीसे यह अंगीकार किया जब महाराणाजीका विवाह होचुका तो कुछ अर्से पीछे उनके मोकलनामक पुत्र उत्पन्न हुआ, अंतमें महाराणाके देहांतके समय उनकी स्त्री सती होने लगी तब उन्होने चूंडाजीको कहलाया कि मै तो सती होती हूं तुमने अपने भाईको कौनसा परगना देना तजवीज किया है इसपर चूंडाजीने जवाब दिया कि मेरा भाई चित्तौडका राजा है यह कहकर उसे राज्यसिंहासनपर विठलाया और अपनी विमाताको निवेदन किया कि आप भी सती न होकर भाईकी बालक अवस्थामें राज्यकार्य देखते रहैं । इस पीछे चूंडाजी मेवाड छोडकर मांडू चले गये जो राठोड़ रिडमलजीका उपद्रव होनेपर महाराणा मोकलजीकी

माताके बुलानेसे पीछे चीत्तोडमें आकर रिड़मलजीको मारा था धन्य है राव चूंडाको जिसने राज्यका हकदार होकर भी अपनेको व अपनी संतानको सदाके लिये राज्यसे वंचित रख अपने वैमात्रेय छोटे भाईको राजा बनाया और स्वयं उनके सामने प्रजा होकर रहने लगे व नर पिशाच जो राज्यके लोभसे पिताकोभी मारनेमें संकोच नहीं करते उनको इस इतिहाससे शिक्षा लेनी चाहिये। राव चूंडाका यह इतिहास स्वर्णाक्षरोमें लिखने योग्य है॥

गीत (१३)

चालंतो कोट पयंपै चूंडो,
  ऐ पुरसातन तणा अपर॥
रण मुड़िये नांहीं जो आरण,
  आगैं पाछैं मुड़ै अर॥ १ ॥
तोने रंग जसो चीतोडा,
  बांचै वेदतणों वयण॥
रहजो आप जूझ पग रोपे,
  पडै क पग छांडे प्रसण॥ २ ॥
लोह पगार कहै लाखावत,
  गैमर हैमर जेथ गुड़ै॥
मुंह रावत जो आप न मुड़िये,
  मुडआवै कै प्रसण मुड़ै॥ ३ ॥

[नोट—मंडोवरके रिड़मलजीने जो चित्तौडपर कब्जाकर लिया था और चौंडेजीने मांडूसे अचानक आकर रिड़मल जीको मारकर चित्तौडपर अधिकार किया उस लडाईके विषयका यह काव्य है ॥

टीका—किलेपर चढाई करता हुआ चूंडा कहता है कि पराक्रमका यही अपार चिह्न है कि युद्धसे आप पीछा नहीं फिरै, शीघ्र अथवा विलंबसे शत्रुही मुडेगा ॥ १ ॥ हे चित्तौड पति! तू धन्य है जो वेदका यह वचन पढता है कि युद्धमे अपनेको पैर रोपकर रहना चाहिये जिससे शत्रु यातो माराजावेगा या भगजावेगा ॥२॥ लाखाका पुत्र उस युद्धमे जहां घोडे और हाथी मारे जाते हैं वहां यौंही कहताहै कि वहादुरको चाहिये कि पहिले खुद न भगै तो शत्रु यातो मुड जावेगे या भग जावेगे ॥

छप्पय ।

पत्र मंडि प्रच्छन्न दूत मंडू पठवायो ।
सुनि "चौंडा" सजि सेन,अद्ध रजनी गढ आयो ॥
करि हल्ला चढि कोट धस्यो, वीराधिवीर बल
कुँवर जोध भाजि कढिग, मारि लीन्हो नृप रनमल
मुक्कलहिं पट्ट गद्दी अरपि,रहि तटस्थ जग जस
लियउ । हिंदवान ! वत्त धारहु हृदय, करहु जेम
चौंडा कियउ ॥

[महाकवि सूर्यमल्लजी "वंशभास्कर" ।]

टीका—चौंडाजीकी विमाता राठोड़ने पत्र लिखकर गुप्त रूपसे उनके पास मांडूमें भेजा कि जहां वे निवास करते थे। पत्र वांचतेही चौंडाजी कुछ सेना लेकर चित्तौड़ आये और अर्द्ध रात्रिके समय वडी वीरताके साथ दुर्गमें प्रवेश किया। और राठौड़ महाराज रनमलजीको वहांही परलोकवासी किये उस समय कुंवर जोधाजी भागकर निकल गये। पश्चात् चौंडाजीने अपने विमातृज (सौतेला) छोटे भाई मोकलजीको राजगद्दीपर वैठाये और स्वयं तटस्थ रहकर निरुपम यशके भागी हुए। हे आर्य जनो ! इस पवित्र चरित्रपर ध्यान लाओ और चौंडाजीके सदृश सत्कार्योंमें प्रवृत्ति करो।

महाराणा श्रीमोकलजी।

महाराणा मोकलजी विक्रमी संवत् १४५४ में गद्दी विराजे, जहाजपुरके मुकाम पर फीरोजशाहके साथ इनका युद्ध हुआ जिसमें उसको पराजित होकर भागना पड़ा, यह फीरोजशाह नागोरवाला फीरोजखां मालूम होताहै, ये महाराणा विक्रमी संवत् १४९० महाराणा लाखाके पासवानिये पुत्र चाचा और मेराके हाथसे दगासे मारे गये ॥

गीत (१४)

रणजीत कटक कै ऊपर राणा,
वाजंतै कै ऊपर वल्या ॥
धर धरपती छत्र पत्र धजपत,
मोकळ पावां आय मल्या ॥ १ ॥

लेवाकै थानक लाषावत,
धण समदाये सेन घणा ॥
चलणै तलक तुहाले चोहट,
मोकळ सह मंडळीक तणा ॥ २ ॥
अन अन खंड तणां सह अधपत,
खळजे खपिया. तूझ खग ॥
माथो जिये नमायो मोकळ,
पाट बैसतै समो पग ॥ ३ ॥

टीका–हे महाराणा यह विजय करनेवाली सेना किसके ऊपर चढती है और ये नगारे आज किसपर वजते हैं इस पृथ्वीपर तो जितने छोटे और वड़े राजाहैं वे सवतो तेरी शरणमेही आगयेहैं॥ १॥हेलाखाके पुत्र महाराणा! राजा तो सव तेरेही तिलक करनेसे चलतेहैं (राजा होतेहैं) फिर यह इतना वडा सेना समुदाय कौनसा राज्य विजय करनेके लिये तैयार किया जाताहै॥२॥हेमोकळ! आर्यापर्वतके सिवाय अन्य खंडोके राजा तो तेरी तलवारसे नष्ट होगये केवल वेही वचेहैं जिन्हों ने गद्दी वैठते समय तेरे पैरोमें शिर झुकालिया ॥ ३ ॥

गीत (१५)

ईषे ढेलंडी नासपुर नासै,
भटनेरो भड़वायो ॥

कलँमां कालव ग्रहणे कोटां,
ईषे मोकल आयो ॥ १ ॥
मेवट कोटे राय मेलणो,
साहँण सेन सवायो ॥
लोदां तार कहै लाषावत,
ऊगै दीहत आयो ॥ २ ॥
संभर ससत डँडे डिडवाणो,
भट नर पडे भगाणा ॥
राणां तूझ भये रेंयांणां,
थर हरिया सह थाणा ॥ ३ ॥

टीका–१ दिल्ली. आगे नगरोंके नाम हैं. २ मुसलमान. ३ घोड़ोंकी। ४ लोदी जातिके यवनोंका । ५ वंश । ६ मुसल-मानोंके ॥

महाराणा श्रीकुंभा ।

महाराणा कुंभा विक्रमी संवत् १४९० में गद्दी बैठे और संवत् १५२५ में अपने कुलकलंकी ज्येष्ठ पुत्र ऊदाके हाथसे मारेगये जो राज्यके लोभसे पिताको मारकर गद्दीपर बैठ गया । ये महाराणा बडे यशस्वी वीर विद्वान और प्रतापी हुए जिन्होंने कुंभलगढ और आबूपर अचल गढ आदि स्थान बन-वाये और मालवाके बादशाह मुहम्मद तुगलकको युद्धमें परा-

(१) यह गीत सरल है सो कठिन शब्दोंका अर्थ दे दिया है ।

जित करके पकड लाये और छः महीनेतक केद रखकर उससे कुछ दंड लेकर छोडा और इसका स्मारक चिह्न चित्तोडके किलेमे एक वडा कीर्तिस्तंभ वनवाया जो अवतक विद्यमान है,इसीतरह गुजरातके वादशाह कुतुबुद्दीनको भी इन महाराणाने युद्धमें पराजित किया, इत्यादिक अनेक वीरताके कार्य इन्होने किये। सुना जाता है कि ये महाराणा संस्कृतके वडे विद्वान् थे।

गीत (१६)

रण सालै रूक केवियां राणा,
साझग लडत न सुणिया ॥
जइयो राम रुद्रार्थग जीहा,
भण तण पागल भणिया ॥ १ ॥
आनन रामराम सुण आणै,
अंतर आणै राम उर ॥
भोयँग मंडल़ लोह भणावण,
गोरिवै कुंभा प्राणगुर ॥ २ ॥
गढ लियंत गहलोत प्राणगुर,
सांईये सोगत पेख सह ॥
वायां वल़ण अवल़णा वाया,
गोविंद गोविंद साड गह ॥ ३ ॥

साषा वियो सयँक पह सुत्रस,
मन अणवंछत तूझ मण ॥
कलम कुराण पाण तज कुंभा,
वांचण लागा हर वयण ॥ ४ ॥
चटँडा हाट हाट चुग लालां,
साट खडग ताय सोचरिया ॥
वहियो नहीं वे न तत वाहिया,
अनत कह्यो ते ऊगारिया ॥ ५ ॥

टीका—हे राणा! तुम्हारी तलवार युद्धमें १ शत्रुओंके मारती है इसलिये तुमसे लडता किसीको नहीं सुना। तुम्हारे विजयने शत्रुओंको अपनी जीभसे रामराम और २ शिव शिव रटाते रटाते पागल वनालिया ॥१॥ उनके मुखसे भी रामरामही सुननेमें आता है और हृदयमें भी रामही रहता है नागलोकमें भी शस्त्र शिक्षा देनेमें हे ३ गौरीपति! (शिव) रूप कुंभा तू वडा है ॥२॥ ४ ईश्वरकी गति देखकर तेरा वचनोंका ५ वोलना पीछा नहीं फिरता ऐसा है इसलिये घमंडी और वलवान भी गोविंद गोविंद करने लगगये ॥३॥ हे कुलके अन्य ६ चन्द्रमा महाराणा कुंभा तेरे वडप्पनको अन्य राजा नहीं चाहते तथापि तेरा वडप्पन सवपर है जिस तेरे वडप्पनसे यवनलोग कुरानको छोडकर वेद पढने लगगये ॥ ४ ॥ वे ७ जिह्वाके लोभी अर्थात् हिंसक यवन हाट हाटसे रत्न चुगते थे उनको

महाराणा कुंभाने तलवारके बदलेमें लेकर खालिये और वेद धर्म नही रहा वहांपर वे (यवन) भी शेष नहीं रहे केवल वेही बचे हैं जिन्होने अनन्त (परमेश्वर) के नामका उच्चारण किया ॥

गीत (१७)

केकाण अरथ ऊतम कूंभकरन,
बसुधा ले अंता वह न ॥
कल़ह म मांग पयंपै केवी,
मांग अवर बित जिका मन ॥ १ ॥
अथ लै राण अभालै अधकी,
भोग बियाप तणा मन भाव ॥
भूपत येता भलपण भणतां,
भारत हूंकारा न भराव ॥ २ ॥
संपत लै मोकल़सी संभ्रम,
धर संग्रह कर रीस धरो ॥
विण हॅकणै संग्राम बैरहर,
कहै जिका बीजोस करो ॥ ३ ॥
साहण समँद सेन सीसोदा,
राणां तोंसूं राय रिम ॥
अरथ वरीस करै सिर ऊपर,
कल़ह वरीस न करै किम ॥ ४ ॥

टीका–शत्रु कहतेंहै कि हे कुंभकर्ण! घोडा, धन, भूमि जो चाहै सो ले परंतु अंतको मत वह अर्थात् मांग मत और युद्ध करना मत मांग ॥ १ ॥ हे महाराणा! विना भाला हाथमे लियेही वहुत धन लेले, और मन चाहीहुई भोगकी सामग्री भी लेलै, परन्तु हे पृथ्वीपति! इतनीमी भलपन दिखा कि युद्धके लिये हेकारा मत भरा ॥ २ ॥ वहुतमा धन लेले और भूमिभी लेकर संग्रह करले परन्तु कोप न कर, हे मोकलके पुत्र! युद्धकी चढाई न कर जो तू कहेगा सोही करेंगे ॥ ३ ॥ हे घोडोंकी सेनाके समुद्र शीसोदिया कुंभा! तुझको शत्रु राजा कहतेंहैं कि, मस्तक पर धनका दान करताहै तो युद्धका दान क्यों नही करता ॥ ४ ॥

गीत (१८)

कळ हेंवा चूंक कुंभकन राणा,
जगत तणां गुर दुरंग जुळ
काढ्यां अचरज किसो कटारी,
काढ्या जिण पैंतीस कुळ ॥ १ ॥
सिवने विसम लगै सुरताणा,
राव मेवाडो चढै रण ॥
वांक पडै क मंत्रै वादाळी,
जग त्रय पाधारिया जण ॥ २ ॥

सुजँडी मोकलसीह समोभ्रम.
अहै वडा गढ डुरंग गँह ॥
जिण वीनँडिया सु कम विसारै,
प्रथमी नवषंड तणां पह ॥ ३ ॥
करत नहीं राणा कुंभक्रन,
जो तूं बलवंत वाथ जम ॥
मानवदेव दई मन मानत,
कलह कटारी तणों क्रम ॥ ४ ॥
आणी असह जड़ाली आहव,
फूटंती धोहमें फेंर ॥
हुय तो कलह कुंभक्रन होये,
नतो असुर सुर नर अवर ॥ ५ ॥

टीका–हेराणा कुंभकर्ण ! १ युद्धमे ऐसेभी चूक होतेहैं कि जिनसे संसारके वडे गढ २ जुदे होजाया करतेहैं तो जिसने पैंतीस कुलोंको काढ (भगाये) उसके कटारीको काढने (निकालने) में क्या अचरजहै ॥ १ ॥ जिस समय मेवाड़का राजा युद्धके लिये चढताहै तो वादशाहोको भी विषम लगने लगताहै, और वहांपर अपनी सेनापर झुकाव पड़तेही तीनों लोकोके मनुष्योको ३ सीधा वनादेने वाली ४ कटारी मंत्रता है ॥ २ ॥ हे मोकलके पुत्र ! तुम्हारी ५ कटारीने वडे वडे वीरोंके और गढोंके ६ घमंड हर लियेहै । और तुम्हारी इस

कटारीने नवही खंडके राजाओंको ७ विनयी (नमस्कार करनेवाले) बना दियेहै, सो वे तुम्हें क्योंकर भूल सकतेहैं ॥ ॥ ३ ॥ हे यमराजकी भुजाओंके समान भुजावाले राणा कुंभकर्ण ! यदि तेरी सृष्टि नहीं होती तो मनुष्य और देवता आदि युद्धमे कटारीका क्रम क्योंकर जानते ॥ ४ ॥ तू युद्धमे किसीसे सहन नहीं हो सकनेवाली ८ कटारी लाया, सो भरे हुए पेटसे ९ ढाल फोड़कर पार निकल गई, अतः युद्धमें पूरा (बहादुर) कुंभा राणाही है और राक्षस देवता या मनुष्य आदि दूसरा ऐसा नहीं प्रतीत होता ॥ ५ ॥

सुना गया है कि नागोरमें यवनोंका बहुत बड़ा थाना था। वहांके यवन गौओंको मारते थे। इस कारण महाराणा कुंभाने चढाई करके उस थानेको काट डाला। उस पीछे एक दिन एकलिंगेश्वर महादेवके दर्शनार्थ गये। वहां एक गायने बैलके समान गर्जनाकी सो सुनकर महाराणा "कुंभलगढ" चले गये, और एक छप्पय छंदका चरण (कामधेनु तंडव करिय) कहा, और बारबार इसीको कहते रहे। इस तरह कई दिन निकल गये पर कोई जवाब न दे सका, जिससे सब लोग घबरा गये, परन्तु उस समय वहां कोई चारण नहीं था जो इस भावको समझता क्योंकि ज्योतिषियोंने महाराणासे कह दिया था कि आपकी मृत्यु चारणके हाथसे होवेगी, इस कारण महाराणा कुंभाने सब चारणोंको मेवाडसे बाहर निकाल दिये

सुजंडी मोकलसीह समोभ्रम.
ग्रहै बडा गढ डुरंग गेह ॥
जिण वीनंडिया सु कम बिसारै,
प्रथमी नवषंड तणां पह ॥ ३ ॥
करत नहीं राणा कुंभक्रन,
जो तूं बलवंत वाथ जम ॥
मानवदेव दई मन मानत,
कलह कटारी तणों क्रम ॥ ४ ॥
आणी असह जड़ाली आहव,
फूटंती धोहमें फेर ॥
हुय तो कलह कुंभक्रन होये,
नतो असुर सुर नर अवर ॥ ५ ॥

टीका–हेराणा कुंभकर्ण ! १ युद्धमें ऐसेभी चूक होतेहैं कि जिनसे संसारके बडे गढ २ जुदे होजाया करतेहै तो जिसने पैंतीस कुलोको काढ (भगाये) उसके कटारीको काढने (निकालने) मे क्या अचरजहै ॥ १ ॥ जिस समय मेवाड़का राजा युद्धके लिये चढताहै तो बादशाहोको भी विषम लगने लगताहै, और वहांपर अपनी सेनापर झुकाव पड़तेही तीनों लोकोंके मनुष्योको ३ सीधा बनादेने वाली ४ कटारी मंत्रता है ॥ २ ॥ हे मोकलके पुत्र ! तुम्हारी ५ कटारीने बडे बडे वीरोके और गढोके ६ घमंड हर लियेहैं । और तुम्हारी इस

कटारीने नवही खंडके राजाओंको ७ विनयी (नमस्कार करनेवाले) बना दियेहैं, सो वे तुम्हें क्योंकर भूल सकतेहैं ॥ ॥ ३ ॥ हे यमराजकी भुजाओंके समान भुजावाले राणा कुंभकर्ण! यदि तेरी सृष्टि नहीं होती तो मनुष्य और देवता आदि युद्धमे कटारीका क्रम क्योंकर जानते ॥ ४ ॥ तू युद्धमे किसीसे सहन नहीं हो सकनेवाली ८ कटारी लाया, सो भरे हुए पेटसे ९ ढाल फोड़कर पार निकल गई, अतः युद्धमे एरा (वहादुर) कुंभा राणाही है और राक्षस देवता या मनुष्य आदि दूसरा ऐसा नही प्रतीत होता ॥ ५ ॥

सुना गया है कि नागोरमें यवनोंका वहुत वडा थाना था। वहाँके यवन गौओंको मारते थे। इस कारण महाराणा कुंभाने चढाई करके उस थानेको काट डाला। उस पीछे एक दिन एकलिंगेश्वर महादेवके दर्शनार्थ गये। वहां एक गायने बैलके समान गर्जनाकी सो सुनकर महाराणा "कुंभलगढ" चले गये, और एक छप्पय छंदका चरण (कामधेनु तंडव करिय) कहा, और वारवार इसीको कहते रहे। इस तरह कई दिन निकल गये पर कोई जवाव न दे सका, जिससे सव लोग ववरा गये, परन्तु उस समय वहां कोई चारण नही था जो इस भावको समझता क्योंकि ज्योतिषियोंने महाराणासे कह दिया था कि आपकी मृत्यु चारणके हाथसे होवेगी, इस कारण महाराणा कुंभाने सव चारणोको मेवाडसे वाहर निकाल दिये

थे, परन्तु मेवाडके उमराओंमेंसे एक सरदारके यह नियम था कि, वे चारणका मुख देखे विना भोजन नही करते थे। इस कारण छिपे वेशमें उन्होंने एक चारणको अपने पास रख छोडा था। उसने उस सरदारसे कहा कि यदि मुझे ले चलो तो मैं महाराणा साहवका यह कहना छुडादूं। इसपर उस चारणको वे महाराणाके सन्मुख ले गये और उसने निम्न-लिखित छप्पय छंद बनाकर सुनाया। इसपर महाराणाने कहा कि, तू राजपूत नहीं है, कोई चारण प्रतीत होताहै परन्तु जो चाहे सो मांग मैं प्रसन्न हूं। इसपर उस असाधारण जाति-हितैषीने निवेदन किया कि आपने विना अपराध चारणोंको मेवाड़के वाहर निकाल दिये हैं, उन सवको पीछे बुलाकर उनकी जीविका उन्हें देवैं। तव उक्त महाराणाने उन सव चारणोंको पीछे बुलाकर उनकी जीविकाएं उन्हें प्रदान करदी। वह छप्पय यह है—

छप्पय (१९)

जद धर पर जोवती,
देख मन मांह डरंती ॥
गायत्री संग्रहण,
द्रस्ट नागोर धरंती ॥
सुर तेतीसूं कोट,
आण नीरंता चारो ॥

नह खावत नह चरत,
मने करती हहकारो ॥
कुंभेण राणा हणिया कलमं,
आजसं उर डर उत्तारिय ॥
तिण दीह द्वार संकर तणें,
कामधेन तंडव कारिय ॥

टीका–जब पृथ्वीकी तरफ देखती तो मनमें डरती, १ गौओका २ नाश होनेके कारण नागोरकी तरफ देखा करती, तेतीस करोड देवता आकर वास डालते, पर न तो खाती और न चरती और मनमें ३ हाहाकार शब्द करती रहती परन्तु जब राणा कुंभाने ४ मुसलमानोंको मारडाला तब ५ आजसे उसका डर मिटगया इस लिये उसदिन शंकरके द्वारपर आकर कामधेनुने ६ गर्जनाकी थी ॥

महाराणा उदय करणजी।

उक्त महाराणा वि. सं. १५२५ मे गद्दी बैठे, जिसके थोडे ही समय पीछे महाराणा कुंभाजीके कृपापात्र सरदार इनसे अप्रसन्न होगये जिनको दबानेके लिये उक्त महाराणाने सीरोहीके राजाको जो उस समय बहुत प्रबल होनेपर भी मेवाड़के अधीन था, सहायता मिलनेकी आशासे स्वतंत्र कर दिया यह सब देख कर सरदारोनें इनके छोटे भाई रायमल जीको ईडरसे बुलालिया और उदय करणजीको शिकारके

मिस बाहर निकालकर किलेमे सं. १५३० में रायमलजीका कब्जा करा दिया । तब उदयकरणजी ' मांडू ' चले गये और वहां उनपर बिजुली गिरी जिससे उनकी मृत्यु हुई लोग कहते हैं कि, यह उनको बापको मारनेका उचित दंड मिला था, सुना जाता है कि मेवाड़की पीढियोंमें पितृघातीका नाम नहीं लिखा जाता अतः संभव है कि इनका नाम भी मेवाड़की पीढियोमें दर्ज न हो ।

महाराणा श्रीरायमल्लजी ।

ये महाराणा उदयकरणजीको भगाकर आप विक्रमी संवत १५३० में गद्दी पर बैठे और बडे दानी और वीर हुए, इन का देहांत सं० १५६५ में हुआ ।

गीत (२०)

चढे पूर पावस बंषै रायमल रण चढे,
नवो भाराथमें दीठ नमणा ॥
वहै वंनास तूं कायं रातै वरण,
जळ अधक पूछियो गंग जमणा ॥ १ ॥

कोड़ भड़ कचारिया रायमळ कोपिये,
जुड़ंण मोटा करै कुंभ जायो ॥
रळंतले रुधर रणभोम रहियो नहीं,
ऊपटे नदी जळ मांह आयो ॥ २ ॥

त्रंजड़ मेवाड़ रायजीप माळवतणा,
तुरक दल रहचियाँ रायमल तीर ॥
असर घड़तोड़ ओहाल सुंह उतरे,
नदी नदियां मिले रातड़ो नीर ॥ ३ ॥
हुवे हींदू घडासेन हूवे हुवै,
मूझ उपकंठ सगराम मातो ॥
घणो सीसोदिये वहे श्रांई घड़ा,
रुधर ध्रण मिले तण नीर रातो ॥ ४ ॥

टीका—इधरसे वर्षा ऋतु चढी और इधरसे मांडूके बादशाहसे युद्ध करनेके लिये महाराणा रायमलने १ वर्षा ऋतुमें चढाईकी जिससे बनासका पानी लाल होगया इस कारण गंगा यमुना बनासको पूछती है कि तेरा रंगलाल क्यों होगया इसका उत्तर बनास देती है २ नम्रहुई. ३ क्यों ॥ १ ॥ महाराणा कुंभाके पुत्ररायमलनें कोप करके बडे बडे४ युद्ध करके करोडों बहादुरोंको काटडाला, वह लोहू ५ बहकर रणभूमिमें नही रहा और बढकर नदीके जलमें चला आया ॥ २ ॥ मेवाड़के राजा रायमलने अपनी ६ तरवारसे मालवाके मुसलमानोंको मेरी तीरपर ७ काटा वह ८ रुधिर ९ छोटे नालोमे उतर कर मुझमें आया इस कारण पानी लाल होगया है ॥ ३ ॥ १० दोनो सेना लडी और वह युद्ध मेरेही किनारेके ११ पास हुआ था, जिसमें सीसोदिया महाराणाने बहुत १२ रुधिर बहाया, सो वह रुधिर मुझमें मिलकर मेरा पानी लाल होगया ४॥

गीत (२१)

कर घातै मूंछ कहो की ऊपर,
ठाकर वोरां वाद ठहै ॥
राजकुळां पैंतीस रायमल,
करबा ओळग मेळ कहै ॥ १ ॥
कनक तुरी डंड लै कुंभावत,
रायां माल मकर मन रीस ॥
मंडळवै मेवाड़ नरेसुर,
पाय बिळग्गा कुळ पैंतीस ॥ २ ॥
बळ परहरै बना बध बोलै,
सनंस असा राखै धरसूत ॥
राण तुहाळी पोळ रायमल,
राजधणी सेवै रजपूत ॥ ३ ॥

टीका–जो १ अप्रगल्भ (चतुर नहीं) राजा हैं वे ही रायमलसे हठ करते हैं शेष क्षत्रियोंके पैंतीस ही कुल रायमलके साथ संधि करना स्मरण किया करते हैं ॥ १ ॥ हे कुंभाके पुत्र रायमल! सोना घोडे आदि जो चाहै सो ले, परन्तु मनमें क्रोध २ मत कर. हे मंडलेश्वर मेवाड़के राजा! शेष पैंतीसही क्षत्रियोंके कुल तेरे पैरों लग गयेहैं ॥ २ ॥ वे राजा लोग बलका दर्प छोड़ बैठे जो कि बढ़कर वचन बोलने वालेहैं। हे राणा

रायमल ! राज्योंके अधिपति राजपूत आपका द्वार सेवन करते हैं । और २ लज्जा रखतेहैं (लज्जित होतेहैं) ॥ ४ ॥

महाराणा श्रीरायमल्लजीके ज्येष्ठ पुत्र उडणा प्रथीराजजी ।

ये बहुत वीर यशस्वी और प्रतापी हुएहैं । लल्ला नामक पठानने सोलंखियोंसे 'टोडा' छीन लिया था, तब सोलंखी चीत्तौड़ जाकर अरजाऊ हुए इसपर कुंवर प्रथीराजजी अकस्मात् टोडे जा पहुंचे और टोडा विजय करके सोलंखियोंको दे दिया । इस अचानक पहुंचजानेसे लोगोंको यह मालूम न होसका कि ये इतने शीघ्र क्योंकर पहुंच गये अतः उसी दिन से यह उडणा प्रथीराजजी कहलाने लगे । इनका वृत्तान्त "वंशभास्कर" मे भी लिखाहै ।

गीत (२२)

टूंड चढे प्रथीमल भांजे टोडो,
 लला तणैं सर धारे लोह ॥
वाये वाय नळी जिम वाजै,
 ग्रध मणधर जण आवै मोह ॥ १ ॥
कूभाहरै लडे खळ कीधा,
 मेतळवै नह तास मुणै ॥

पवन झणंके सब रस परसै,
सत्रां सगहस नाम सुणे ॥ २ ॥
माल संभ्रम रहचे मीरवचा,
कर पै जूयल़ खंड किया ॥
अनल़ भरेण बाजती आठी,
हरण भुयंगम दिये हिया ॥ ३ ॥
कलमां चरण सार का चरिया,
सीसोदै नर भर समर ॥
कुरँग उरँग राता किण कारण,
हाड बाजतै नाद हर ॥ ४ ॥

टीका—लल्ला पठाण पर शस्त्र धारण करके कुंवर पृथ्वीराजने सेनाके मुखपर चढ़कर टोडाको भांजा (तोड़ा) उस युद्धमें यवनोंकी नल़ियों (पैरोंकी हड्डियों) में पवन भर कर वे पूंगीके समान वजने लगी जिससे मणिधारी सर्पोंको मोह होगया ॥ १ ॥ कुंभा राणाके पौत्रने लड़कर उन दुष्ट यवनों को भून डाले सो वे बोल नहीं सकते ॥ २ ॥ उस दूसरे रायमलने यवनोंको काटकर हाथपैर जुदे जुदे करदिये, जिनमें पवन भरकर आठछिद्रो वाली (पूंगी) की तरॅह वजने लगी जिसपर हरिण और सर्पोंका चित्त जाने लगा ॥ ३ ॥ उस युद्धमें शीसोदिया कुंवर पृथ्वीराजने तरवारसे यवनोंके चरण काट डाले, जिनकी हड्डियोके वजनेसे हरिण और सर्प प्रीति युक्त होगये ॥ ४ ॥

गीत (२३)

पारसमें प्रीत वडै पाहूणे,
मद विपरीत महा रिण साह ॥
पडियाळगे नासियो पीथल,
पीधो सेन तणै पतसाह ॥ १ ॥
भालां तणौ पाणगो भारी,
कुंभ कळोधर जतैं कियो ॥
तण अवंहार बेवैंळा तोडे,
गोरी सेन अचेत गियो ॥ २ ॥
पीथा जतैं तोड़ पत्रावे,
आंणे मुंह धकतो ऐराक ॥
असपत सेन न सकियो ऊठे,
छावा सींघ तुहाळी छाक ॥ ३ ॥
प्रथीराज अर गंह पतसांही,
भुजळग धार अणी भाराथ ॥
साथ न हूंतो जिके सिकंदर,
सूरह जांपियो लछा साथ ॥ ४ ॥

टीका–कुमार पृथ्वीराजने पारगमें प्रीति करनेवाले वडे पाहुने (लल्ला पठान) को उस वडे युद्धमें तलवारसे नमाकर विपरीत मद्य पिलाया और वादशाह (लल्ला) की सेनाने पीया ॥ १ ॥ महाराणा कुंभाकी कलाको धारण करनेवाले कुमार पृथ्वीराजने उस युद्धमे भालोकी १ पानगोष्ठी (मतवाल) की जिसे अपने २ दुहरे ३ बंधन तोड़कर (असावधानीसे) गोरीकी सेना अचेत होकर भगगई (यहां गोर नगरका रहने वाला होनेके कारण लल्लाको गोरी कहाहै) ॥ २ ॥ कुमार पृथ्वीराजने जलता हुआ (वहुततेज) ४ मद्य वादशाहकी सेनाके मुहके लगाकर पिलाया सो हेसिंहके वच्चे ! (पृथ्वीराज) तेरी उस छाकसे वादशाही सेना उठ न सकी ॥ ३ ॥ कुमार पृथ्वीराजने उस ६ युद्धमे तलवार धारण करके उसकी नोकसे वादशाह शत्रुका ६ गर्व मिटा दिया. इस युद्धमें सिकंदर लल्लाके साथ नही था इसीलिये वीर माना गया । यदि वह भी विद्यमान होता और पृथ्वीराजसे युद्ध करता तो उसका भी यंह ही हाल होता जो लल्लाका हुआ ॥ ४ ॥

इसी युद्धके विषयमें ये नीचे लिखीहुई दो प्राचीन तुके भी कहावतके तौर पर प्रसिद्ध हैं ।

भाग लल्ला ! पृथ्वीराज आयो ।
सिंहकै साँथरै स्याल़ ब्यायो ॥

अर्थ–हे लल्ला ! पृथ्वीराज आया, भग, सिंहकी गुफामें गीदड़ने वच्चा दिया है सो कैसे रहेगा, भगजा ॥

महाराणा श्रीसंग्रामसिंहजी वडे
(सांगाजी)

ये महाराणा विक्रमी संवत् १५६५ में गद्दी विराजे और वडे वीर और यशस्वी हुए । इनके समयमें मालवा और गुजरातके वादशाह वहुत वलवान थे, जिन्होंने कई वार सांगाजीसे युद्ध किया पर हर लडाईमें उन्हे हारकर भागनाही पडा निदान एक वार दोनोंने शामिल होकर महाराणा पर चढाई की परन्तु उसमे भी दोनों वादशाहोंकोही भागना पडा ।

संवत् १५७४ में इन महाराणाने मांडूके वादशाह महमूदको कैद करके उसका जडाऊ ताज और कमर पट्टा लेकर उसको कैदसे छोड दिया, और कृपा करके उसको मांडूका राज्य पीछा देदिया, तथा इसी विजयकी खुशीमें करणिया शाखाके चारण हरीदासको संपूर्ण चीतोडका राज्य देदिया । परन्तु हरीदासजीने राज्य प्रवन्धमें कठिनता विचार कर पुनः राज्य शासन अपने स्वामीकेही अधीन कर दिया ।

संवत् १५८४ मे महाराणा सांगाजीका वादशाह वावरके साथ युद्ध हुआ जिसमें वादशाहको जव यह निश्चय होगया कि महाराणाका वल अधिकहै तो उसने वयाने तकका देश उन्हें देकर संधि करलेनी चाही, और कुछ कर देना भी स्वीकार करलिया, और इस संधिकी शर्ते सलहदी तंवरकी मारफत महाराणाके सामने पेशकी परन्तु महाराणाको तो यवनोको

भारतवर्षसे निकाल देनाही मंजूर था इस कारण संधि करनेसे उन्होंने इनकार किया। तव सलहदी तंवर अपनी मारफत की हुई वातचीतको महाराणाके नामंजूर करनेसे अप्रसन्न होकर ठीक युद्धके समय पैंतीस हजार सवारोंसहित वादशाहकी फौजमे जा मिला। इससे तो महाराणाको कोई हानि नहीं हुई, परन्तु इस युद्धमें महाराणाके ललाटमें एक वडे वेगका तीर लगा जिससे महाराणा मूर्छित हो गये। तव कई राजा उनको शिविकारूढ कराके (पालखीमे डालकर) युद्धसे ले भागे। और पछिसे सादड़ीका राजा अज्जा झाला छत्र चंवर लगा कर महाराणाके हाथी पर सवार होकर युद्ध करके वीरतासे काम आया। (उसही दिनसे सादड़ीवालोंपर छत्र चमर होते हैं) इधर वसवानामक ग्राममें आनेपर कि, जो वर्तमान समय में जयपुरके राज्यमें है महाराणाकी मूर्च्छा खुली, तव उन्होने पूछा कि विजय किसकी हुई इसपर साथवालोंने सव हाल निवेदन किया। सो सुनकर महाराणा सांगाजीको अत्यन्त खेद हुआ. और आज्ञाकी कि, मुझे युद्ध क्षेत्रसे क्यों उठालाये इससे तो मुझपर भगनेका कलंक लगगया। इस कारण मैं यहीं रह कर सेना एकत्र करके वावरको पराजित कर चित्तौड जाऊंगा। इस वात पर सोदा वारहठ जमणाजीने एक गीत सुनाया जो इनके काव्योंके अन्तमें लिखा है। फिर महाराणाके अधर्मी सेवकोंनें उनको विष देकर मारडाला ऐसी प्रसिद्धिहै सुना जाता है कि इन महाराणाके देहान्तके विषयमे वावर अपनी तुजक वावरीमे यों लिखता है कि मैंने चंदेरी फतहकी तव महाराणा सांगा वहुत वडी फौज लेकर दुवारा मेरे पर आता था, सो रास्तेमें दफैतन मरगया।

इन महाराणाका देहान्त विक्रमी संवत् १५८४ में हुआ. इनके समयमे राजपूतानेके कितने ही भागमें मेवाडका अधिकार विशेष होगया था और गवालियर, चंदेरी, कालपी आदिके राजाओंनें भी मेवाड़की अधीनता स्वीकार करली थी ॥ अमरकाव्यमें इनका देहान्त कालपीमें होना लिखा है जो भी बाबरके लेखसे मिलता है।

गीत (२४)

भलो राण सगराम इम अधर्ड़ची मुख भणै,
दुजड़हत दससहँस बोल दीधो ॥
पदमहत मयँकचो ग्रहण है अधपहर,
कलसचो ग्रहण दिन तीस कीधो ॥१॥
हठी रणषेत सगराम कुंभाहरे,
घड़ाँ दाणव तणी सझे रण घाय ॥
घणो तो सूर ससि ग्रहणहै दुयघड़ी,
पप उभै सरव गल कीध पतसाय ॥२॥
षलँचिया धरा षागां गुहै षेंगरे,
असुरची अरथकै घर अथांणो ॥
मेलहतो छांडतो वडा पोह मालवी,
रूक साराहियो राव राणो ॥ ३ ॥

मिले संगराम संगराम ज़ुध मसलियो,
त्रजड़ वल़ षान षंधार तूटो ॥
ग्रास भंडार सपतंग लै सरवगल,
छोडियां साह महमंद छूटो ॥ ४ ॥

टीका-१ शत्रु अपने मुखसे यह प्रशंसा करते हैं कि २ वीर महाराणा संग्रामसिंहका खड्ग अच्छा डोव दिया हुआ है। सूर्य और चंद्रमाका ग्रहण तो आधे प्रहर तक होता है परन्तु महाराणानें यवनोंका ग्रहण तीस दिन तक किया ॥ १ ॥ कुंभाके पोते हठी संग्रामसिंहने दानवरूपी यवनोंकी ३ सेनासे युद्ध किया जिसमें सूर्य चंद्रका ग्रहण तो दोही घडी होता है पर महाराणानें बादशाहका एक महीने तक पूरा ग्रहण कर लिया ॥ २ ॥ ९ घोडोंके मुंह आगे असुररूपी यवनोके ४ टुकड़े टुकड़े करके पृथ्वीके लिये उनका अचार करडाला और मालवाके बादशाहको पकड़कर छोड दिया, जिससे उस महाराणाकी तरवारकी सबने प्रशंसा की ॥ ३ ॥ संग्रामसिंहने युद्धमें मिलकर बादशाहका मर्दन किया, और तरवारके बलसे खंधारके खानको तोड़कर भंडारके सहित राज्यके सात अंग लिये पछि उस पूर्ण ग्रास कियेहुए मुहरम्मदशाहको कैदसे छोड़ा ॥ ४ ॥

गीत (२५)

साहां राव ग्रह मेल्हियो सांगै,
नियम न जोवै नहीं नियाव ॥

अमर उकेकल़ करो एकरां,
बोहो नामी जंपै बल़राव ॥ १ ॥
बल़ पायाल़ैं चल़वियो बोलै,
जुग बोल़ियो घणा दिन जाय ॥
मांडव राव मुक्यो मेवाड़ै,
केसव मूझ न मुकहो काय ॥ २ ॥
सेनापती मेल्हियो साहे,
घाये साझे मेछ घणा ॥
मोटाईह करै मेवाड़ो,
निसहर जंपै नारयणा ॥ ३ ॥
महदातार पयंपै माहव,
बोल़ किसो ऊचरां बियो ॥
ग्रहियां पछैं उग्रहणो गोविंद,
कीजो जिम सगराम कियो ॥ ४ ॥

टीका-भगवान् वामनजीके बन्धनमें पाताल वास करने वाला राजा २ वालि वहुत नम्र होकर 'जंपे' अर्थात् कहताहै कि हे अमर ! (भगवन्) महाराणा सांगाने वादशाहको कैद करके छोड़ दिया, और अपनी जगहपर बैठा दिया। किसी नियम और न्यायका विचार नही किया ॥ सो आपभी मुझे १ मुक्त करो ॥ १॥ ३ पातालमे चलाहुआ अर्थात् रहने

वाला वलि कहताहै कि हे केशव ! मैंने वहुत दिनोंसे आपके वन्ध-नमें रहकर युग पूरा करदिया । मेवाड़के राजा सांगाने मांडूके पातसाहको कैद करके पीछा ४ छोड़ दिया, अव आपभी मुझेभी क्यौं नहीं छोड़ोगे ॥ २ ॥ वलि नारायणसे कहताहै कि सहस्रों शस्त्रधारी म्लेच्छोंको मारडाले और सेनाका दर्प रखणेवाले पातसाहको पकड़ लिया । तथा पीछे भी उसके साथ मोटाई अर्थात् वडापन कर उसको छोड़ दिया ॥ ३ ॥ मही (पृथ्वीका) दातार राजा वलि माधव (भगवान्) से प्रार्थना करताहै कि हे गोविन्द ! दूसरा वचन क्या वोलूं मेरी तो यह ही विनती है कि जैसे महाराणा संग्रामसिहने ग्रहण करके पातसाहको मुक्त करादिया वैसेही आप मेराभी वन्धनसे उग्रहणा (छोडना) करो अर्थात् मुझेभी मोक्ष देवो ॥ ४ ॥

गीत (२६)

षंडां लष मेर पंवे षूमांणो,
रोसारुण रीसाणो राण ॥
सांगो वंध त्रिया नह साहै,
सांगो वँध साहै सुरताण ॥ १ ॥
रोहंणियाल़ सझे रायांगुर,
घाये असुर उतारै घाण ॥
अवल़ा वाल़ न धारै आडी,
षूंदालेम घातै षूंमाण ॥ २ ॥

साझे मेछ सुजंड़ जस धरिये,
कल्कल् कोप किये कमलँ ॥
गाल्ावंध महल् नह घातै,
गुणं घातै पतसाह गल् ॥ ३ ॥
असंमर गहे कलंम किय आवट,
वढतै घडा कँवारी वंद ॥
मेछांतणों प्रवांड़ो मोटो,
नवषंड हुवो राण नारियंद ॥ ४ ॥

टीका–नवों खंडोमे महाराणाका यश १ चमकताहै अर्थात प्रकाशमान हो रहाहै कि २ खुमानसिहके वंशवाला महाराणा सांगा रोषारुण हो स्त्रियो (कायरो)को वांधकर नही पकड़ता वह वादशाहोको वांधकर पकडनेवाला है ॥ १ ॥ ३ शत्रुकी प्रबल सेनाओंको रोकनेवाला ४ राजाओंका राजा (वीर) खूमाण स्त्रियोंको और वालकोंको नहीं पकडता किन्तु ५ राजाओंपरघात करता है ॥ २ ॥ यशस्वी राणाने कोपकर ६ भाला, मजा जिससे म्लेच्छोंके ७ मस्तक कल्कल् करदिये अर्थात् छिन्न भिन्न करडाले । यह राणा ८ महिलाओंका (स्त्रियोंका) वन्धन नही करताहै किन्तु वादशाहके गलेमें ९ धनुषकी प्रत्यञ्चा अर्थात् रस्सीको डालताहै ॥ ३ ॥ कंवारी सेनाके सामने १० खड्ग लेकर महाराणा वढा और ११ यवनोंका नाश करडाला । हे राणा ! यह म्लेच्छोंका युद्ध नवोंखण्डोंमे वड़ा नामी हुआ ॥ ४ ॥

गीत (२७)

मोज समँद मालवत महाबल़,
अचड बियां न हुवै अे आज ॥
मांडव गढ गुज्जर ग्रह मूके,
रेणवां दीध चत्रगढ राज ॥ १ ॥

मोकल़हरा अधाप मामलां,
पोरस धिनो षत्रीवट पाण ॥
षितपुर तषत साहरा षोसे,
दीधा तैं पातां दीवाण ॥ २ ॥

सांगा ग्रह मोषण सुरताणां,
कूंभाहरा जोड़ करतार ॥
किय हरिदास राण केहरियो,
व्राविया छत्र चमर बडवार ॥ ३ ॥

तूं हंमीर सारीसो त्यागी,
वर उमिया दीधो सु वर ॥
जुग चहुंवै वातां जग जोड़ी,
आहाड़ा रहसी अमर ॥ ४ ॥

['केसरिया' चारण हरिदासजी कृत]

[**नोट**–महाराणा सांगा जैसे वीर थे, वैसेही वदान्य (दानी) भी थे। इन्होंने केसरिया शाखाके चारण हरिदास जीको चित्तौड़का राज्य दान करदिया था। जिस पर हरिदासजीने एक तो यह, और दूसरा 'धन सांगा हात' इत्यादि गीत (जो कि इस गीतके आगेही लिखा गयाहै,) वनाकर महाराणाके यशको चिरस्थायी करदिया।]

टीका–हे रीझके समुद्र ! रायमलके पुत्र 'महाबल' आज ऐसी वातैं दूसरोंसे नही हो सकती, तैंने मांडूगढ और गुजरातके वादशाहोंको पकड़कर छोड़ दिये और चित्तौड़ जैसा राज्य चारणोंको देदिया ॥ १ ॥ हे झगड़ोंसे नहीं तृप्त होनेवाले मोकलके पौत्र ! तेरे पौरुष और क्षत्रियत्वके अभिमानको धन्यहै, हे दीवान ! तैंने वादशाहोंकी भूमि, नगर और सिंहासन खोसकर चारणोंको देदिये ॥ २ ॥ हे महाराणा कुंभाके पोते ! वादशाहोंको पकड़कर छोड़नेवाले महाराणा संग्रामसिंह ! तैंने मुझ हरिदास नामक केसरिया चारणको छत्र चमर देकर राणा वनादिया जिससे तू कर्ता (परमेश्वर) के समानहै ॥ ३ ॥ हे महाराणा ! तू हमी सरीखा दातारहै और पार्वतीके पति (शिव) ने तुझे वर दियाहै इसलिये हे आहाड़ा ! चारोंही युगोंमे तेरी दोनों वातें जगतमें अमर रहैंगी ॥ ४ ॥

गीत (२८)

धन सांगा हात हमीर कळोधर,
गौरीवै मोषण ग्रहण ॥

गढ आपिया नको गढपतियां,
तो ज्यूंही रायमाल तण ॥ १ ॥
दै गज गाम कोड़ हैंवर द्रब,
अधपत दत चतचै उनमान ॥
सिंहासण छत्र चमर सहेतो,
दूजे किणी न दीधो दान ॥ २ ॥
रजवट रीझ षीज धन राणा,
लड़ ग्रह मुर सुरताण लिया ॥
षित चित्रकोट कठ्या षूमाणा,
दिग विजई तैं रींझ दिया ॥ ३ ॥
सबलां सांड़ निबल साधारण,
ब्रवजै तू सांगा बर बीर ॥
किवराणा कीधा कैलपुरा,
हिंदवाणा रिव बिया हमीर ॥ ४ ॥

[केसरिया शाखाके चारण हरीदासजी कृत]

टीका—हे हम्मीरकी कलाको धारण करनेवाले गोर-वंशके पतिको पकड़ कर छोड़नेवाले महाराणा सांगा ! तेरे हाथोंको धन्य है, हे रायमलके पुत्र ! तेरे समान अन्य किसी राजाने गढ नहीं दिये ॥ १ ॥ हे राजा ! अपने चित्तके

अनुमान पूर्वक हाथी गाम और करोड़ों घोड़े देकर सिहासन, छत्र तथा चमर सहित जो दान आपने दिया है, वैसा अन्य किसीने नही दिया ॥ २ ॥ हे राणा ! आपका रजोगुण युक्त दान और क्रोध धन्य है, कि आपनें वादशाहसे युद्धकरके उसको १ तीनवार पकड़ लिया, और हे खुम्माणवंशी दिग्विजयी आपने चित्तौड़का राज्य कवियोंको प्रदान कर दिया ॥ ३ ॥ हे वरिवर महाराणा सांगा ! आप बलवानोंके लिये बलवान और निर्वलोके लिये साधारण (बल नहीं करने वाले) कहलाते हैं, हे कैलपुरा [२] हिन्दुओंके सूर्य. दूसरे हम्मीरसिंह ! आपने चित्तौड़का राज्य देकर कवियोंको राणा वना दिये ॥ ४ ॥

गीत (२९)

अवसाण नमो सांगा अड़पायत,
माण पाण धन पंचमुष ॥
जड़ै जितूं सुरताण जँजीरां,
राण तमासा तणी रुष ॥ १ ॥
सूरांगुर रायमाल समोभ्रम,
वर सिव सगत तणैं वीराण ॥
सांकल वेल जड़ै सुरताणां,
पेल ज्युंही डारण पूमाण ॥ २ ॥

सूरत झोक त्रलोक सराहै,
बीजळ झोक दियंतां वाह ॥
अटकै लड़ लंगर असपतियां,
रामतियां ज्यूंही रिमराँह ॥ ३ ॥
सझबो सेल बाहिबो अर्संमर,
धूपटंबो अर नयँर धरा ॥
साहां पकड़ छोड़बो सांगा,
हांसा षेल्ह हमीर हरा ॥ ४ ॥

टीका—हे १ शिवके समान २ वीर सांगा ! तेरे वडप्पन वीरता और ऐश्वर्यको नमस्कारहै तू ३ वादशाहको जो जंजीरोंसे जकड़ताहै सो मानो तेरे लिये एक खेलहै ॥ १ ॥ हे रायमलजीके ४ समान, वीर ५ुमाणसिंहके वंशवाले सांगा राणा ! भगवान् शिव और शक्ति अर्थात् भगवती दुर्गाकी कृपासे तैनें सुलतानको जो पकड़कर कैदकर रक्खाहै सो तेरे लिये सचमुच यह खेलही है ॥ २ ॥ तेरी सूरतके झोकेकी तीनों लोक प्रशंसा करतेहैं, और तेरी ६ तलवारके झोकेपर वाह वाह देतेहैं, तैनें वादशाहको पकड़कर उसके वेड़ी डाल रक्खीहै, सो ७ शत्रुओंको पकड़कर कैद करना तो तेरे लिये खिलवाड़है ॥ ३ ॥ हे महाराणा सांगा भाला (वरछा) संभाना, ८ तलवार चलाना और शत्रुओंके ९ नगरोंको १० जलाना और वादशाहोंको पकड़ पकड़ कर छोड़ देना तो तेरे लिये हंसी खेलहीहै ॥ ४ ॥

गीत (३०)

महँमद नें सांगण घावां मिऴया,
दीपग[२] कोतक दीठा ॥
मांडव मदन रुदन ज्यां[३] मसवण,
मणधर हुवा मजीठा ॥ १ ॥

सांगण सूर तनें सुर साषी,
तूठो वायां[४] सुजंड़ तण ॥
काळा[५] गोष बीबियां काजळ,
रह्या रतंवर नाग रण ॥ २ ॥

वीवड़ियां[६] रसग्रामँ[७] विहंडे,
ढऴिया काजळ रेण ढवी ॥
जाझँण कोणं[९] धरत मझ झूलै,
नवकुळ कीधी भांत नवी ॥ ३ ॥

परँहँडरूप[१०] पदमहत पेषे,
कुंभकळोधर जुद्ध किया ॥
धवळागिर आंसुये धूंधळा,
तुरकां रुधर भुयंग तिया ॥ २ ॥

रोद रहँचिया[११] सांगण राणें,
कलमां रोजा थया किम ॥

आँष तणैं जल़ नदी ऊपटी,

ओरँग सुरँगा थया इम ॥ ५ ॥

टीका–मांडूका १ वादशाह मुहम्मद और सांगा युद्धमें वावों मिले, जहां २ प्रत्यक्ष यह कौतुक देखनेमें आया कि यवनोंकी ३ स्त्रियोंके आंसुओंसे और यवनोंके रुधिरसे पातालके सर्प लाल होगये ॥ १ ॥ हे सांगा तू ५ भाला बढाकर ४ शब्दोंसे प्रसन्न हुआ उसका सूर्य साक्षी है, तेरे उस युद्धमें बीबियोंके काजल और यवनोंके रुधिरसे नागराज (सर्प) लाल रंगके होगये ॥ ३ ॥ ६ यवनोंकी स्त्रियोंके शृङ्गार रसके ७ समूहको (यवनोंको) तैंने काटडाला, जिससे उनके रुदनसे कज्जल वहकर जमीनपर ठहर गया, और उसमें ८ बहुत ९ रुधिर मिलगया जिसमें झूलनेसे नवकुली नागोंमें तैंनें नवीन रीति करदी ॥ २ ॥ हे महाराणा कुंभाकी कलाको धारण करनेवाले महाराणा सांगा! तैंनें जो युद्धमें १० शत्रुओंको कटेहुए रूपवाले (कान्तिहीन) देखे उस समय यवनोंकी स्त्रियोके आंसुओंसे धवलगिरी तो धुंधला होगया और यवनोंके रुधिरसे सर्प लाल पड़गये (अध्याहार है) ॥ ४ ॥ महाराणा सांगाने यवनोंको बडी भयंकर रीतिसे ११ काटडाला, जिससे यवनोंकी स्त्रियोके आँखोंसे आंसुओंकी नदी वही जिससे विना रंगवाले और बुरे रंगवाले थे सो श्रेष्ठ रंगवाले होगये ॥ ५ ॥

गीत (३१)

इब्राहिम पूरब दिसा न उलटै,
पछम मुदाफर न दै पयाण ॥
दषणी महमदसाह न दोड़ै,
सांगो दामण त्रहुं सुरताण ॥ १ ॥
साह येक दस येक न साझै,
विदस न साझै हेक बण॥
सुजसै राण रायमल संभ्रम,
त्रेषलिया पतसाह त्रण ॥ २ ॥
सांई सूरो गसण न साझै,
लीह नका लोपवै लग ॥
वापाहरै वला क्रम बांधा,
पतसाहां त्रहुं तणा पग ॥ ३ ॥

टीका—इब्राहिम पूर्वमे नहीं बढ़ सकता, मुदाफ़र पश्चिमको नहीं आसकता, और मुहम्मदशाह दक्षिणमें नहीं बढ़ सकता इसतरह महाराणा सांगा तीनों बादशाहोंके लिये पगबंधन रूप होरहाहै ॥ १ ॥ एक बादशाह दूसरेकी सहायता नहीं कर सकता, और दूसरी दिशामेंभी एक अन्यका साझा नहीं कर सकते, सो महाराणा रायमल्लसरीखे महाराणा सांगानें तीनों बादशाहोंको रोक दिये हैं ॥ २ ॥ इसलिये स्वामी बनकर

और वीर होकर चल नही सकते, और जो सीमा बांधदी है उसे लोप नहीं सकते । बापाके वंशवाले सांगा राणानें अपने बलसे क्रमपूर्वक तीनों बादशाहोंके पैर बांध दिये हैं ॥ ३ ॥

गीत (३२)

मेळे दळ सबळ कळाधर मोकळ,
नाम सहै सुरताणा नाद ॥
ईडर थकी मजीत उथापे,
पै ईडर थापिया प्रसाद ॥ १ ॥
सांत्रळ सहर ऊजळो सांगा,
काट कलम दळ तूं ज कियो ॥
रिध तिण पीर पूज ज्यो राणी,
थिर तिण हींदूकार थियो ॥ २ ॥
ऊलाळिया चढाये अणिंये,
रोद ज तैं मेवाड़ा राण ॥
कलम कुराण बांग तज कहवा,
पोहोवै तण बांचवै पुराण ॥ ३ ॥
हींदूकार तणा हलकारे,
घणों कटक वँध मेळ घणां ॥
ईडर बळे वेद इधराया,
ताड़े दळ सुरताण तणां ॥ ४ ॥

टीका—हे मोकलकी कलाको धारण करनेवाले, बलवान् महाराणा सांगा! तू अपनी फ़ौज भेजकर बादशाहोंको नमा कर उनका शब्द सुनता है, और ईडरकी मसजिदको गिराकर वहांपर तैंनें १ मन्दिर बनवा दिया है॥ १॥ यवनोंके दलको काटकर तैंने सांवलानामक शहरको उज्ज्वल कर दिया, और जहांपर पीरोकी पूजा होती थी वहां हिंदुओंके कार्य होने लगे ॥ २ ॥ हे मेवाड़के पति! तुमने२ भालोंके अग्रभागोंपर चढा-कर यवनोंको गिरादिये और वे लोग कुरान पढना और बांग (अजां) देना छोड़ कर ३ प्रभात समयमें पुराण बांचने लग गये ॥ ३ ॥ इस तरह तुमने अपनी बड़ी सेना भेजकर ईडर-मेंसे बादशाहकी सेनाको निकाल दी, जहां पछि हिन्दुओंके कार्य होने लगे और वेदोका उद्धार होगया ॥ ४ ॥

गीत (३३)

असमेध अजामेध हुवा आगैं,
घणूं सुणे नरमेध घणो
आहाड़ा कर नवो ऊपनो,
ताई अरथग ज्यांग तणो ॥ १ ॥
सुर नर असुरे किणी न सुणियो,
बापारै सांगै कज बोम ॥
चोथो ज्याग कियो चीतोड़ै,
हवै हुवा सालरंचर होम ॥ २ ॥

देवा कीध न कीधा दांणव,
सांगै जे निरमे सुकर ॥
हसँत ज्याग जग प्रसध होमतां,
हुवा बिधाता हेक हर ॥ ३ ॥
पुन फळ ग्रहे ग्रहे फळ पोरस,
मालतणों पहरे जसमाळ ॥
करी कैलपुर कळह नवी कथ,
घड़ियो जँग न घड़े धांटाळ ॥ ४ ॥

टीका–अश्वमेध और अजामेध यज्ञ तो पहिले सुनेहैं और नरमेध भी कई वार सुनाहै, परन्तु महाराणाके हाथसे शत्रुओं को होम करनेके अर्थ एक चौथे १ यज्ञकी सृष्टि हुई है ॥ १ ॥ महारावळ बापाके वंशवाले महाराणा सांगाने जो कार्य कियाहै वह देवता, मनुष्य, वा असुर आदि किसीको करते नहीं सुना अर्थात् इस चित्तौड़पतिने चौथे प्रकारका यज्ञ किया, जिसमें उसने २ सालर वृक्षके खानेवालों (हाथियों) का होम किया ॥ २ ॥ सांगाने जो अपने हाथसे कार्य किया, वह न तो देवताओंने किया और न दानवोंने किया जिसमें उसने जगत्प्रसिद्ध ३ हाथियोंका होम किया। इस कारण महाराणा भी ब्रह्मा और शिव रूप होगया ॥ ३ ॥ अपने पुण्य और पराक्रम के फलसे ४ यज्ञमें ५ हाथियोंका होम करके कैलपुरा महाराणा सांगाने युद्धमें नयी कथा उत्पन्न की, और यशकी माला धारण की ॥ ४ ॥

गीत (३४)

पड़ै बूंब ढीली सहर सोर मांडुव पड़ै,
सुपह उज्जेण लग थाह साजै ॥
बार पतसाहचे हाथियां बाँधिया,
वार पतसाहसुं न साम बाजै ॥१॥

कटक वध सझै चीतोड़पह कलहतै;
बडा राणां तणां बिरद बहिया ॥
गैमरां तके सुरताणरा ग्राहजै,
गैमरां धणी सगराम गहिया ॥ २ ॥

सार अंकुस सहे मालवत समर भर,
मले चांपानयर ढीलड़ी माण ॥
षडगवल षंभिया किता षेताहरै,
सींधुरां ल्हसकरां सहत सुरताण ॥ ३ ॥

टीका–दिल्ली और मांडूमें कोलाहल मचरहाहै, और इधर उज्जैन तकका थाह लेताहै, बादशाहके हाथी पकडकर अपने द्वारपर बांध रक्खेहैं परन्तु बादशाहसे जाकर मिलाप नही करता ॥ १ ॥ चित्तौड़के पतिने युद्ध करके बडे राणाओंका विरुद रक्खाहै, और इस हाथियोंके पति सांगाने बादशाहके हाथी पकड़ रक्खेहैं ॥ २ ॥ अंकुशरूपी तरवार हाथमें लेकर चांपाने मांडू और दिल्लीका मान मर्दन करके इस खेताके वंश वाले महाराणा सांगाने अपनी तरवारसे कई यवनोंको तो

मारडाले और सेना और हाथियों सहित बादशाहको बांधलिया ॥ ३ ॥

गीत (३५)

सतबार जरासँध आगल श्रीरँग,
बिमेहा टीकम दीध बग ॥
मेलि घात मारे मधुसूदन,
असुर घात नांपे अलग ॥ १ ॥
पारथ हेकरसां हथणापुर,
हटियो त्रिया पडंतां हाथ ॥
देष जका दुरजोधण कीधी,
पछैं तका कीधी कांइ पाथ ॥ २ ॥
इकरां रामतणी तिय रावण,
मंद हरेगो दहकमल ॥
टीकम सोहि ज पथर तारिया,
जगनायक ऊपरा जल ॥ ३ ॥
एक राड़ भरमांह अवत्थी,
ओर हो आणे केम उर ॥
मालतणा केवा कज मांगा,
सांगा तू सालै असुर ॥ ४ ॥

[सोदा बारहठ जमणाजी कृत]

[**नोट**—यह गीत बारहठ जमणाजीने उस समय सुनाया था जब कि बाबरके युद्धमें महाराणाको मूर्च्छा आनेपर उन्हें साथवाले ले आये और बसवामें उनकी मूर्च्छा खुली जैसा कि ऊपर लिख आये हैं।]

टीका—आप १ विमना (उदास) क्यौं होते हो, सौ वार जरासंधसे २ विमुख होकर श्रीकृष्ण भगे थे फिर आपकी घात मेटकर असुरका घात किया॥ १ ॥ अर्जुन एक वार हस्तिनापुरमें द्रौपदीका दुःख देखकर हटा था, वहां दुर्योधनने किया सो सब जानते हैं पर अर्जुनने फिर कैसा किया॥ २ ॥ एक वार मूर्ख रावण सीताको हर लेगया था, परन्तु फिर रामचन्द्रने समुद्रपर पुल बांधकर कैसी की॥ ३ ॥ आप एक युद्धमें हारनेसे खेद क्या करते हैं हेसांगा राणा आप बादशाहके खटक रहे हो॥ ४ ॥

गीत (३६)

ऊगां विण सूर पेहवो अंबर,
दीपक पोषै जसो दुवार॥
पावस बना जेहवी प्रथमी,
सांगा विण जेहो संसार॥ १ ॥
विण रवि बोम कसण ज्योती विण,
धाराहर विण जसी धर॥

जैसी हरा जिसौ जाणेवो,

तो विण प्रथमी कलपतर ॥ २ ॥

जलहर गयो दुनी जीवाड़ण,

फबै नहीं दीपग फरक ॥

साहां ग्रहण मोषणों सांगो,

आंथमियो मोटो अरक ॥ ३ ॥

टीका-सूर्य ऊगे विना जैसे आकाश १ वृथा है दीपक २ विना जैसे गृहकी शोभा नहीं, और वर्षा ऋतु विना जैसे पृथ्वी शोभा नही देती उसी तरहं महाराणा सांगा विना संसार दीखता है ॥ १ ॥ हे कल्पवृक्ष ! जैसे सूर्य विना ३ आकाश, ज्योति विना ४ अग्नि, और मेघ विना जैसी पृथ्वी मालूम पड़ती है, उसी तरह तेरे विनाभी पृथ्वी शून्य दीखती है॥२॥ हा ! दुनियाको जिलानेवाला मेघ चला गया, हा वादशाहोंको पकड़ पकड़ कर छोड़ देनेवाला प्रचंड सूर्य आज अस्त हो गया ॥ ३ ॥

महाराणा श्रीरत्नसिंहजी ।

महाराणा श्रीरत्नसिहजी संवत् १५८४ मे गद्दी बैठे । ये वीरतामें तो महाराणा सांगाजी सरीखे ही थे परन्तु क्रोधी वहुत थे, सांगाजी सरीखा धैर्य और गम्भीरता इनमें नही थी, इनने अपने राज्य समयमे चित्तौड़के नगर एवं गढके द्वार कभी

वंद नहीं कराये, वहुधा यही कहा करते थे कि द्वार उन राजाओंके वंद होते हैं जिनको शत्रुका भय हो वा जो प्रजापालनमें असमर्थ हों, शत्रुओंको मेरा भय है मुझको शत्रुओंका भय नही है। जबतक ये विद्यमान रहे, गुजरात वा मालवाके वादशाहोको चित्तौड़पर मन वढानेका समय न मिला । ये बूँदीके राव सूरजमलजीको उनके भानजे विक्रमादित्यजी (जो महाराणा रत्नसिंहजीके कनिष्ठ भ्राता थे) उनका पक्ष करनेके कारण मारकर स्वयंभी उनके (सूरजमलजी) हाथसे वि सं. १५८८ में मारे गये, इनका वृत्तान्त 'वंशभास्कर'में दूसरे प्रकारसे भी लिखा है ॥

महाराणा श्रीविक्रमादित्यजी ।

महाराणा विक्रमादित्यजी रत्नसिंहजीके छोटे भाई थे जो उनके मरनेवाद वि. सं. १५८८ में चित्तोड़की गद्दी वैठे । ये वहुत कायर और विषयी राजा थे, इन्होंनें सव भाई वेटोको थोड़ेही समयमें अप्रसन्न कर दिये, इसलिये मौका पाकर गुजरातके वादशाह वहादुरशाहने मेवाड़पर चढाईकी, तव विक्रमादित्यजीनें महमूदका जड़ाऊ ताज और दुपट्टा देकर संधि करली । सं. १५९२ में वहादुरशाहने मालवाके वादशाहको साथ लेकर चित्तोड़पर चढाईकी सो सुनकर विक्रमादित्यजीकी दुष्टताका ध्यान न करके महाराणा स[illegible] जीके काका सूरजमलजीके पुत्र वाघसिंहजी जो [illegible] राजा थे, युद्धार्थ चित्तोड़की सहायतामे पहुँचे,

दित्यजीको उनके छोटे भाई उदयसिंहजी सहित उनकी ननिहाल (ननेरा) बूँदीमें पहुँचा दिया। पीछे तेरह हजार स्त्रियों-सहित सब रनवासको चितामें जलाकर आप चित्तोड़का राज्य चिह्न अपने शिरपर धारण कर चित्तोड़की विजयके लिये अपना बलिदान करनेको युद्धमें रवाना हुए। इस समय बाघसिंहजीने अपने ऊपर चित्तोड़ राज्यका छत्र लगाया था जो राज्य करनेकी लालसासे नहीं किन्तु चित्तोड़का राज्य महाराणाओंके वंशमें रखनेकी इच्छासे अपना बलिदान देनेके लिये। धन्य है उस वीर बाघसिहको जिसने अपने कुलको अधिराज बनाये रखनेकी इच्छासेही चित्तोड़को अपना बलि दिया। थोड़ीही देरतक युद्ध करके चित्तोड़के बत्तीस सहस्र वीर क्षत्रिय रणशय्यामे सोये और तेरह सहस्र स्त्रियां चितामें जलगई, यह चित्तोड़का दूसरा साका कहलाता है। इस युद्धके कुछही दिन पीछे बहादुरशाह मंदसोरके समीप बादशाह हुमायूंके साथ एक युद्धमें पराजित हुआ जिससे विक्रमादित्यजीके हाथ बिना प्रयासही चित्तोड़ पीछा लग गया परन्तु थोडे समय बादही सांगाजीके बड़े भाई पृथ्वीराजजीका पासवानिया पुत्र बनबीर विक्रमादित्यजीको मारकर स्वयं गद्दीपर बैठ गया। थोड़े वर्ष पीछेही मेवाड़के सरदारोंने बनबीरको निकालकर उदयसिंहजीको गद्दीपर बिठलाये।

महाराणा उदयसिंहजी।

ये [illegible]क्त महाराणा विक्रमादित्यजीके पीछे वि. सं. १५९४ में बहुत थे, [illegible] और सं० १६२८ में इनका देहांत हुआ। ये महाराणा इनने अपने राज्[illegible] गजा थे। इन्होंने चित्तोड़ छूटनेसे आठ वर्ष

पहिलेही सं. १६१६ में अपने राज्यके नैऋत्य भागमें पीछोला तालावके किनारे महल वनवाया और शहर वसाना प्रारंभ कर दिया, जो समय पाकर मेवाड़की वर्तमान राजधानी (उदयपुर नगर) होगया। इन महाराणाके समयमें अकवर वादशाहनें चित्तोड़पर चढाईकी। और चार महीनेतक घेरा रक्खा, जिसमें जयमल्लजी राठोड़के काम आने वाद गढमेंके सव लोग वाहर निकल आये और वडी वीरतासे लड़ते हुए शत्रुओके हाथ काम आये। यह चित्तोड़का तीसरा साका हुआ जिसमें एक सहस्र पठान जो गढमें गोलंदाज थे उन्हें छोड सवके सव क्षत्रिय मारे गये कोई वाकी न वचा।

गीत (३७)

जेसलगिर चाढ सँसारो जाणैं,
सोहड़ तरँगम करे सज॥
उदयासीह भला ओहटिया,
रिम गढ कटकां तणी रज॥ १॥
तो आंगमण नमो सांगातण,
रढ रावण मेवाड़ा राण॥
पमँगां अणी दुरग पींजरिया,
पत्रवट तो षड़तां षूमाण॥ २॥
षेताहरै नत्रीठा षड़िया,
रिमहर माथै पमँग रहे

गह मह षेह घणां गूँदलिया,
समियाणा कोटजा सह ॥ ३ ॥
महसा बढी मयँक कुल मंडण,
पोह अनवारां प्रभत पड़ी ॥
कटकांतणी दुयणचे कोटे,
चोषी रज कांगरै चडी ॥ ४ ॥

टीका–वीरोंको और घोड़ोंको सजकर महाराणा उदय सिंहने जैसलमेरकी सहायता की सो संसार जानता है महाराणाने सेनाकी रजसे शत्रुओंके गढोंको ढक दिये ॥ १ ॥ हे सांगाके पुत्र ! तुह्मारे पराक्रमको नमस्कारहै, हे रावणके समान हठ करनेवाले खुमाणवंशी मेदपाटेश्वर ! तैंने क्षत्रियमार्गमें चलकर घोड़ोंकी सेनासे गढोंको कैद करलिये ॥ २ ॥ खेताके पुत्रनें वेगसे शत्रुओंके सिरपर घोड़े चलाकर खेहकी अत्यंत भीड़से सुमियाणा आदिको गदले कर दिये ॥ ३ ॥ जिससे चन्द्र-वंशके कुलके मंडन जैसलमेरके राजाकी महिमा बढ़ गई । और कीर्ति हुई कि, दुश्मनोंके कोटपर सेना समुद्भूत (सेनाके चल-नेसे उड़ी हुई) रज चढ गई ॥ ४ ॥

महाराणा श्रीप्रतापसिंहजी ।

महाराणा श्रीप्रतापसिंहजी उदयसिंहजीके देहान्त होने पीछे वि सं० १६२८ में गद्दी बिराजे इनके जैसे यशस्वी और वीर राजा भारतवर्षमें विरले ही हुए हैं इस छोटी पुस्तकमें इनका सवि[illegible] हाल लिखना असंभव है । जो महोदय

इनका सविस्तर हाल पढना चाहैं वे टाडसाहबके इतिहासमें देखैं, अथवा बुन्दीके सुप्रसिद्ध कवि सूर्यमल्लजीके बनाये 'वंशभास्कर' ग्रंथमें देखैं, यहां केवल इतनाहीं लिख देना बस होगा कि मेवाड़के महाराणाओंकी कीर्ति जो संसारके आधुनिक व्यक्तिमात्रके जिह्वाग्रगत होरही है वह सब इन्हीं वीराधिराजकी संचित की हुई है। जिन्होनें अपने धर्मकी रक्षाके अर्थ राज्यभी खोदिया। जो जंगलोंमें रातदिन भूखे प्यासे भटकते रहे। जिनको कई वार रहनेके अर्थ महल तो कहां पर पर्णकुटी भी उपलब्ध नहीं हुई। परन्तु धन्य है उस वीरेन्द्रकी माताको जिसके क्षात्रधर्मके त्राता पुत्रने यवन बादशाह अकबरके सामने कभी सिर नही नमाया, उस पुरुषसिंहकी प्रशंसा कहांतक की जावै वैसा न तो हुआ न होगा। इन महाराणाका देहान्त वि० सं० १६५३ में हुआ था।

गीत (३८)

ओछो तिल नकूं नकूं तिल अधको,
सुणतां सुकव करां ले माप॥
तूं ताहरा राण टोडरमल,
परियां सारीषो परताप॥ १॥
परियां अधक कहां किम पातल,
रायांतिलक हींदवां राण॥
तैं सिर नह नामियो सुरताणा,
साँगै गह मूका सुरताण।

ओछो केम कहां ऊदावत,
अकबर कहर तणों तप ईष ॥
अकबरसूं रहियो अणनमियो,
सुरताणां ग्रहियां सारीष ॥ ३ ॥
कुळ उधोर प्रताप कहंतां,
पोढो घणूं घणा ब्रद पाय ॥
मणां न तो कुळ मणां न तोमें,
मणां न सुकव बषाणां माय ॥ ४ ॥

टीका—हे महाराणा प्रतापसिंह ! मैं निश्चय करके कहता हूं कि तू तेरे पूर्वजोंसे न तो तिलभर अधिक है, और न तिलभर न्यून है, तेरे पूर्वज जैसे प्रतिज्ञाके लंगर पहिननेवाले (वीर) हुए वैसाही तू भी है ॥ १ ॥ तुझको तेरे पूर्वजोंसे अधिक कैसे कहैं क्योंकि राणा हिंदुओंके राजाओंके तिलक हुए हैं; तैने तो वादशाहोंको सिर नहीं नमाया और राणा सांगाने वादशाहोंको पकड़ पकड़कर छोडदिये ॥ २ ॥ परन्तु हे उदयसिहके पुत्र ! अकबरके उग्र तपको देखते हुए तुझको अपने पूर्वजोंसे न्यून भी क्योंकर कहैं, क्योंकि अकबरकी प्रवल उग्रताको देखते उसको शिर न झुकाना ही वादशाहोंको पकड़कर छोडनेके वरावर है ॥ ३ ॥ जैसे तेरे पूर्वज वलवान् और स्तुतिके योग्य हुए वैसाही तूभी वीर और प्रशंसनीय

है, हे महाराणा! न तो तेरे कुलमें कुछ न्यूनता है, न स्वयं तेरेमें न्यूनता है, और न सुकविके वर्णनमे किसी तरहकी न्यूनता है ॥ ४ ॥

गीत (३९)

विजड़ ताप तो नमो परताप सांगण बिया,
जगत या अकथकथ बात जाणी ॥
कहर राणांतणी बार मझ एकठा,
प्रसण राषै नको हंस पाणी ॥ १ ॥
उदयवत आज दुनियाण सह ऊपरा,
साररो तार लागो सबांहीं ॥
हंस राषै जिकां नीर अळगो हुवै,
नीर राषै जिकां हंस नाहीं ॥ २ ॥
करां खग झाल दुहुं राह मातो कळह,
दूठ लागो षळां येण दावै ॥
जीवरी आस तो प्रसण नह गहै जळ,
जळ गहै प्रसण तो जीव जावै ॥ ३ ॥
दई ओ दई गत कुंभकन दूसरा,
चाह गुर आपरै पंथ चालै ॥
राण दइवाण पर हंस लागो रिमा,
हंस जळ जू जुवै पंथ हालै ॥ ४ ॥

टीका—हे दूसरे सांगा महाराणा प्रतापसिंह ! तुह्मारे खड्गकी तापको नमस्कार है जिसकी जगतमें एक विचित्र कथा प्रगट हुई है कि, प्रलय करनेवाली महाराणाकी तलवारके आगे शत्रुगण जीव और पराक्रम साथ नहीं रखते ॥ १ ॥ हे उदयसिंहके पुत्र प्रतापसिंह ! संसारमें तेरे श्रेष्ठ खड्गका ताप सबको लगता है अतः जो शत्रु जीव रखना चाहते हैं उनमें तो पराक्रम नहीं रहता और जो पराक्रम रखना चाहते हे उनका जीव नहीं रहता ॥ २ ॥ हे वीर ! तू खड्ग लेकर यवनोंके दलके साथ ऐसा पड़ा है कि जिनको जीवकी आशा है वे तो पराक्रम नहीं रखते और जो पराक्रम रखते हैं वे जीवसे हाथ धो बैठते हैं ॥ ३ ॥ हे स्वेछाचारियोंके गुरु दूसरे कुंभकर्ण ! बड़े आश्चर्यकी बात है कि तू वीर अपनेही मार्गपर चलता है, हे दीवान महाराणा ! तू शत्रुओंके जीवपर ऐसा लगा है कि उनके पराक्रम और जीव जुदे जुदे मार्गसे जाते हैं एक स्थानपर नहीं रहते ॥ ४ ॥

गीत (४०)

आलापै राग गारडू[1] अकबर,
दै पैंतीस असट[2] कुळ दाव ॥
राण सेस बसुधा कथ राषण,
राग न पांतारियो अहराव[3] ॥ १ ॥

मिणधर छत्रधर अवर गेल मन,
ताइधर रजधर सींधतण ॥

पूंगी दल़ पतसाह पेरतां,
फेरै कसल़ न सहँसफण ॥ २ ॥

गढ गढ राफ राफ मेटे गह,
रेण षत्रीध्रम लाज अरेस[६] ॥

पंडरवेस नाद अण पीणग,
सेस न आयो पतो नरेस ॥ ३ ॥

आया अन भूपत आवाँहण,
भुजँगे भजँग तजे बल़ भंग ॥

रहियो राण षत्रीध्रम राषण,
सेत उरंग कल़ोधर संग ॥ ४ ॥

टीका—अकबर रूपी १ कालवेलियेने क्षत्रियोंके पेंतीस वंशोरूपी २ आठ कुलोंके सर्पोंपर दाव देदिया, परन्तु पृथ्वी-पर कथा रखनेके लिये ३ सर्पराज (शेषनाग) रूपी महाराणा प्रतापसिंह अकबरके गानेसे अपने कुलको नहीं भूला ॥ १ ॥ मणियोंको धारण करनेवाले अन्य सर्पोंरूपी राजाओंके मन डुल गये परन्तु ४ शत्रुओंको धारण करनेवाले (वीर) और रजोगुणको धारण करनेवाले शेषनागरूपी महाराणा प्रताप-सिंहने बादशाहकी मनारूपी पूंगीकी प्रेरणासे मस्तक नहीं

हिलाया ॥ २ ॥ और गढ़ो गढ़ोंमें ९ मुसलमानी धर्मके विरोधियोंका घमंड मेट दिया, परन्तु क्षत्रियधर्मकी लज्जामें निष्कलंक श्वेतवेश (रंग) वाला और पूंगीके नादको नहीं पीनेवाला शेषनागरूपी महाराणा प्रतापसिंह नहीं आया ॥ ३ ॥ ७ बुलानेसे सब राजारूपी सर्प बलहीन होकर आगये, परन्तु क्षत्रियोंके धर्मकी रक्षा करनेवाला ८ शेषनागरूपी महाराणा प्रतापसिंह नहीं आया ॥ ४ ॥

गीत (४१)

गयँद मानरै मुहँर ऊभो हुतो दुरद गत,
सिलहपोसां तणां जूथ साथै ॥
तद वही रूक अणचूक पातल तणी,
मुगल बहलोलखां तणै माथै ॥ १ ॥

तणै अमऊद असवार चेटक तणै,
घणै मगरूर बहरार घटकी ॥
आचरै जोर मिरजातणैं आछटी,
भांचरै चाचरै बीज भटकी ॥ २ ॥

सूरतन रीझतां भीजतां सैलगुर,
पहां अन दीजतां कदम पाछै ॥
दांत चढतां जवन सीस पछटी दुजड़,
ताँत सावण ज्युहीं गई जाछै ॥ ३ ॥

वीर अवसाण केवाण उजवक बहे,
राण हथवाह दुय राह रटियो ॥
कट झलम सीस बगतर बरँग अँग कटे,
कटे पाखर सुरँग तुरँग कटियो ॥ ४ ॥

[बोगसा जातिके चारण गोरधनजी कृत]

[नोट—यह गीत हलदी घाटीके युद्धका है ।]

टीका—आमेरके महाराजा मानसिंहके हाथीके १ आगे अपने मददगार सवारोंको साथ लेकर वहलोलखां हाथीकी तरह खड़ाथा उस समय शत्रु (वहलोलखां) के पास पहुंचे हुए महाराणा प्रतापसिंहकी तलवार उसके सिरपर वही ॥ १ ॥ उदयसिंहके पुत्र चेटकके सवार महाराणाने शरीरको चीरनेवाली तलवारको वहुत जोशमे भ्रमाकर अपने हाथके जोरसे मिरजाके ऊपर मारी सो मानो २ ठठेरेकी एरण पर विजुली गिरै जिस तरह सिर काट कर निकल गई ॥ २ ॥ सूर्य प्रसन्न होने लगा, वडे वडे पहाड़ रक्तसे भीग गये, अन्य राजा अपने पैर पीछे देने लगे उस समय महाराणाने सामने आये हुए मुसलमान पर तलवार मारी सो साबुनको तांत काटकर निकलती है इस तरह काटकर निकल गई ॥ ३ ॥ उस वीरने अपूर्व वारसे तलवार चलाई सो महाराणाकी इस हस्तवाह की हिंदू मुसलमान दोनोंने वहुतही प्रशंसा की कि जिसके खड्गसे वहलोलखांका टोप कट, शिर कट, वख्तर कट,

शरीर कट, और पाखर कटकर सुरंग रंगवाला घोड़ा तक कटगया ॥ ४ ॥

गीत (४२)

मह लागो पाप अभनमा मोकल़,
पँड सुदतार भेटतां पाप ॥
आज हुवा निकलंक अहाड़ा,
पेखे मुख ताहरो परताप ॥ १ ॥
चढतां कल़जुग जोर चढंतो,
घणा असत जाचतो घणो ॥
मिल़तां समैं राण मेवाड़ा,
टल़ियो प्राछत देह तणों ॥ २ ॥
स्रग म्रतलोक मुणै सीसोदा,
पाप गया ऊजमे परा ॥
होतां भेट समैं राव हींदू,
हुवा पवित्र सँग्राम हरा ॥ ३ ॥
ईषे तूझ कमल़ ऊदावत,
जनमतणों गो पाप जुवो ॥
हेकण वार ऊजल़ा हींदू,
हरसूं जाण जुहार हुवो ॥ ४ ॥

टीका—कवि कहताहै कि कलियुगका जोर वढनेसे वहुत झूठे और अधर्मी राजाओंसे याचना करनेसे मुझको पाप लग गया, सो हे मोकलके समान महाराणा प्रतापसिंह ! आज तेरा मुख देखकर उस पापसे छूटा हूं ॥१—२॥ हे सीसोदिया ! स्वर्गलोक और मृत्युलोक कहते हैं कि आज उन पापोंका उद्यापन होगया और तुझ संग्रामसिंहके पोते हिंदुओंके पतिके दर्शन होनेसे मैं पवित्र होगया ॥ ३ ॥ हे उदयसिंहके पुत्र ! तेरा मुख देखनेसे मेरा जन्म जन्मका पाप जुदा होगया सो प्रतापसिंहसे जुहार क्या हुआ मानो परमेश्वरसे जुहार होगया ४॥

गीत (४३)

षटकै षत्रवेध सदा षेहड़तो,
दिनप्रत दाषंतो षत्रदाव ॥
अकवर साह तणौं ऊदावत,
राण हिये चरणां अन राव ॥ १ ॥

नह पलटै षरड़कै अहोनिस,
घड़ दुरवेस घड़ै घण घाव ॥
सांगा हरो तणे आलम सह,
पांतरदै महपत अन पाव ॥ २ ॥

धर वाहरू प्रताप षड़गधर,
सुज वीसरै न पाष

अकबर उरमें साल अहाड़ो,
ओयणे सेवग भूप अनेर ॥ ३ ॥
राव हींदवो तणों रोदां रिप,
राणो आपाणी कुलरीत ॥
पड़िया रहै अवर त्रप पावां,
चढियो कुंभ कलोधर चीत ॥ ४ ॥

[आसिया शाखाके चारण पीथाजी कृत]

टीका—क्षत्रियोंके मार्गमें चलनेवाला महाराणा युद्धमें बादशाह अकबरके चित्तमें खटकताहै, और अन्य राजा सेवामें पड़े रहते हैं, इस कारण महाराणा प्रतापसिंह सदा अकबरके हृदयपर चढा रहताहै, और अन्य राजा चरणोंमे पड़े रहते हैं ॥ १ ॥ फकीरकी तरह हुआ अकबर मनमें घाट घणा करताहै, और सदा महाराणा उसके मनमें खटकता रहताहै, परन्तु सांगाके वंशवाला प्रतापसिंह संसारकी रक्षा करनेवाला भूलकरभी अकबरकी तर्फ पांव नहीं देता ॥ २ ॥ महाराणा प्रतापसिंह पृथ्वीका रक्षकहै अतः वह वीर भूल कभी नहीं करता सो अन्य राजा तो अकबरके घरकी सेवा करनेवाले हैं परन्तु महाराणा अकबरकी छातीमें साल रूपहै ॥ ३ ॥ कुंभाकी कलाको धारण करनेवाला महाराणा प्रतापसिंह अपने कुलकी रीतिको रखकर 'हिन्दुपति' और 'यवनोंका रिपु' कहलाता है इस कारण महाराणा तो अकबरके हृदयमें बना रहता है और दूसरे राजा उसके पैरोंमें पड़े रहते हैं ॥ ४ ॥

बीकानेर महाराजके भ्राता पृथ्वीराजजीके कहेहुए काव्य।

महाराणा श्रीप्रतापसिंहजी अकबरको बादशाह नही कहते थे, सदा तुरक कहा करते थे। एक दिन अकबरको खबर मिली कि अब महाराणा बादशाह कहने लग गये हैं। उस समय बीकानेरके महाराजा रायसिंहजीके छोटे भाई पृथ्वीराजजी जो बादशाहके दर्बारमें रहा करते थे, उन्होने निवेदन किया कि यह खबर गलत है। इसपर बादशाहने कहा कि तुम सही खबर मंगाकर अर्ज करो। तब पृथ्वीराजजीने निम्नलिखित दो दोहे बनाकर महाराणा साहबके पास भेजे। इन दोहोके उत्तरमे महाराणा साहबने भी तीन दोहे लिख भेजे जिनका यहां ही आगे उल्लेख किया गया है।

पृथ्वीराजजीने वीरशिरोमणि महाराणाके उत्साहको अधिक उत्तेजित करनेके लिये अन्यान्य कई दोहे और गीत निर्माण किये। उनमेंसे जो कितने ही प्राप्त हुए हैं वे [illegible] लिखे गये हैं।

सौराष्ट्री दोहा (४४, ४५)

पातल जो पतसाह, बोलै मुख हूं[illegible]।
मिहर पछम दिस मांह, ऊगै कास[illegible]॥१॥
पटकूं मूंछां पाण, कै पटकूं नि[illegible] करद।
दीजे लिख दीवाण, इण दो मह[illegible]का॥२॥

टी०—महाराणा प्रतापसिंह यदि पातसाहको अपने मुखसे पातसाह कहैं तो कश्यपजीके सन्तान भगवान् सूर्य पश्चिम दिशामे उगैं, अर्थात् जैसे सूर्यका उदय पश्चिम दिशामें कदापि सम्भव नहीं वैस ही आप (महाराणा) का पातसाह वचन कहना भी नितान्त असम्भव है ॥ १ ॥ हे दीवाण ! मैं अपनी मूंछपर पाण दूं, अथवा अपने शरीर पर करद (तलवार) डालूं इन दोनोंमेंसे एक बात लिख दीजिये ॥ २ ॥

इन दोहाका उत्तर—जो कि महाराणा साहबने भेजा था—

दोहा (४६, ४७, ४८)

तुरक कहासी मुख पतो, इण तनसूं इकलिंग ।
ऊगै जांही ऊगसी, प्राची बीच पतंग ॥ १ ॥
खुसी हूंत पीथल कमध, पटको मूंछां पाण ।
पछटण है जेतै पतो, कलमा सिर केवाण ॥ २ ॥
सांग मूंड सहसी सको, समजस जहर सवाद ।
भड़ पीथल जीतो भलां, बैण तुरकसूं वाद ॥ ३ ॥

टी०-भगवान् "एकलिंग" की शपथ है, इस शरीरसे प्रताप-सिंहके मु[illegible] पातसाह तुरकही कहावैगा । और भगवान् सूर्यका उ[illegible] होता है वहां ही पूर्व दिशामे होगा ॥ १॥ हे वीर पृथ्वीराज ! आप प्रसन्न होकर मूछोपर पाण लगावें अर्थात् निःशङ्क होकर मान रक्खैं । और जबतक प्रतापसिंह

है, केवाण (ह्र
जानै ॥ २ ॥ राण) अर्थात् खड्गको यवनोंके शिरोपर
अपने वरावरवालेशा प्रतापसिंह सिरपर भाला सहैगा क्योंकि
पृथ्वीराज ! अला जस जहरके सदृश होता है, सो हे भट
यह वृत्तान्त पृरकसे वचनोंके विवादमें विजय पावो॥३॥
विषयमें एक दो . पृथ्वीराजजीकी पत्नीने सुना तब इस
किया । वह यह वनाया । और उससे अपने पतिको वोधित

-

दोहा (४९)

पति जिद क
कहां पातल पतसाहसूं, यहै सुणी मैं आज ।
कबर कहां,करियो वडो अकाज ॥

टी०—हे प्राण
साहबके सम्बन्ध ! मैंने आज यह सुना कि आपने महाराणा
आज दिन भारत ातसाहसे जिद (विवाद) ठानीहै । परन्तु
सेनाओंका स्वा जाओंपर शासन करनेवाला और असंख्य
साथ वन्य वृत्ति कवर कहां । और थोडेसे क्षत्रियवीरोंके
अर्थात् पातसाह निर्वाह करनेवाले राणा प्रतापसिंह कहां ।
राणाके दृढ अभि न विचार व अधिक शक्तिपर एवं महा-
पर विचार की और सहायसम्पत्तिकी विकलता (कमी)
क्योंकि अव अको आपने वडा अकाज (अनर्थ कियाहै ।
सुयोग्य पृथ्वी हैं अत्यन्त कष्ट पहुँचानेका यत्न करेगा ।
दोहेका उत्तर दिय जीने एक कवित्तके द्वारा ऊपर लिखे
कवित्त यहहै—

सह गावड़ियो साथ, एकण वाडै वाडियो ॥
राण न मानी नाथ, तांडै सांड प्रतापसी ॥४॥

टीका—हे अकबर! (अध्याहार होता है) तेंने गायों-रूपी सब राजाओंको एक वाड़ेमें इकट्टे करदिये परन्तु महाराणा प्रतापसिंहरूपी सांड तेरी नाथको नहीं मानकर गर्ज रहा है ॥ ४ ॥

पहु गोधलिया पास, आलूधा अकबर तणी ॥
राणो षिमै न रास, प्रघलो सांड प्रतापसी ॥५॥

टीका—अन्य सब छोटे बैलरूपी राजा लोग अकबरकी पाशमें उलझ (बंध) गये, परन्तु महाराणा प्रतापसिंहरूपी बलवान् सांड उसकी रस्सीको सहन करनेवाला नहीं है ॥५॥

पातल पाघ प्रमाण, सांची सांगाहर तणी ॥
रही सदा लग राण, अकबरसूं ऊभी अणी॥६॥

टीका—महाराणा संग्रामसिंहके पोते प्रतापसिंहकी पगड़ी ही गिनतीमें सच्ची है कि जो अकबरके सामने अनम्र रहनेके कारण उच्च रही ॥ ६ ॥

चोथो चीतोडाह बांटो बाजंती तणो ॥
माथै मेवाड़ाह, थारै राण प्रतापसी ॥ ७ ॥

टीका—हे चित्तौड़के पति महाराणा प्रतापसिंह ! २ घड़ीका १ चौथा हिस्सा अर्थात् पावघड़ी 'पाघड़ी' हे मेवाड़के पति ! तेरे ही सिरपर है ॥ ७ ॥

बाही राण प्रतापसी, वरछी लचपच्चांह ॥
जाणक नागण नीसरी, मुंह भरियो बच्चांह ॥८॥

टीका—महाराणा प्रतापसिंहने जो लचकती हुई बरछी चलाई सो शत्रुको फोड़कर आंतोंको साथ लेकर परली तरफ निकल गई सो ऐसी शोभा देने लगी मानों सर्पिणी अपने बच्चोको मुखमे लेकर निकली ॥ ८ ॥

बाही राण प्रतापसी, बगतरमें बरछीह ॥
जाणक झींगर जालमें, मुंह काढ्यो मच्छीह ॥९॥

टीका—महाराणा प्रतापसिंहने जो बरछी चलाई वह शत्रुके कवचको फोड़कर परली तरफ निकल कर ऐसी शोभा देने लगी मानो झींगर मच्छी (छोटी मच्छी) ने जालमें मुंह निकाला ॥ ९ ॥

पातल घड़ पतसाहरी, एम विध्वूंसी आण ॥
जाण चढी कर वंदरां, पोथी वेद पुराण ॥ १० ॥

टीका—महाराणा प्रतापसिंहने वादशाहकी फौजका ऐसा विध्वंस कर डाला जैसे वंदरके हाथ वेद पुराणकी पुस्तक लगनेपर वह उसे फाड़ डालता है ॥ १० ॥

[नोट—उपरोक्त सब दोहे वीकानेर महाराजके भ्राता पृथ्वीराजजीने महाराणा प्रतापसिंहजीको लिखकर भेजे थे, परन्तु कई लोग सन्देह करते हैं कि ये सब उनके बनाये हुए नहीं हैं. और स्वामी गणेशपुरीजी आदि साहित्यके आधुनिक विद्वानोंका मत है कि ' धरवांकी दिन पाधरा यह दोहा

पृथ्वीराजजीका ही बनाया हुआ है, कुछ भी हो इन दोहोंसे यह बात भलीभांति जानी जासकती है कि उस समयके पुरुषोंका प्रेम स्वधर्मरक्षाके कारण महाराणा प्रतापसिंहजी पर कैसा था ।)

गीत (६२)

नर तेथ निमाणा निलजी नारी,
अकबर गाहक वट अवट ॥
चोहटै तिण जायर चीतोड़ो,
बेचै किम रजपूत वट ॥ १ ॥
रोजायतां तणैं नवरोजै,
जेथ मुसाणा जणो जण ॥
हींदू नाथ दिलीचे हाटे,
पतो न षरचै षत्रीपण ॥ २ ॥
परपँच लाज दीठ नह व्यापण,
षोटो लाभ अलाभ षरो ॥
रज बेचबाँ न आवै राणो,
हाटे मीर हमीर हरो ॥ ३ ॥

(१) कर्नल जेम्स टाडने अपने बृहत् पुस्तक " टाड राजस्थान " मे महाराज पृथ्वीराजजीके एक गीत और कई दोहोका भाषान्तर दिया है, उनमेंसे गीततो " नर तेथ निमाणा " इत्यादि है और उनमेंसे कई दोहे भी इनमे दिए गए है ।

पेषे आपतणा पुरसोतम,
रह अणियाळतणैं बळराण ॥
षत्र बेचिया अनेक षत्रियां,
षत्रवट थिर राखी षूमाण ॥ ४ ॥

जासी हाट बात रहसी जग,
अकबर ठग जासी एकार ॥
रह राषियो षत्री ध्रम राणै,
सारा ले बरतो संसार ॥ ५ ॥

[बीकानेरमहाराजाके भाई पृथ्वीराजजी कृत.]

टीका–जहांपर मानहीन पुरुष और लज्जाहीन स्त्रियां हैं और अकबर जैसा ग्राहक है, उस चौपड़के बाजारमें जाकर चीतोड़का स्वामी रजपूतीका हिस्सा कैसे विक्रय करेगा ॥ ॥ १ ॥ मुसलमानोंके नवरोजेकी जगह प्रत्येक व्यक्ति लुटगया परन्तु हिन्दुओंका पति प्रतापसिंह उस दिल्लीके बाजारमें अपने क्षत्रियपनको क्योंकर खर्चे ॥ २ ॥ वंशलज्जासे भरी दृष्टिपर अन्यका प्रपञ्च नहीं व्यापता है इसीसे पराधीनताके सुखके लाभको बुरा और अलाभको अच्छा समझकर बादशाही दुकानपर रज बेचनेके लिये हम्मीरका पोता राणा प्रतापसिंह कदापि नहीं आता ॥ ३ ॥ अपने पुरुषाओंका उत्तम कर्तव्य देखते हुए महाराणाने भालेके बलसे क्षत्रिय धर्मको अचल रक्खा और अन्य क्षत्रियोंने अपने क्षत्रियत्वको

विक्रय कर डाला ॥ ४ ॥ ठगरूपी अकबर भी एक दिन इस संसारसे कूंच कर जावेगा और यह हाट भी उठ जावेगी परन्तु संसारमे यह बात अमर रह जावेगी कि क्षत्रियोंके धर्ममें रहकर उस धर्मको केवल राणा प्रतापसिंहने ही रक्खा अब पृथ्वीभरमें सबको उचित है कि उस क्षत्रियत्वको अपने बरतावमेंलो अर्थात् राणा प्रतापसिंहकी भाँति आपत्ति भोगकर भी पुरुषार्थसे धर्मकी रक्षा करो ॥ ५ ॥

गीत (६३)

ऊगां दन समैं करै आषाड़ा,
चोरँग भुवन हसत अणचूक ॥
रोदांतणा रगतसूं राणा,
रंगियो रहै तुहालो रूक ॥ १ ॥
मोकलहरा महाजुध मचतै,
बचतां सर नत्रीठ वहै ॥
पातल तूझ तणो पडियालग,
रुधर चरचियो सदा रहै ॥ २ ॥
षित कारणैं करै नित षलवट,
षेटै कटक तणा षुरसाण ॥
प्रसणां सोण अहोनस पातल,
षग सावरत रहै षूमांण ॥ ३ ॥

ऊगां सूर समो ऊदावत,
वढै बँसू छल़ बोल़ विरोल़ ॥
चल़ु अल़ अरी तणैं चीतोड़ा,
चंद्रप्रहास रहै नत चोल़ ॥ ४ ॥

[बीकानेरके महाराजके भाई पृथ्वीराजजीकृत]

टीका—हे राणा ! तेरे नही चूकनेवाले हाथ दिन ऊगते समयही युद्धभूमिमें अखाड़ा (युद्ध) करने लगते हैं, और तेरी २ तलवार १ यवनोंके रक्तसे रंगी हुई रहती है ॥ १ ॥ हे मोकलके पोते महाराणा प्रतापसिंह ! महायुद्धमें तेरा ३ खड्ग बचते हुए शत्रुओंके सिरोंपर वडे वेगसे चलता है इसही कारणसे सदा रुधिरसे रंगा हुआ रहता है ॥ २ ॥ हे पुम्माणके वंश वाले प्रताप ! तू ४ पृथ्वीके लिये नित्य यवनोंके कटकसे युद्ध करके दुष्टोंके टुकडे टुकडे कर डालता है और खलोंके रुधिरसे तेरा खड्ग सदा लाल रहता है ॥ ३ ॥ हे उदयसिंहके पुत्र ! सूर्योदय समयमें ही पृथ्वीके अर्थ युद्ध होता है और तेरा चंद्रप्रहास (खड्ग) सदा शत्रुओंके शोणितसे रक्तवर्ण रहताहै ॥ ४ ॥

विरुद्द छिहत्तरी ।

आढा जातिके चराण कविवर्य दुरसांजीकृत-

सौराष्ट्री सोरठे ६४-१३९ तक ।

अलष पुरुस आदेस, देस बचाय दयानिधे ॥
बरणन करूं विसेस, सुहृद नरेस प्रतापसी ॥१॥

टीका-हे अगोचर दयानिधि पुरुष ! (परमेश्वर) तुमको नमस्कार है । देशके सुहृद (मित्र) महाराणा प्रतापसिहकी रक्षा कीजिये मैं उसीका वर्णन करता हूं ॥ १ ॥

---

(१) इस छिहत्तरीके रचयिता आढाशाखाके चारण कवि दुरसाजी सीरोही राज्यके पोलपात थे और कवि होनेके साथ ही वीर भी थे । उदयपुर महाराणा साहब प्रतापसिंहजीके छोटे भाई जगमाल जी उनसे नाराज होकर अकबरके पास चले गये और अकबरने इनको सीरोहीका आधा राज्य देदिया और सीरोहीके राव सुलतानसे वह राज्य दिलानेके अर्थ अपनी फौज साथ दी जिसमे दुरसाजी भी साथ थे । इस युद्धमे जगमालजी मारे गये और बादशाही फौज हारकर भागी तब सीरोही रावजीने खेत सम्हाला जहां दुरसाजीको उनके चारण कहनेपर चिकित्सा कराकर पोलपात बनालिया । जोधपुरके मोटे राजाने सब चारणोकी जीविकाए खोसली थीं तब ये धरणेमे शामिल थे और अकबरके पास जाकर उससे महाराजको उपालंभ दिलाकर सब जागीरे पीछी दिलवाई इनको अकबरके दर्बारमे बैठनेकी इज्जत थी ।

गढ ऊँचो गिरनार, नीचो आबूही नहीं ॥
अकबर अघ अवतार, पुन अवतार प्रतापसी ॥२॥

टीका-ऊंचे पनमें गिरनारका गढ ऊंचा है तो आबूका गढ क्या उससे नीचा है? पापका अवतार होनेमें अकबर ऊंचा है, तो पुण्यका अवतार होनेमें प्रतापसिंह क्या उससे न्यून है ॥ २ ॥

कलजुग चलै न कार, अकबर मन आंजस युहीं ॥
सतजुग सम संसार, परगट राण प्रतापसी ॥ ३ ॥

टीका-कलियुगरूपी अकबरके मनमे हर्ष वृथा है, क्योंकि संसारमे जबतक सत्ययुगरूपी महाराणा प्रतापसिंह विद्यमान हैं तबतक उसकी (अकबरकी) मर्यादा नही बढेगी ॥ ३ ॥

अकबर गरब न आण, हींदू सह चाकर हुवा ॥
दीठो कोइ दीवांण, करतो लुटका कटहडै॥४॥

टीका-हे अकबर! सब हिन्दुओंके नोकर होजानेसे तू मनमें क्यों घमंड करता है? क्या कभी किसी ? महाराणाको कटहरे (बादशाहके सिंहासनके कटहरा लगा रहता था) के सामने लटका करते देखा था ? ॥ ४ ॥

सुणतां अकबर साह, दाह हिये लागी दुसह ॥
विसमह्या बदराह, एक राह करदूं अवस ॥५॥

टीका–प्रतिपक्षियोंका स्वाधीनपन सुनकर अकबरके मनमें असह्य जलन लग गई, और विचारने लगा कि मुसलमान धर्मके विपाक्षियोंको एकमार्गमें (मुसलमान) करदूंगा ॥ ५ ॥

मन अकवर मजबूत, फूट हींदवां वेफिकर ॥
काफर कोम कपूत, पकडूं राण प्रतापसी ॥ ६ ॥

टीका–हिदुओमे फूट देखकर अकबरका मन मजबूत और वेफ़िकर होगया। विचारने लगा कि काफ़िरोंकी (हिदुओंकी) कौममें महाराणा प्रतापसिंहही कुपुत्रहैं जिन्हें पकड़लूं ॥ ६ ॥

अकवर कीना आद, हींदू नृप हाजर हुवा ॥
मेदपाट मरजाद, पग लागो न प्रतापसी ॥ ७ ॥

टीका–अकबरके याद करतेही सब हिंदू राजा आ उपस्थित हुए परन्तु मेवाड़की मर्यादा रखनेवाला महाराणा प्रतापसिहने हाजिर होना नही चाहा ॥ ७ ॥

मेछां आगल़ माथ, नमैं नहीं नरनाथरो ॥
सो करतब समराथ, पाल़ै राण प्रतापसी ॥ ८ ॥

टीका–'मुसलमानोंके आगे नरनाथ (प्रतापसिह) का सिर नही नमता' इस कर्तव्यको पालन करनेमें समर्थ केवल महाराणा प्रतापसिंहही हैं ॥ ८ ॥

वुहा बडेरा बाट, बाट तिकण बहणो विसद ॥
षाग त्याग षत्रवाट, पूरो राण प्रतापसी ॥९॥

टीका-क्षत्रियोंका प्राचीन मार्ग यही है कि जिस मार्गमें अपने पुरुषा चले उसी उज्वल मार्गमे चलना अर्थात् 'तलवार चलाना और दान देना' इसमे महाराणा प्रतापसिंह ही पूर्ण रीतिसे चलताहै ॥ ९ ॥

चितवै चित चीतोड़, चिता जळाई सोच तर ॥
मेवाड़ो जग मोड़, पावन पुरुष प्रतापसी॥१०॥

टीका-मेवाड़के पति, जगतके मुकुट, उत्तम पुरुष महाराणा प्रतापसिंह चित्तमे चित्तोडकी चिंता किया करतेहैं और इसी सोचसे उनके चित्तमें चिता जल रही है ॥ १० ॥

कदे न नामै कंध, अकवर ढिग आवै न ओ ॥
सूरजवंस सँवंध, पाळै राण प्रतापसी ॥ ११ ॥

टीका-महाराणा न तो कभी अकवरके समीप आते हैं, और न कभी सिर नमाते हैं, यह महाराणा प्रतापसिंह सदा सूर्यवंशके संवन्धकी पालना करते हैं ॥ ११ ॥

अकवर कुटिल अनीत, और विटळ सिर आदरे ॥
रघुकुळ उत्तम रीत, पाळै राण प्रतापसी ॥१२॥

टीका-कुटिल अकवरकी अनीतिको अन्य विगड़े हुए राजालोग आदर सहित मस्तक पर चढाते हैं, परन्तु रघु

कुलकी उत्तमरीतिका पालन करनेवाले केवल महाराणा प्रतापसिंह ही हैं ॥ १२ ॥

लोपे हींदू लाज, सगपण रोपै तुरकसूं ॥
आरजकुळरी आज, पूंजी राण प्रतापसी॥१३॥

टीका–हिन्दू सब लज्जाको लुप्त करके यवनोंसे संबन्ध करने लगगये, परन्तु आज दिन आर्य कुलका उत्तम द्रव्य महाराणा प्रतापसिंह ही हैं ॥ १३ ॥

अकबर पथर अनेक, के भूपत भेळा किया ॥
हाथ न लागो हेक, पारस राण प्रतापसी॥१४॥

टीका–अकबरनें अन्य राजारूपी कई पत्थर इकटे करलिये, परन्तु पारसरूपी एक महाराणा प्रतापसिंह हाथ नहीं लगा ॥ १४ ॥

सांगो धरम सहाय, बाबरसूं भिड़ियो बिहस ॥
अकबर कदमां आय, पड़ै न राण प्रतापसी॥१५॥

टीका–पहिले महाराणा संग्रामसिंह धर्मकी सहायताके-लिये बाबरसे लड़े थे, और अब उसी परम्पराके अनुसार महाराणा प्रतापसिंह अकबरके पैरोमें नहीं पड़ते ॥ १५ ॥

आपै अकबर आण, थाप उथापै ओ धिरा ॥
बापै रावळ बाण, तापै राण प्रतापसी ॥ १६ ॥

टीका–अकबर अपनी दुहाई पृथ्वीपर जमाता है, उसे यह दूर करदेते हैं। बापारावलके वंशकी आदतको महाराणा प्रतापसिंह नहीं छोड़ते ॥ १६ ॥

सुष हित स्याल समाज, हींदू अकबर बस हुवा॥
रोसीलो मृगराज, पजै न राण प्रतापसी॥१७॥

टीका–अपने सुखके लिये गीदड़रूपी अन्य राजाओंके समूह अकबरके वशमें होगये, परन्तु क्रुद्ध सिंहरूपी महाराणा प्रतापसिंह उसके अधीन नहीं होंगे ॥ १७ ॥

अकबर कूट अजाण, हियाफूट छोडै न हठ ॥
पगां न लागण पाण, पणधर राण प्रतापसी॥१८॥

टीका–अकबर अज्ञान और मूर्ख है जो अपने झूठे हठको नहीं छोड़ता, परन्तु उसके पैरोंमे नहीं पड़नेकी प्रतिज्ञाको धारण करनेवाले महाराणा प्रतापसिंह अपने पराक्रमको नहीं छोड़ेंगे ॥ १८ ॥

है अकबर घर हाण, डाण ग्रहे नीची दिसट ॥
तजै न ऊंची ताण, पोरस राण प्रतापसी॥१९॥

टीका–अकबरके घरमें हानि होनेके कारण वह चलते समय अपनी दृष्टि नीची कर लेताहै, परन्तु ऊंची दृष्टिसे देखने वाले महाराणा प्रतापसिंह अपने पुरुषार्थको नहीं छोड़ते (नीची दृष्टि अधर्म, पराजय, और लज्जासे होती है और ऊंची दृष्टि धर्म, विजय और कुलाभिमानसे होती है) ॥ १९ ॥

जाणै अकबर जोर, तो पिण ताणै तोर तिड़ ॥
आ बलाय है और, पिसणा षोर प्रतापसी॥२०॥

टीका—अकबर अपने बलको जानताहै तोभी यवनजातिके १ पक्षको नहीं छोड़ता, परन्तु यह नही जानता कि शत्रुओंको भक्षण करजाने वाले महाराणा प्रतापसिंह और ही आफतहैं२०

अकबर हिये उचाट, रात दिवस लागी रहै ॥
रजवट बट समराट, पाटप राण प्रतापसी॥२१॥

टीका—अकबरके हृदयमें रात दिन उच्चाटनही लगा रहता है, परन्तु महाराणा प्रतापसिंह क्षात्र धर्मके अभिमानको रखने वाले सम्राट् शिरोमणिहैं ॥ २१ ॥

अकबर मारग आठ, जवन रोक राखी जगत ॥
परम धरम जस पाठ, पढियो राण प्रतापसी २२॥

टीका—यवन अकबरने संसारमे आठोही मार्गों (चार वर्णधर्म और चार आश्रमधर्मों) को रोकदिये हैं, परन्तु उसमें भी अपने परम धर्मके यशको पाठ करनेवाले अर्थात धर्मके रक्षक महाराणा प्रतापसिंह ही हैं ॥ २२ ॥

अकबर समँद अथाह, तिंहँ डूबा हींदू तुरक ॥
मेवाड़ो तिण मांह, पोयण फूल प्रतापसी॥२३॥

टीका—अकबर अथाह समुद्र रूपहै और उसमें हिन्दू और यवन डूब गये हैं, परन्तु मेवाड़के पति महाराणा श्रीप्रतापसिंह

जी उस समुद्रमें कमलके फूलके समान ऊंचे रहनेसे जलको स्पर्श नहीं करते ॥ २३ ॥

अकब्बरिये इक वार, दागल की सारी दुनी ॥
अणदागल असवार, रहियो राण प्रतापसी २४॥

टीका-अकबरने एकही वारमें सब दुनियांके दाग लगा दिया अर्थात् सब घोड़ोके बादशाही दाग लगवा दिये परन्तु विना दागके घोड़ेके सवार महाराणा प्रतापसिंहही रहेहैं ॥२४॥

अकबर घोर अँधार, ऊँघाणा हींदू अवर ॥
जागै जगदातार, पोहरै राण प्रतापसी ॥ २५ ॥

टीका-अकबररूपी घोर अन्धकारमें और सब हिन्दू तंद्रित होगये, परन्तु जगतका दाता महाराणा प्रतापसिंह (धर्मरूपी धनकी रक्षा करनेके लिये) पहरे पर खड़ाहै ॥२५॥

जग जाडा जूझार, अकबर पग चांपै अधिप ॥
गौ राषण गुंजार, पिंडमें राण प्रतापसी ॥२६॥

टीका-जगतमें जितने अच्छे वीरहैं वे सब अकबरके पैर दबातेहैं, परन्तु पृथ्वी और गौकी रक्षा करनेवाले महाराणा प्रतापसिंह अकबरके हृदयको चांपतेहैं (अर्थात् अकबरके वैरी होनेके कारण उसे महाराणाका सदा ध्यान बना रहताहै)२६॥

अकबर कनै अनेक, नम नम नीसरिया नृपति॥
अनमी रहियो एक, पहुवी राण प्रतापसी॥२७॥

टीका-अकबरके पास सब राजा मस्तक नमा २ कर निकल गये पृथ्वीपर महाराणा प्रतापसिंहही केवल अनम्र रहाहै ॥ २७ ॥

करै कसामद कूर, करै कुसामद कूकरा ॥
दुरस कुसामद दूर, पुरस अमोल प्रतापसी॥२८॥

टीका-खुशामद यातो झूंठे मनुष्य करतेहैं, या कुत्ते करते हैं, मैं दुसरा कवि खुशामदसे दूर होकर कहता हूं कि अमूल्य पुरुष महाराणा प्रतापसिंह ही हैं ॥ २८ ॥

अकबर जंग उफाण, तंग करण भेजै तुरक ॥
राणावत रिढ राण, पाण न तजै प्रतापसी॥२९॥

टीका-अकबर युद्धकी ऊफानसे महराणाको तंग करनेके लिये यवनोंको भेजता है, परन्तु रावणके समान हठ करने वाले राणा उत महाराणा प्रतापसिंह अपने पराक्रमको नही छोड़ते ॥ २९ ॥

हलदी घाट हरोल, घमँड उतारण अरि घड़ा ॥
आरण करण अडोल, पहुँच्यो राण प्रतापसी॥३०॥

टीका-शत्रुकी सेनाका गर्व मिटानेके लिये हलदी घाटकी लड़ाईमें अग्रसर होकर युद्ध करनेके लिये अविचल महाराणा प्रतापसिंह पहुंचे ॥ ३० ॥

थिर नृप हिन्दुसथान, लातरगा मग लोभ लग ॥
माता भूमी मान, पूजै राण प्रतापसी ॥ ३१ ॥

टीका—जो हिन्दुस्थानके स्थिर (सदैवके) राजा थे वे तो लोभके मार्गमें लगकर थक गये परन्तु पृथ्वीको माता मानकर पूजनेवाले महाराणा प्रतापसिंह ही हैं ॥ ३१ ॥

सेलां अणी सिनान, धारा तीरथमें धसे ॥
देण धरम रण दान, पुरट सरीर प्रतापसी॥३२॥

टीका—हे महाराणा प्रतापसिंह ! भालोंके अग्रभागोसे स्नान करते हुए और खड्गोकी धारारूपी तीर्थमें प्रवेश करके स्वधर्मके लिये युद्धक्षेत्रमें स्वर्णरूपी शरीरका दान देतेहुए तो आपहीको देखे है ॥ ३२ ॥

ढिग अकबर दल ढाण, अग अग झगड़ै आथड़ै ॥
मग मग पाड़ै माण, पग पग राण प्रतापसी॥३३॥

टीका—अकबरकी सेनाका समूह दौड़कर पर्वत पर्वतपर युद्धमे लड़ता है, उसको जहां जहां मार्गोंमे महाराणा प्रतापसिंह मिलता है वही वही पैरपैरपर उस सेनाका अभिमान दूर कर देता है ॥ ३३ ॥

दिल्ली हूँत दुरूह, अकबर चढियो एक दम ॥
राण रसिक रणरूह, पलटै केम प्रतापसी॥३४॥

टीका—कठिनाईसे तर्कनामे आने योग्य अकवरने दिल्लीसे एकदम चढाई की, जिसे सुनकर युद्ध रसिक महाराणा प्रतापसिंह अपनी इच्छाको कैसे पलटें ॥ ३४ ॥

चीत मरण रण चाय, अकवर आधीनी विना ॥
पराधीन दुख पाय, पुनि जीवैं न प्रतापसी ॥३५॥

टीका—महाराणा प्रतापसिहकी निरन्तर इच्छा यही है कि युद्धमे मरजाना परन्तु अकवरके अधीन न होना, अतः पराधीनताके दुःखको पाकर महाराणा प्रतापसिंह जीवित रहना नही चाहते ॥ ३५ ॥

तुरक हींदवां ताण, अकबर लायो एकठा ॥
मेछां आगल़ माण, पाण कृपाण प्रतापसी॥३६॥

टीका—जिस समय अकबर सव हिन्दू और मुसलमानोको इकट्ठे करके मेवाड़पर चढ आया, तो उस समय उन म्लेच्छोके सामने महाराणा प्रतापसिहने अपने खड्गके वलसे ही अपना गौरव रक्खा ॥ ३६ ॥

गोहिल कुल़ धन गाढ, लेवण अक्बर लालची॥
कोडी दै नँहँ काढ पणधर, राण प्रतापसी ॥३७॥

टीका—गुहिलके वंशका स्वाधीनतारूपी द्रव्य लेलेनेके लिये वहुत लालच करता है परन्तु अपने मानको धारण करने वाला महाराणा प्रतापसिंह उसमेसे एक कौड़ी भी निकालकर नही देते ॥ ३७ ॥

अकबर मच्छ अयाण, पूंछ उछालण बल़ प्रबल़॥
गोहिल़वत गह राण, पाथोनिधी प्रतापसी॥३८॥

टीका—अकबरका अज्ञान मत्स्य रूप है जो अपनी प्रबल सेनारूपी पूंछको उछालता है परन्तु गुहिलके वंशवाला महाराणा प्रतापसिंह गम्भीर समुद्रके समान हैं सो उस पूंछ उछलनेसे मर्याद नहीं छोड़ेंगे ॥ ३८ ॥

नित गुधल़ावण नीर, कुंभी सम अकबर क्रमैं॥
गोहिल राण गंभीर, पण गुधल़ै न प्रतापसी३९॥

टीका—अकबररूपी हाथी अन्य सब राजाओंका पानी गुधला देता है अर्थात् राजाओंका मान हरलेताहै परन्तु गुहिलवंशके महाराणा प्रतापसिंहरूपी ऐसा गंभीर समुद्र है कि, जिसका पानी अकबररूपी हाथीसे मैला नहीं होता ॥ ३९ ॥

उड़ै रीठ अण पार, पीठ लगा लाषां पिसण ॥
वेढीगार वकार, पैठो उदियाचल़ पतो ॥ ४० ॥

टीका—अमित शस्त्रोंकी रीठ उड रही है. और लाखो शत्रु पीठपर लगे हुवे हैं उस समय भी वेढ (युद्ध) करनेवाले वीर प्रतापसिंहने ललकार कर उदयपुरमें प्रवेश किया ॥ ४० ॥

अकबर दल़ अप्रमाण, उदैनयर घेरै अनय ॥
पागां वल़ पूमाण, साहां दल़ण प्रतापसी॥४१॥

टीका—अकबरकी अप्रमाण सेना अनीतिसे उदयपुरको घेर लेती है, परन्तु खुम्माणके वंशवाला महाराणा प्रतापसिंह अपने खड्गके बलसे बादशाहको पीस डालता है ॥ ४१ ॥

देवारी सुरद्वार, अड़ियो अकवरियो असुर ॥
लड़ियो भड़ ललकार, पोलां खोल प्रतापसी ॥४२॥

टीका—देवताओंके द्वाररूपी देवारी द्वारपर असुररूपी अकबर अड़ा, परन्तु वहां पर महाराणा प्रतापसिंहने दरवाजे खोलकर वीरोंको ललकार कर युद्ध किया ॥ ४२ ॥

रोकै अकबर राह, लै हिंदू कूकर लषां ॥
बीभरतो बाराह, पाड़ै घणा प्रतापसी ॥ ४३ ॥

टीका—अकबर लक्षों श्वानरूप हिन्दुओंको साथ लेकर मार्ग रोकताहै, परन्तु गर्जना करता हुआ वाराहरूप महाराणा प्रतापसिंह कइयोंको गिरा देताहै ॥ ४३ ॥

देखै अकबर दूर, घेरो दै दुसमण घड़ा ॥
सांगाहर रणसूर, पैर न षिसै प्रतापसी ॥ ४४ ॥

टीका—अकबरको दूर देखकर दुश्मनोंकी सेना घेरा दे लेतीहै. परन्तु संग्रामसिंहका पौत्र महाराणा प्रतापसिंह ऐसा रणवीरहै कि युद्धमेंसे उसका पैर नहीं डिगता ॥ ४४ ॥

अकबर तड़फै आप, फतै करण च्यारूं तरफ ॥
पण राणो परताप, हाथ न चढै हमीरहर ॥४५॥

टीका-अकबर स्वयं चारोओर विजय करनेके लिये तड़फताहै, परन्तु हम्मीरसिंहका पौत्र महाराणा प्रतापसिंह उसके हाथ नही लगता ॥ ४५ ॥

अकबर किला अनेक, फतै किया निज फोजसूं॥
अकल चलै नह अेक, पाधर लड़ै प्रतापसी॥४६॥

टीका-अकबरने अपनी फौजसे कई दुर्ग जीत लिये परन्तु महाराणा प्रतापसिंह समभूमिमें लड़तेहैं जिनको विजय करनेमें उसकी एक भी बुद्धि नही चलती ॥ ४६ ॥

दुविधा अकबर देख, किण विधसूं घायल करै॥
पसँगा ऊपर पेख, पाखर राण प्रतापसी॥४७॥

टीका-महाराणा प्रतापसिंहके घोड़े पर पाखर देख कर अकबरके मनमे यह द्विविधा उठती है कि उसे घायल क्यों कर करै ॥ ४७ ॥

हिरदै ऊणा होत, सिर धूणा अकबर सदा॥
दिन दूणा देसोत, पूणा ह्वै न प्रतापसी ४८॥

टीका—अकबरके दर्बारमे प्रतिदिन राजा द्विगुणित होते जाते है, परन्तु प्रतापसिंहके न होनेके कारण वह उनको अपूर्ण माना करता है, जिससे वह सदा अपना सिर धुना करता है, और उसके हृदयमे राजाओंका अपूर्ण भाव बना रहता है ॥ ४८ ॥

कलपै अकबर काय, गुण पूंगीधर गोड़िया॥
मिणधर छावड़ मांय, पड़ै न राण प्रतापसी॥४९॥

टीका—अन्य छोटे सर्परूपी राजाओंको वशमें करलेने परभी अकबर अपने मनमें दुःख पाता है क्योंकि मणिधारी सर्पके समान महाराणा प्रतापसिंह उसके छबड़ेमें नहीं पड़ता ॥ ४९ ॥

महि दाबण मेवाड़, राड़ चाड़ अकबर रचै ॥
विषै विषायत वाड़, प्रथुल पहाड़ प्रतापसी॥५०॥

टीका—मेवाड़की पृथ्वी दबानेके हेतु अकबर युद्ध करता है, परन्तु नुकसान सहन करलेने वाले महाराणा प्रतापसिंहके आडी बडे बडे पहाडोंकी बाड़ लग रही है ॥ ५० ॥

बँधियो अकबर वैर, रसत गैर रोकी रिपू ॥
कंद मूळ फळ कैर, पावै राण प्रतापसी ॥५१॥

टीका—अकबरसे वैर हो जानेके कारण उस शत्रुने रसद रोक रक्खी है अतः महाराणा प्रतापसिंहको अब कंद मूल फल और कैर खानेको मिलते हैं भाव यह है कि वह इन वस्तुओंको खाकर भी अकबरके सामने अनम्रही रहना चाहता है ॥५१॥

भागै सागै भाम, अम्रत लागै ऊंमरा ॥
अकबर तळ आराम, पेखै जहर प्रतापसी॥५२॥

टीका—महाराणा प्रतापसिंह अपनी स्त्रीको साथ लिये हुए भगते फिरते हैं, जिनको ऊमरे (उदुंबुर) भी अमृत लगते हैं, परन्तु अकबरकी अधीनतामें सुखपूर्वक रहना उनको विषरूप लगता है ॥ ५२ ॥

अकबर जिसा अनेक, आहव अड़ै अनेक अरि ॥
असली तजै न अेक, पकड़ी टेक प्रतापसी॥५३॥

टीका-युद्धमें अकबरके समान कई रिपु अड़ रहे हैं, परन्तु महाराणा प्रतापसिंहने जो असली टेक पकड़ रक्खी है उसे वे नही छोड़ते ॥ ५३ ॥

लंघण कर लंकाल़, सादूल़ो भूखो सुवै ॥
कुल़वट छोड़ कपाल़, पैंड न देत प्रतापसी॥५४॥

टीका-महाराणा प्रतापसिंह रूपी शार्दूल लंघन करके भूखा सोजाताहै परन्तु अपनी कुलकी रीतिको छोडकर बादशाहके पास पैर भी नही देता ॥ ५४ ॥

अकबर मैंगल़ अच्छ, मांझल़ दल़ घूमै मसत॥
पंचानन पल़ भच्छ, पटकै छड़ा प्रतापसी॥५५॥

टीका- अकबर मस्त हाथीकी तरह मांझल़ अर्थात् (बीच) के दल़में घूमा करताहै परन्तु महाराणा प्रतापसिंह मांसको खानेवाले सिंहकी तरह छड़ा (हातल़) डालताहै ॥ ५५ ॥

दंती दल़सूं दूर, अकबर आवै एकलो ॥
चोड़ै पल़ चकचूर, पल़में करै प्रतापसी ॥५६॥

टीका--हाथियोंके दल़से दूर होकर अकबर अकेलाही आताहै परन्तु महाराणा प्रतापसिंह एक पल भरमेंही उसके गर्वको चूर्ण कर देगा ॥ ५६ ॥

चितमें गढ चीतोड़, राणारै पटकै रयण ॥
अकबर पुनरो ओड़, पेलै दोड़ प्रतापसी॥५७॥

टीका-रत्नरूपी चित्तोड़का किला महाराणाके चित्तमें खटकताहै सो अब अकबरके पुण्यका अन्त समझना चाहिये कि जिसको महाराणा प्रतापसिंह दौड़कर हठाताहै ॥ ५७ ॥

अकबर करै अफंड, मद प्रचंड मारग लगै ॥
आरज भाण अषंड, प्रभुता राण प्रतापसी ॥ ५८ ॥

टीका-अकबर मस्त होकर प्रचंड मार्गमें लगाहुआ अफंड कर रहाहै, परन्तु आर्योंका प्रभुत्व अखंड सूर्यरूपी महाराणा प्रतापसिंहके हाथमें है ॥ ५८ ॥

घटसूं ओघट घाट, घसियो अकबरिये घणो ॥
इल चंनण उपवाट, परमल उठी प्रतापसी ॥

टीका-अकबरने अपने शरीर पर बहुत अवघट घाट घिस रक्खाहै परन्तु महाराणा प्रतापसिंह रूपी चंदनकी परिमल पृथ्वी पर फैल रहीहै ॥ ५९ ॥

अकबर जतन अपार, रात दिवस रोकण करै ॥
पूगी समँदां पार, पंगी राण प्रतापसी ॥ ६० ॥

टीका-महाराणा प्रतापसिंहकी कीर्तिको रोकनेके लिये अकबर रातदिन यत्न करताहै, परन्तु वह कीर्ति समुद्रके दूसरे पार पहुंच गई है ॥ ६० ॥

वड़ी बिपत सहबीर, वड़ी क्रीत षाटी वसू ॥
धरम धुरंधर धीर, पोरस धिनो प्रतापसी ॥ ६१ ॥

टीका-हे वीर ! तुमनें पृथ्वीपर बहुत विपत्ति सहकर भी वड़ी कीर्ति संपादन की है । हे धर्मकी धुरको धारण करने-

वाले धीर महाराणा प्रतापसिंह ! तुम्हारे पुरुषार्थको धन्यवाद है ॥ ६१ ॥

वसुधा किय विख्यात, समरथ कुल सीसोदियां ॥
राणा जसरी रात, प्रगट्यो भलां प्रतापसी॥६२॥

टीका-शीसोदियोंके वंशकी सामर्थ्यको पृथ्वीभरमें प्रकाशित करनेके लिये हे महाराणा प्रतापसिंह ! तुमने यशमयी रात्रिमें भले ही जन्म लिया है ॥ ६२ ॥

जिणरो जस जग मांहिं,जिणरो जग धिन जीवणो
नेड़ो अपजस नांहिं, पणधर धिनो प्रतापसी ॥

टीका-जगत्में उसीका जीना धन्य है जिसका यश संसारमें फैल गया हो, हे दृढ प्रतिज्ञाको धारण करनेवाले ! महाराणा प्रतापसिंह ! अपयश तुम्हारे समीप है ही नहीं अतः तुम धन्य हो ॥ ६३ ॥

अजरामर धन एह, जस रह जावै जगतमें ॥
दुख सुख दोनूं देह, सुपन समान प्रतापसी ॥

टीका-जगतमें अखंड रहनेके लिये अजर और अमर धन एक यश ही है । हे महाराणा प्रतापसिंह! इस देहके साथ सुःख और दुख दोनो स्वप्नके समान अस्थिर हैं ॥ ६४ ॥

अकबर जासी आप, दिल्ली पासी दूसरा ॥
पुनरासी परताप, सुजस न जासी सूरमा ॥६५॥

टीका-एक दिन स्वयं अकबर भी संसार छोड़कर चला जावेगा, और दिल्ली दूसरोंको प्राप्त होजायगी परन्तु हे धर्मके

समृहरूप वीर महाराणा प्रतापसिंह ! तुम्हारा यश संसारसे कदापि नही जावेगा ॥ ६५ ॥

सफल जनम सुदतार, सफल जनमजग सूरमा॥
सफल जोग जग सार, पुरत्रय प्रभा प्रतापसी॥६६॥

टीका–श्रेष्ठ दाताका, श्रेष्ठ वीरका, और श्रेष्ठ योगीका जन्म होनेसे ही संसार सफल माना जाता है। हे महाराणा प्रतापसिंह ! इन तीनोंकी कीर्ति ही तीनों लोकोंमे विस्तृत होती है ॥ ६६ ॥

सारी वात सुजाण, गुण सागर गाहक गुणां॥
आयोड़ो अवसाण, पाँतरियो न प्रतापसी॥६७॥

टीका–हे महाराणा प्रतापसिंह ! तुम समग्र बातोंको श्रेष्ठ रीतिसे जाननेवाले, गुणोंके समुद्र, और दूसरोंके गुणो के ग्राहक हो अतः इस हाथमें आयेहुए समयको भूलना नही

छत्रधारी छत्र छांह, धरम धाय सोयो धरा॥
बांह गह्यांरी बांह, परत न तजैं प्रतापसी॥६८॥

टीका–हे छत्रपति महाराणा प्रतापसिंह ! धर्म सब पृथ्वी मे भगता हुआ तुम्हारे छत्रकी छायामे आकर सोयाहै अर्थात् धर्मने मेवाड़मे आनेपर आपकाही आश्रय पायाहै अतः अपने हाथमें धारण लिये हुए उस धर्मको दृढ प्रतिज्ञा वाले आप कदापि नही छोड़ोगे ॥ ६८ ॥

अंतिम येह उपाय, वीसंभर न विसारिये॥
साथें धरम सहाय, पल पल राण प्रतापसी॥६९॥

टीका-हे महाराणा प्रतापसिंह ! अखीरमें यही एक उपाय है कि, परमेश्वरको कदापि नहीं भूलना, क्योंकि प्रत्येक पुलमे धर्मका रक्षक केवल परमात्मा ही है ॥ ६९ ॥

मनरी मनरै मांहि, अकबररै रहगी इकस ॥
नरवर करिये नांहिं, पूरी राण प्रतापसी ॥७०॥

टीका-अकबरकी आंट उसके मनकी मनमें रहगई जिसको हे नरोत्तम महाराणा प्रतापसिंह ! आप पूर्ण कभी मत करना अर्थात् यवनके वशमे मत होना ॥ ७० ॥

अकबरियो हत आस, अंब षास झांषै अधम ॥
नांषै हियै निसास, पास न राण प्रतापसी ॥७१॥

टीका-अकबरने आशा रहित होकर आम खासमें नीची दृष्टि कर रक्खी है और महाराणा प्रतापसिंहको सामने न देखकर हृदयसे निःश्वास डालताहै ॥ ७१ ॥

सनमें अकबर मोद, कलसां विच धारै न कुट॥
सुपनासें सीसोद, पलै न राण प्रतापसी॥७२॥

टीका-अकबरको स्वप्नमें भी महाराणा प्रतापसिंह समीप नहीं दीखता अतः यवनोंके मध्यमें स्थित उसके मनमें हर्ष नहीं है ॥ ७२ ॥

अै जो अकबर काह. सैधँव कुंजर सॉवटा ॥
चांसै तो वहताह, पंजर थया प्रतापसी ॥७३॥

टी०-हे महाराणा प्रतापसिंह ! अकबरके घोड़े और हाथियोंका दल तेरे पीछे फिरते फिरते सूखकर अस्थिशेष होगया है ॥ ७३ ॥

चारण वरण चिँतार, कारण लष महमां करी॥
धारण कीजे धार, परम उदार प्रतापसी॥७४॥

टी०-हे क्षत्रियोंमें परम उदार महाराणा प्रतापसिंह ! क्षत्रियोंका यथार्थ वर्णन करना चारणोंका जातिधर्म है इस कारणको चितमन करके मैंने जो आपकी महिमा की है वह धारण करनेके योग्य है जिसे आप धारण कीजिये ॥७४॥

आभा जगत उदार, भारत वरष भवान भुज॥
आतम सम आधार, प्रथवी राण प्रतापसी॥७५॥

टी०-उदारपनसे संसारको शोभायमान करनेवाले हे महाराणा प्रतापसिंह ! यह भारतवर्ष आपहीके भुजोंपर स्थित है अतः हे आत्माके तुल्य आधार महाराणा ! पृथ्वीपर एक आपही दृष्टि आते हो ॥ ७५ ॥

कवि प्रारथना कीन, पंडित हूँ न प्रवीण पद ॥
दुरसो आढो दीन, प्रभु तुव सरण प्रतापसी॥७६॥

टी०-कवि प्रार्थना करता है कि मैं दुरसा नामक आढा गोत्रका दीन चारण न तो पंडित हूं और न चतुर हूं अतः हे प्रभो ! प्रतापसिंह मैं तेरे शरण हूं ॥ ७६ ॥

इति विरुद छिहत्तरी ।

[नोट-"विरुद्धछिहत्तरी" के निर्माता कविवर दुरसा-जीका बनाया एक गीत भी प्राप्त हुआ है वह यहां ही नीचे लिखा जाता है-]

गीत (१४०)

आयां दळ सवळ सामहो आवै,
रंगिये खग खत्रवाट रतो ।
ओ नरनाह नमो नह आवै,
पतसाहण दरगाह पतो ॥ १ ॥
दाटक अनड़ दण्ड नह दीधो,
दोयण घड़ सिर दाव दियो ।
मेळ न कियो जाय विच महलां,
कैलपुरै खग मेळ कियो ॥ २ ॥
कलमां वांग न सुणिये काना,
सुणिये वेद पुराण सुभै ।
अहड़ो सूर मसीत न अरचै,
अरचै देवळ गाय उभै ॥ ३ ॥
असपत इन्द्र अवनि आहड़ियां,
धारा झड़ियां सहै धका ।
घण पड़ियां सांकड़ियां घड़ियां,
ना धीहड़ियां पदी नका ॥ ४ ॥

आखी अणी रहै ऊदावत,

साखी आलम कलम सुणो ।

राणै अकबर वार राखियो,

पातल हिन्दूधरम पणो ॥ ५ ॥

[आढा "दुरसाजी" कृत]

क्षात्रधर्म परायण महाराणा प्रतापसिंह पातसाहके सबल दल अर्थात् अनेकानेक भटोंसे भीषण (डरावनी) चतुरंगिनी सेनाएं आनेपर शत्रुओंके शोणित (खून) से रंगेहुए खड्गको धारण करके उन्हींके सम्मुख आता है ! परन्तु अपने अभिमानको छोड शिर झुकाकर बादशाहके दर्वारमें नहीं आता ॥ १ ॥ वैरियोंको रोकनेके लिये विजयशाली अनड़ (अनम्र) वीरने कभी दण्ड (नजराना) नही दिया किन्तु शत्रुओंकी सेनाके सिरोंपर धावाही दिया । कैलपुरा राना महलोंमें जाकर पातसाहसे नहीं मिला प्रत्युत (बल्कि) खड्गोंसे ही मेल किया अर्थात् सर्वदा अकबरकी सेनासे युद्धही करता रहा परन्तु सन्धि नही की ॥ २ ॥ ऐसा धीर और वीर महाराणा अपने कानोंसे यवनोंका बांग मारना नही सुनता किन्तु परम पावन वेद और पुराणोंके उपदेश श्रवण करता है । कभी मसजिदमें जाकर सिजदा नहीं करता किन्तु देवालय और गाय इन दोनोंकी सेवा करता है ॥ ३ ॥ इन्द्ररूपी पातसाह जब जब कोप करके आडम्बर सहित घटाएं बांधकर

आह्वड़ता है अर्थात् आक्रमण करता है उस समय धारारूपी खड्ग धाराओंकी झड़ीमे धक्का (वेग) सहता है । अनेक वार घणी सांकडी घडी पडनेपर अर्थात् घोर विपत्ति उपस्थित होनेपर भी उसको सहन की और अपनी मर्यादा नहीं छोडी उस वीर महाराणाकी वंशज पुत्रियोने दिल्ली जाकर नका नही पढी ॥ ४ ॥ ऊदावत अर्थात् उदयसिंहका पुत्र महाराणा सर्वदा अग्रगण्य रहा । सब संसार और विशेष कर यवन भी इस बातके साक्षी हैं कि अकबरके विकट समयमें भी महाराणा प्रतापसिंहने हिन्दुओं अर्थात् आर्योंके धर्मको यथावत् पालन किया ॥ ५ ॥

सूरायचजी टापऱ्या चारणकृत–

सोरठे (१४१से१५० तक)

चेला वंस छतीस, गुर घर गहलोतां तणों ॥
राजा राणा रीस, कहतां मत कोई करो ॥ १ ॥

टी०–कवि कहताहै कि क्षत्रियोंके छत्तीस वंश चेले (पक्ष, पलड़े) है, जिनमें 'गुहिलोतों (शीसोदियों) का घर बडा है' यह कहनेमें कोई भी राजराणा क्रोध न करना क्योंकि कविका धर्म सत्य कहनेकाहै ॥ १ ॥

चंपो चीतोड़ाह, पोरस तणों प्रतापसी ॥
सोरभ अकबर साह, अलियळ आभड़ियो नहीं॥

टी०—महाराणा प्रतापसिंहका पराक्रम चंपेके वृक्षके समान है जिसको सुगंधिपर अकबर रूपी भ्रमर कभी नहीं आता ॥ २ ॥

साथे सेंगल पाग, तें वाही परतापसी ॥
बांट किया बे भाग, गोटी साबू तांत गत॥३॥

टी०-हे महाराणा प्रतापसिंह! तुमने हाथीके ऊपर खड्ग चलाया, सो तांतसे साबुनकी गोली कट कर दो टुकड़े हो जाती है इस तरह दो टुकडे कर दिये ॥ ३ ॥

सांग ज सोवरणांह, तें वाही परतापसी ॥
जो वादण करणांह, परें प्रगट्टी कुंजरां ॥ ४ ॥

टी०-हे महाराणा प्रतापसिंह! तुमने स्वर्णके रूपवाली बर्छी चलाई सो बहलको फाड़कर सूर्यकी किरणे निकलती है, इस प्रकार हाथीके पार निकलगई ॥ ४ ॥

मांझी मोह मराट, पातल राण प्रवाड़ मल ॥
दुजडां किय द्रहवाट, दल मैंगल दाणव तणा॥

टी०-अनेक युद्ध जीतनेवाले और मोहको मारने वाले वीर प्रतापसिंहने भालोंसे यवनोंकी सेना और हस्तियोंका नाश कर दिया ॥ ५ ॥

सहनक तणां सुजाण, पारीसा पातल तणा ॥
तैं राहविया राण, एकण हूता उदवत ॥ ६ ॥

टी०-अन्य सुजान (राजा) तो सब 'सहनक' अर्थात् मिट्टीके पात्रमें भोजन करनेवाले होगये (मिट्टीके पात्र यव-

नोंके दस्तरखानमें लगाये जाते थे), परन्तु पत्तलमें परोसा हुआ भोजन तो एक प्रतापसिंहके लियेहीहै, हे उदयसिंहके पुत्र! यह रीति एक तुमनेही रक्खीहै आशय यह है कि सब राजा यवनोंके सहभोजी होगये केवल प्रतापसिंह नहीं हुआ ॥ ६ ॥

अेही भुजे अरीत, तसलीमज हींदू तुरक ॥
माथै निकर मजीत, परसादकै प्रतापसी ॥७॥

टीका—पराक्रममें ऐसी कुरीति होगई है कि हिन्दू यवनोंगे झुक झुककर सलाम करते हैं, केवल महाराणा प्रतापसिंह ही ऐसा है जो मसजिदोंके समूहोंपर देव मन्दिर बनवाता है॥७॥

रोहे पातल राण, जां तसलीम न आदरै ॥
हींदू मुस्सलमाण, अेक नहीं तां दोय है॥ ८ ॥

टीका—बिरा हुआ महाराणा प्रतापसिंह जबतक झुककर सलाम करना स्वीकार नहीं करता तबतक हिन्दू और मुसल-मानोंको एक नहीं जानना चाहिये भिन्न भिन्न ही हैं ॥ ८ ॥

चोकी चीतोड़ाह. पातल पड़वेसां तणी ॥
रहचेवा राणाह. आयो पण आयो नहीं ॥ ९ ॥

टीका—महाराणा प्रतापसिंह यवनोंके टुकड़े करनेको तो आया. परन्तु यवनोंकी चोकी देनेको कभी नहीं आया ॥९॥

निगम निर्वाण तणांह, नागद्रहानरहंरज्युहीं ॥
रावत चट राणाह. पिँड अणखूट प्रतापसी ॥१०॥

टीका-वेदका १ निपान (जलाशय) अखूट है, और २ नृसिंहका पराक्रम अखूट है, इसी प्रकार महाराणा प्रतापसिंहके शरीरकी वीरता अखूट है ॥ १० ॥

सोरठा (१५१)

गिरपुर देस गमाड़, भमिया पग पग भाखरां॥
सह अँजसै मेवाड़, सह अँजसै सीसोदिया॥१॥

[जोधपुरके महाराज मानसिंहजी कृत]

[**नोट**-जोधपुरमें जब अनेक उपद्रव होने लगे तब उनको शान्त करनेके लिये अंगरेजी सरकारने अपनी फौज भेजी, उस समय महाराजा मानसिंहजीने अपने सरदारोंसे सलाहकी तो उनने अंगरेजी सरकारको प्रबल बताया और कुचामन ठाकुरने कहा कि बादशाहसे लडना बुरा है, राणाजी लड़े थे सो पैर पैर पर्वतोंमें फिरे थे, इसके उत्तरमे महाराजा साहबने उक्त दोहा फरमाया था ॥]

टीका-अपने पर्वत, नगर, और देश गमाकर पैदल ही पर्वतोंमें घूमते रहे पर महाराणाने अपने धर्मकी रक्षा की जिससे आज मेवाड़का देश गर्व करता है और शीसोदिया जाति घमंड करती है ॥ १ ॥

मुक्तक काव्य (१५२ से १५५ तक)

हिन्दू हींदूकार, राणा जे राखत नहीं ।
तो अकबर एकार, पहो सहो करत प्रतापसी॥१॥

हे हिन्दुओंके प्रभु प्रतापसिंह ! जो राणा हिन्दुओंकी कार अर्थात् आर्यधर्मको नही रखते तो अकबर सबको एकाकार (एक जातवाले) अर्थात् यवनधर्मावलम्बी बना देता ॥ १ ॥

हिन्दूपति परताप !, पत राखी हिन्दवाणरी ।
सहे विपति संताप, सत्य सपथ कर आपणी२॥

हे हिन्दूपति प्रतापसिंह ! तैनें हिन्दुओंकी लाज रखली । और अनेक प्रकारकी विपत्तियां और सन्ताप सह करभी अपनी सच्ची सपथ (शपथ) अर्थात् प्रतिज्ञाका पूर्णरूपसे निर्वाह किया ॥ २ ॥

छप्पय ।

'गुज्जरेस' गंभीर नीर नीझर निरझियो,
अति अथाह 'दाऊद' वुंद वुंदन उब्बरियो ।
घाम घूट 'रघुराय जाम' जलधर हरि लिन्हव,
हिन्दू—तुरक—तलाव को न कर्दमवस किन्हव ।
कवि 'गंग' अकब्बर अक्क भन (अन)
नृप निपान सब वस करिय ।
राना प्रताप रयनाकमझ.
छिन डुब्बत छिन उच्छरिय ॥ ३ ॥

[सुप्रसिद्ध कविवर गंगकृत]

टीका—गुजरातके पतिका जो अत्यन्त गंभीर (ओंडा) नीर अर्थात् पराक्रमजल उसको नीझर निकालकर खाली

करडाला । इसी प्रकार ' दाऊद ' का भी जो अथाह जलथा उसे बूंद २ करके निःशेप करदिया । घाम अर्थात् आतपकी घूंटसे (प्रचण्ड तापसे) जो ' जाम ' देशका जलधर (मेघ) रूपी राजा रघुराय है उसका भी जल हरलिया । हिन्दू तथा मुसलमानोंका कोनसा तालाव रहा, जिसका पराक्रमरूपी जल खैंचकर उसे कर्दममय नहीं किया और जो अन्य राजा-रूपी निपान थे उन्हें सर्वथा सुखा दिये । कवि गंग कहता है कि अकबररूपी अक्क (अर्क) अर्थात सूर्यने सब राजा महा-राजाओंको उनका पराक्रम जल सोख २ कर वश कर लिया परन्तु महाराणा प्रतापसिंहरूपी रयनाक अर्थात् रत्नाकर (समुद्र) में वह क्षणमात्रमें डूबता है और क्षणमात्रमें ऊपर उछलता है अर्थात् महाराणा प्रतापसिंहके पराक्रमजलको नहीं सोख सकता प्रत्युत क्षण २ मे स्वयं ही डूब २ कर बचता है ॥ ३ ॥

छप्पय ।

दल पैलां ऊथपे, तेज ब्रह्म हिं उत्थप्पे,
उत्तर दक्खिण पछिम पूर्व ता पाण पणप्पे ।
अन अनेक भुवपत्त वांग श्रवणां सुण रत्ते,
नमि प्रणाम आधीन करैं सेवा बहु भत्ते ।
खत्रियाण माण महि उद्धरण एक छात्र आलम कहै।
गायत्रि मन्त्र गहलोतगुर तिहिं प्रताप शरणै रहै२

टी० -पातसाहने शत्रुओंकी सेनाओंको पराजित (परास्त) करदी। और ब्रह्मतेजकोभी उखाड़ डाला। उत्तर और दक्षिण एवं पूर्व तथा पश्चिम सब दिशाएं उसके हाथ पड़गई बहुतसे दूसरे भूपति (राजा) यवनोंका बांग मारना सुनकर प्रसन्न होतेहैं। और झुक २ कर सलाम करतेहैं। तथा अकबरके अधीन होकर नानाप्रकारसे उसकी सेवामें तत्परहैं। सब संसार कहताहै कि ऐसे समयमें क्षत्रियोंके मानका अर्थात् सच्चे क्षात्रधर्मका उद्धार करनेवाला केवल एक छत्री (राजा) भूमण्डलपर है कि उम गहलोतोंमे गुरु (श्रेष्ठ) प्रतापसिहके गायत्री मन्त्र शरण है अर्थात् एकमात्र महाराणा प्रतापसिंहही अखण्ड ब्रह्मतेजकी रक्षामे जागरूक (सावधान) है ॥३॥

स्वामी गणेशपुरीजीकृत कवित्त-

(१५६ से १६१ तक)

वाढी वीर हाक हर डाक भुवं चाक चढी,
ताक ताक रही हूर छाक चहुँ कोद मैं।
बोलिकै कुबोल हय तोल बहलोलखां पै,
वागो आन कत्ता रान पत्ताको विनोदमैं॥
टोप कटि टोटी लाल टोपा कटि पीत पट,
सीस कटि अंग मिली उपमा सुमोद मैं।
राहू गोद मंगलकी मंगल गुरूकी गोद,
गुरू गोद चंदकी रु चंद रवि गोद मैं॥१॥

टीका—चारोंओर शूर वीरोंकी हाक वढी, महादेवकी डाक (वाद्यविशेष) वीरोंका उत्साह वढाने लगी. भूमि चक्र पर चढी अर्थात कंपायमान हुई और अप्सराएं तृप्त होकर चारोंओर देखने लगी, ऐसे समयमें अश्वको सम्हाल कर कटुवचन बोलते हुए महाराणा प्रतापसिंहने विनोदमें मुगल-वहलोलखांपर अपना कत्ता (खड्ग) चलाया, जिससे उसका टोपा कटकर नीचेकी लाल टोपी टोपा, पीला कपड़ा शिर और शरीर तक कटगया, उस समय आनन्दमें क्रमसे ऐसी उपमा प्रतीत हुई कि मानो श्यामवर्ण राहु रक्तवर्ण मंगलकी गोदमें, मंगल पीतवर्ण बृहस्पतिकी गोदमें, बृहस्पति स्वच्छ चंद्रमाकी गोदमे और चंद्रमा ओजस्वी सूर्यकी गोदमें हो

[**नोट**—इस वृत्तका एक उत्तम सोरठा भी सुना जाता है. वह यह है—

खल़ वहलोल खपार, पेल़ दल़ लाखां प्रसण,
अस चेटक उलटार, पहुँतो उदयाचल पतो ॥

लाखां शत्रुओंके दल़ अर्थात् सेनाको छिन्न भिन्न कर और दुष्ट वहलोलखांको मारकर विजयी वीर महाराणा प्रतापसिंह अपने चेटक घोडेको वापिस लौटाकर उदयपुर पहुंचे ॥]

दावा अरु धावा दुर्गदासको दिखावा जग,
रान पास आवा साथ पावा सूर सत्तासो ।
जावा अमरेसको बखानै सब देस पै न,
आवा बन्यौ मारि मर्यो मीर रोस रत्ता सो॥

आवा शिवराजको न जावा बन्यौ जैसी विधि,
यहै म्लेच्छ मुच्छ काट लावा मोद मत्तासो॥
दावा रान पत्ता सो न धावा रान पत्ता सो न,
जावा रान पत्ता सो न आवा रान पत्ता सो ॥२॥

टी०—जगत्में दावा करना व धावा देना दुर्गदासका प्रसिद्ध है, परन्तु वादशाह स्वयं सेनाके साथ महाराणाके ही पास आया। ऐसे ही जाना अमरसिंहका विख्यात है पर वह वहां ही काम आये और निज वीरतासे आ न सके॥ इसी तरह आना शिवाजीका प्रख्यात है परन्तु उनका आना वीरतासे नहीं हुआ, और यह महाराणा प्रसन्नतासे ही वादशाहकी मूछतक काट लाया अतः महाराणा प्रतापसिंहके समान दावा, धावा, जाना और आना किसीका भी नहीं हुआ ॥२॥

[नोट—इस कवित्तमें वादशाहका स्वयं सेनाके साथ आकर महाराणासे युद्ध करनेका और महाराणाका उसकी मूछ काट-लेनेका इतिहास कविकी कल्पनामात्र है क्योंकि लोक कथनसे तो यह वात सुनी गई है परन्तु इतिहासोंसे यह वात सावित नही है। महाराणा प्रतापसिंह और अकवर कभी शामिल नही हुए थे.]

कोल खान खानाके प्रतापसिंह रानापर,
वाना हिंदवानाको सुहाना तो गयारीतैं।
दाहके करन पातस्याहके उराहनेपै,

चाहके मरन रनराहके जयारी तैं।
पानि देकैं मुच्छन कृपान पुनि पानि देकैं,
पानलौं उडावैं म्लेच्छ वीरता बयारीतैं।
सूरनके हाके होत कूरनके साके होत,
हूरन इलाके होत तूरन तयारीतैं॥ ३॥

टी०-खानखानाके वचन हैं कि हिन्दुस्थानका बाना महाराणा प्रतापसिंह पर सिंहके समान अच्छा लगताहै। जलन पैदा करनेवाले बादशाहके रहने पर युद्धके मार्गमे मरना बिचार कर जीतके लिये शत्रुओंके अर्थ मूंछोपर हाथ देकर और फिर तलवार पर हाथ देकर वीरतारूपी पवनसे यवनोंको पानके समान उडादेताहै। जहां शूरोंके हाके हो रहे हैं कायरोंके साके हो रहेहैं, अप्सराओंके वीरोको वरनेके परगने हो रहेहैं, और नगारे बज रहे हैं॥ ३॥

गेर गेर लाज सब राज रहैं पैर परे,
जेर भए फेर सुर मेरके सिखर जात।
'एक लिंग' बासमें बिलासको निवास जानि,
राधिका रमन चहैं रमन रिखारि जात।
आछी आछी मीरनीके आखिरी उजीरनीके,
चीर नीके चीर दृग नीर जी निखारि जात।

बेर बेर घेर उदैनेरकों असुर औरें,
हेर हेर परैं पत्ता बेरसे बिखरि जात ॥ ४ ॥

टी०—सब राजा लाज छोड़कर पैरों पड़े रहते हैं और अधीन होगये हैं, देवता फिर मेरुके शिखरपर जाते हैं। एकलिंगके वासमें (मेवाड़में) विलासका निवास जानकर श्रीकृष्ण रमण करना चाहते हैं। अच्छी २ मीरों और वजीरोंकी स्त्रियोंके आंखोंके आंसू और जीव उनके अच्छे २ चीरो (वस्त्रो) को चीरकर निकल जाते हैं। घड़ी २ यवनलोग उदयपुरको घेरनेको अड़ते हैं जिनको हेर हेर कर प्रतापसिंह उनपर पड़ता है तो वे बेरकी नांईं बिखर जाते हैं॥४॥

हेरि हेरि हारि हिय हहरि हरिननैनी,
हुरम कहत हठ तिय नाह नत्ता है ॥
दीनसों अदीन ह्वैकै तेरे नेह पीन ह्वैकैं,
मीन जल लीन ह्वैकैं खीन ह्वै न खत्ता है ॥
बब्बरको नातिय अकब्बर सु अब्बरसे,
मेल्हे फरमान मेल कीवे मोद मत्ता है ॥
बालसो रु तालसो पसारिनके जाल जैसो,
ज्वाल जैसो काल जैसो पत्ता रन रत्ता है॥५॥

टी०—बादशाहकी मृगाक्षी स्त्रियां पराजयको देख देख कर घबराकर हठसे कहती हैं कि अपना स्त्री पुरुषका संबंध है, और अपने धर्मको छोड़कर तेरे स्नेहमें पुष्ट होनेके कारण हमने अन्य निकृष्ट धर्मको अंगीकार किया है. और पानीमें

मच्छीकी तरंहं लीन होकर दुर्बल होरहीहैं, ऐसा हमारा कोई अपराध नही है। बाबरका पौत्र अकबर अब्बर (जौहर) की तरंहं प्रसन्न होकर सन्धि करनेका फरमान भेजता है, परन्तु महाराणा प्रतापसिंह बालक, ताला, पसारियोंके समूह अग्निकी ज्वाला और काल (यम) की भांति अपने रणरूप कर्तव्योमें अत्यन्त आसक्त है ॥ ५ ॥

छप्पय ।

नच्चन बेर निहारि,
पुत्त कहि चारु प्यार चहि ॥
उहि छिन उमँगि उडात,
कंध धर हाथ भ्रात कहि ॥
वग्ग उठत रन रुप्पि,
बप्प कहि अप्प विरुद वर ॥
तात भ्रात सुत सोक,
गजब त्रिक परिग अरिग गर ॥
कट्टिग न पैर कट्टिग यकृत,
कट्टिग मान निसान घन ॥
हय मरिग नहिं न चेटक अहह,
मरिग रान पत्ता सुमन ॥ ६ ॥

टी०—जिस अश्वको नाचता हुआ देखकर पुत्र पुत्र कह कर प्यार किया, उसही समय प्रसन्न होकर जब उसे उडाया तो कंधेपर हाथ धरकर भाई भाई कहा और युद्धमें डट कर उसे वाग उठाकर अपना वाप वाप कहकर विरुदाया उस अश्वके मरनेसे महाराणा प्रतापसिंहके गले मानो पुत्र भ्राता और पिताका शोक पड़ गया। खेदका विषयहै कि उस घोड़ेका पैर नही कटा किन्तु मानका दृढ़ निसान कट गया हा!!! चेटक अश्व नहीं मरा किन्तु महाराणा प्रताप-सिंहका मन मर गया ॥ ६ ॥

कवित्त (१६२ व १६३)

अज्ज धर्म रच्छक इतै रु जवनिष्ट उतै,
घाट हल्दी रन भ्रमावैं भट भालोंकों,
वीर दोरदण्डन उदग्ग मच्छलग्गनतें,
सब्बुन ज्यौं तंति चीरे देत गजढालोंकों।
प्रहरन ताप कान्दसीक प्रतिपच्छी बने,
पदग्रस्त वुल्लत विलोकि रक्त नालोंकों।
साक पानेवाले रान पत्ताकी कृपान पिक्खि,
लगत जुलावसी पुलाव खानेवालोंकों ॥१॥
म्लेच्छनकों नमिवो अयोग्य लखि ग्राह्य गने,
समयानुकूल कन्द मूल फल पत्ताकों.

राज्य–द्रंग–दुर्ग–देश–वैभवज सुःख हेय,
राखी दृढ वंशपरिपाटीकी प्रभत्ताकों ।
खग्ग बल विस्तारि अकव्वरसे शत्रु अग्ग,
इकल निबाह्यौ जिहं वेदधर्म नत्ताकों.
आसमुद्र उर्विवासी अज्ज कृतमन्य देत,
धन्यवाद वीर अग्रगण्य रान पत्ताकों ॥ २ ॥

['हणूतया' ग्रामनिवासी बारहठबालावक्स पालावत रचित]

[नोट–पहिला कवित्त हलदी घाटपर जो युद्ध हुआ था उसहीके वर्णनका है और दूसरे कवित्तसे कविने महाराणा साहबको धन्यवाद दिया है ।]

टी०–इधर तो आर्यधर्मके रक्षक महाराणा श्रीप्रतापसिंह हैं और उधर यवनोंका इष्ट अर्थात् उनके धर्मका पक्षपाती अकबर है । हलदी घाटपर रण मंडा है, जहां भट (वीर) भालोंको घुमा रहे हैं । वीरोंके भुजदण्ड उदग्र अर्थात् तीखे मण्डलग्ग (मण्डलाग्र) अर्थात् खड्गोंसे गढालोंको चीर रहे हैं जैसे कि तांत साबुनको चीर डालती है । महाराणाके खड्गकी तापसे शत्रु कान्दसीक (भयद्रुत) बनगये हैं अर्थात् अपना २ प्राण बचा २ कर भागे है, और लोहूके प्रवाह देख भयसे त्रस्त होकर पदग्रस्त अर्थात् स्खलित वचन बोलते हैं, अहो शाकमात्रसे निर्वाह करनेवाले राणा प्रतापसिंहकी तलवार देखकर पुलाव खानेवालोंको जुलावसा लगा है ॥ १ ॥

जिस महाराणाने म्लेच्छोके आगे नमना सर्वथा अनुचित जानकर समय २ पर प्राप्त हुए कन्द, मूल, फल और पत्तों (शाक) कोही खाने योग्य गिने। और राज्य पुर, दुर्ग देश और वैभवके सुखको तुच्छ समझा। अपनी वंशपरम्पराकी कीर्तिको यथावत् वनी रक्खी। तथा जिस वलशालीने अकवर जैसे (प्रवल) शत्रुके आगे खड्गके वलसे वेदधर्मका सम्वन्ध निवाहा। उस वीराग्रगण्य महाराणा प्रतापसिंहको समुद्र पर्य्यन्तके भूमण्डलनिवासी आर्य जन कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देते हैं ॥ २ ॥

कवित्त (१६४)

अखिल जहान यों वखानतहै आननतैं,
मेदपाट मंडन प्रताप वल वंडकों।
पाक साक पचत रसोईमें तथापि तेरो,
पिंड नां तजत रजपूतीके घमंडकों।
कवि 'हिंगलाज' नव खण्डनमें नाना विधि,
पण्डित पढत पावै सुजस अखण्डकों।
जापै भरि दण्ड नृप झुंडनके मुण्ड झुकें,
तापैं भुजदण्ड तेरे मापैं व्रह्मण्डको ॥

[सेवापुरग्राम निवासी हिंगलाजदान कविया कृत]

टीका—सारा संसार मेवाड़के भूषण और वलवण्ड अर्थात् वड़े शूरवीर महाराणा प्रतापसिंहके प्रतापको इस प्रकार मुखसे

बखान करता है कि, हे राणा! यद्यपि तेरी रसोईमें शाकही पाक बनता है अर्थात् ऐसी शोचनीय अवस्था है तथापि तेरा तन रजपूतीके घमंडको नहीं छोडता कवि हिंगलाज कहता है कि नवों खण्डोंमे पण्डित जन तेरे अखण्ड सुजस गाते हैं। जिस बादशाहके आगे नजराना देकर अन्य नृपसमूह सिर झुकाते हैं, अर्थात् दूसरे राजा जिसके सामने अत्यन्त नम्रभावसे सलाम करते हैं, उस यवनसम्राट् पर तेरे भुजदण्ड ब्रह्माण्डको मापते हैं अर्थात् सर्वदा खड्ग धारण करके शत्रुका संहार करनेको उद्यत रहते हैं॥

गीत (१६५) मरसिया।

सामो आवियो सुरसाथ सहेतो,
ऊंच वहा ऊदाणा॥
अकबर साह सरस अणमिळियां,
राम कहै मिळ राणा॥ १॥

भ्रम गुर कहै पधारो पातळ,
प्राझा करण प्रवाड़ा॥
हेवै सरस अमळिया हींदू,
मोसूं मिळ मेवाड़ा॥ २॥

अेकंकार ज रहियो अळगो,
अकबर सरस अनैसो॥

विसन भणै रुद्र ब्रहम विचालै,
बीजा सांगण वैसौ ॥ ३ ॥

[आढा शाखाके चारण दुरसाजी कृत]

टीका-ऊंची खैंचनेवाले उदयसिंहके पुत्र महाराणा प्रतापसिंहके सन्मुख देवताओं सहित विष्णु भगवान्‌ने आकर कहा कि अकवरसे स्नेहपूर्वक नहीं मिलनेके कारण हे मेवाड़के राजा प्रतापसिंह! अब मुझसे मिल ॥ १ ॥ परमेश्वर कहते हैं कि हे बहुत युद्ध करनेवाले महाराणा प्रतापसिंह! पधारिये और यवनोसे स्नेहपूर्वक नहीं मिलनेके कारण मुझसे मिलिये ॥ २ ॥ तुम हिन्दू और यवनोंका धर्म एक करनेमें दूर रहे हो, और अकवरसे अपरिचित रहे हो, इसलिये हे दूसरे संग्रामसिंहरूपी महाराणा प्रतापसिंह! शिव और ब्रह्माके बीचमें वैठो ॥ ३ ॥

छप्पय (१६६)

अस लैगो अणदाग,
पाघ लैगो अणनामी ॥
गो आडा गवड़ाय,
जिको वहतो धुर वामी ॥
नवरोजे नह गयो,
न गो आतसां नवल्ली ॥

न गो झरोखाँ हेठ,
जेठ दुनियाण दहल्ली ॥
गहलोत राण जीती गयो,
दसण मूंद रसणा डसी ॥
नीसास मूक भरिया नयण,
तो मृत शाह प्रतापसी ॥ १ ॥

[आढा दुरसाजी कृत]

टीका—हेमहाराणा प्रतापसिंह ! तेरी मृत्यु होनेपर बादशाहने रसना डसी, और निःश्वासके साथ नेत्र भरलिये अर्थात् आपके कालवश होनेसे बादशाहने शोक प्रकट किया कि हा ! गहलोत राणा जीत गया, वह अपने अश्वको विना दागही लेगया अर्थात् उसके घोड़ेके शाही दाग नहीं लगसका, हा ! वह अपनी पाघको अणनामी (विना नमायें) ही लेगया अर्थात् मेरे दर्बारमें आकर सलामी नही हुआ, जो सदा वाम-भावसेही धुरको धारण करताथा अर्थात् बडा प्रवल शत्रु था वह गया, हा ! वह वीर कभी नवरोजे नही गया और उसने कभी आतससंबन्धी क्लेश नही सहा । वह दुनियांका ज्येष्ठ अर्थात् संसारमें अत्यन्त उन्नत प्रतिष्ठाके शिखर पर आरूढ हुआ महाराणा कभी दिल्लीके झरोखोंके नीचे नही आया अर्थात् सलामी नहीं हुआ और अपने मानको यथा-वत् निभागया (अभिप्राय यह है कि मैं अनेक प्रयत्न करके

भी महाराणा प्रतापसिंहपर अपना प्रभुत्व नहीं कर सका इस-लिये मेरे प्रतापमे यह एक बड़ीभारी न्यूनता रह गई इसहीका बड़ा सोचहै) ॥ १ ॥

[नोट–परमेश्वरकी अपार माया है कि जो वीर महा-राणा प्रतापसिंह बादशाही फौजके साथ हजारो वीरोमें घोड़ा उठाकर निकल गये। जिनने हजारहों वीरोंको अपनी तर वारसे रण शय्यामे सुला दिया, पर उनके एकभी घाव न लगा। उन्ही वीर महाराणाका एक सिंहकी शिकारमे कमान चढाकर अङ्ग मोड़ते समय आंत तूटकर देहान्त होगया।]

महाराणा श्रीअमरसिंहजी।

महाराणा श्रीअमरसिंहजी वि० सं० १६५३ मे गद्दी विराजे और सत्रह लड़ाइयोमे बादशाह जहांगीरकी फौजके साथ युद्ध करके विजय पाया । इन लगातार लड़ाइयोंमे मेवाड़के प्रायः समस्त सरदार जो वीर और बडी आयुवाले थे काम आगये पर फिर भी ये लड़तेही रहे। सुना जाता है कि अन्तमे जब फौज न रही तब मेवाड़के जो सर्दार बाकी बचे थे उनने आग्रह किया जिससे मजबूर होकर बादशाह जहांगीरके साथ सन्धि करलेनी पडी. जिसमे सबसे मुख्य शर्त एक यह थी कि महाराणा बादशाहके पास दिल्ली नहीं जावेंगे, या तो उनके महाराजकुमार जावेंगे या पोते जाया-करेंगे अतएव इन्होंने महाराजकुमार कर्णसिंहको अजमेर भेजा। बादशाहने भी यह गनीमत समझ कर इसको अङ्गीकार

कर लिया । महाराणाने उसी दिनसे उदास होकर राज काज छोड़कर एकान्तवास करलिया और जबतक जीते रहे अमरमहलसे बाहर नही निकले । इन महाराणाका देहान्त सं. १६७६ मे हुआ था ॥

गीत (१६७)

अकबर दल़ आल साबल़ां ओषण,
　　जूझ कल़ह मातै रण जंग ॥
खैंदां तणै रगतसूं राणै,
　　राता किया पहाड़ां रंग ॥
रँग हैंवर नर चाढे बेगर,
　　कुंजर घाण मथाण कर ॥
मेवाड़ां* डूंगर मेवाड़ा,
　　आछे रँग रंगिया अमर ॥ २ ॥
असुरां घाट माट ऊकाल़े,
　　घाट घाट पतसाह घड़ ॥
सांग कल़ोधर किया सावरत,
　　आपाणां जूना अनड़ ॥ ३ ॥
पग पग पाड़ राड़ कैलपुरा,

---

* "आहाड़ै डूंगर आपाणा" ऐसा पाठान्तरभी सुनाजाताहै ।

रँगिया चोळ मजीठां रोद ॥

पातलतणैं पुराणा परबत,
सिणगारिया बडे़ सीसोद ॥ ४ ॥

मांसांचेरां धपाडे़ मांसां,
बांसां करे अमावड़ बाड ॥

मावै नहीं पहाड़ां माहे,
हाथ्यांरा दांतूसळ हाड ॥ ५ ॥

टीका—उस वडे युद्धमे मस्त होकर जूझते हुए राणाने अकवरकी फ़ौज जो आलके समान थी उसे भाले रूपी सावळसे ओरवणी (छड़ी) और उन १ तुरकोंके लोहूसे पहाडोको लाल रंग दिये ॥ १ ॥ वचे हुए घोड़े हाथी और मनुष्योंके समूहको घेरकर वेगर (रंगनेका मसाला) के समान मथकर मेवाड़पति अमरसिहने मेवाड़के पर्वतोको अच्छी तरहं रंग दिये ॥ २ ॥ महाराणाने वादशाहकी फोजके यवनोंको पर्वतोके घाटेरूपी मटकोमें उकालकर उनके रक्तरूपी जलसे अपने पुराने पर्वतोको रंगीन कर दिये ॥ ३ ॥ केलपुरे ने पेंड २ मे राड करके यवनोके रक्तसे मजीठसे चोल रंगदिये। प्रतापसिहके पुत्र वडे सीसोदियाने अपने पुगने पर्वतोंका शृंगार कर दिया ॥ ४ ॥ शत्रुओंकी पीठमें वहुत घाव लगाकर २ मासभक्षी जानवरोंको तृप्त करा दिये और पहाड़ोमे नहीं मावे एसे हाथियोंके दांत तथा हड्डियोके ढेर लगादिये ॥ ५ ॥

गीत(१६८)

दरजी अमरेस बणाई दोमझ,
तरकी सुजड़ कूंत पग तीर ॥
रोम रोम षीलाणो रावत,
सिध कंथा ताहरो सरीर ॥ १ ॥
किलमांपत भेटे कारीगर,
कारी घाव निहाव कर ॥
बाल़ बाल़ जुड़ियो थारो बप,
पेवँद आयसतणी पर ॥ २ ॥
पड़ उसताज आहणे असपत,
टुजड़े देतो खल़ां दुष ॥
केस केस सँधियो कैलपुरा,
रावल़ अंबरतणी रुष ॥ ३ ॥
सुत परताप धगां भर सारां,
इल़ा उजीण दुकान इम ॥
काया अमर गूदड़ी कीधी,
जगपत गोरषनाथ जिम ॥ ४ ॥

टीका-महाराणा अमरसिंहने अपने शरीरको कंथा (गुदड़ी) रूप बनाया जिसमें कटारी, भाला, खड्ग और तीरकी तरकी (फटे हुए वस्त्रपर लगानेके लिये अन्य वस्त्रका टुकड़ा)

लगाई, इसलिये हे वीर ! तुम्हारा शरीर सिद्धोंकी कंथाके समान बहुत तरकीवाला है ॥ १ ॥ यवनोंके पतिसे मिलकर जो निरन्तर घाव लगे वही उक्त दुलाईमें (कंथामें) कारी (तरकी) है, जिससे तुम्हारा शरीर वाल वाल जुड़ रहा है, और आयसजी (सिद्ध) की भांति उसमें थेगली (तरकी) हैं ॥ २ ॥ युद्धमें पड़कर वादशाहोंको मारे और भालोंसे दुष्टोंको दुःख दिया इसही कारणसे हे केलपुरा ! रावलबाबाके वस्त्रकी भांति तेरा शरीर रोम रोम जुड़ रहा है ॥ ३ ॥ हे महाराणा प्रतापसिंहके पुत्र अमरसिंह ! उज्जैनकी भूमिरूप दुकानमें तैंने अपने शरीरको तागे भरकर गोरखनाथकी गुदड़ी के समान बहुत तरकियों वाला करदिया ॥ ४ ॥

गीत (१६९)

अह माथै रांग आभ लग ऊंचो,
नव षंडे जस झालर नाद ॥
रोप्या भला रायपुर राणा,
पड़ै न सासणतणां प्रसाद ॥ १ ॥
मेछां अगम सुजसमै सूरत.
गुण पूजाकर पूज गण ॥
आगाहट रोपे इळ ऊपर,
अमर तणां देवळ अमर ॥ २ ॥

पाषाणां चुणिया सह पड़सी,
अधका दिन जातां अन मंध ॥
बडा बडा गजवंध बषाणैं,
बापाहरा तणां धजवंध ॥ ३ ॥
अवचॅल़ मॅंडप करे आगाहट,
सुर जिम थापे कवेसुर ॥
मुंह मांगियो सु दीधो मौनें,
पता समोभ्रम रायपुर ॥ ४ ॥

[दुरसाजी आढा कृत १]

[**नोट**–महाराणा अमरसिंहजीने कविवर " दुरसा " जी आढाको " रायपुर " नामका एक ग्राम प्रदान किया था, जिसपर दुरसाजीने दो गीत कहे एक यह और दूसरा इसके आगेका । आगेवाले गीतकी कल्पना बड़ी अनूठी है । उस गीतमें कविने इस प्रकार रचना की है कि जिससे महाराणाका अतुल प्रताप, प्रशंसनीय पराक्रम और दक्षिण्य आदि नायकगुण व्यञ्जना द्वारा प्रतीत होते हैं जिनसे महाराणाका परम उत्कर्ष व्यङ्ग्य होता है ।]

टीका–हे राणा तैनें रायपुरनामक ग्रामका १ उदक रूपी २ मन्दिर अच्छा बनाया है कि जिसकी नींव तो शेषके शिरपर है और आकाशतक ऊंचा है और नवो खंडोंमे जिसकी यशरूपी झालर वजती है वह मन्दिर पडेगा नहीं अर्थात्

चिरस्थायी रहेगा ॥ १ ॥ महाराणा अमरसिंहने पृथ्वीपर उदकरूपी अमर मन्दिर बनाया है जिसमें यवनोंको अगम्य, ऐसे सुयशकी मूर्ति स्थापितकी है और जिसकी पूजा करने वाले गुणरूप पुजारी हैं ॥ २ ॥ पाषाणोंसे चुने हुए अन्य सब मन्दिर अधिक समय बीतनेपर गिर जायँगे, परन्तु बापारावलके वंशवाले महाराणा अमरसिंहके मन्दिरकी बड़े बड़े राजा लोग प्रशंसा करेंगे ॥ ३ ॥ हे प्रतापसिंहके सदृश महाराणा अमरसिंह ! मैंने रायपुर अपने मुंहसे मांगा सोही तैंने मुझे देदिया सो तैंने ९ उदकरूपी ४ स्थायी मन्दिर बनाया और उसमें कवीश्वररूपी देवताकी प्रतिष्ठा की ॥ ४ ॥

गीत (१७०)

अणदीठा जिके गाविया अधपत,
अणदीधां गाया अवर ॥
मांगूंहूं इतरो मेवाड़ा,
एकण तो तीरे अमर ॥ १ ॥
गाया म्हैं सांगिया परखै गुण,
गढपति गामांपती गणो ॥
मोटा पत्री द्रवो मेवाड़ा,
राण पत्रीवँसतणो रणो ॥ २ ॥
राव रावत रावल़ के राजा,
राणाहरै राखियो ऋण ॥

तूं हिंदवाण धणी पातलतण,
तो गोढां मांगजे तिण ॥ ३ ॥
ऋण राखियो घणो राजाने,
मिळसां न करै मूझ मन ॥
कर ऊरण कूंभेण कळोधर,
राण अढारह रायहर ॥ ४ ॥
सोह सीळणो कियो सीसोदै,
सूर सोम ते साखि सुर ॥
छत्रियां कुळ लहणो छोड़वियो,
राण दियंतै रायपुर ॥ ५ ॥

[आढा दुरसाजी कृत (२)]

टीका–हे मेवाड़ा ! मैंने जिन अधिपतियों (राजाओं) को नहीं देखा, उनका भी सुजस गाया । और जिन राजाओंसे कभी कुछभी नहीं पाया उनकाभी काव्य वनाया । परन्तु हे अमरसिंह ! मैं तेरे पाससे केवल इतना ही मांगताहूं ॥ १ ॥ कि तुझपर जो क्षत्रियवंशका ऋण है अर्थात् 'महाराणाने वादशाहकी सेनामें संयुक्त (सामिल) होकर आये हुए जिन राजाओंको मारेहैं उनकी ओरसे किसीने भी महाराणासे बदला लेनेका दावा नहीं किया, क्योंकि महाराणा प्रचण्ड पराक्रमशाली होनेके कारण किसीके वध्य (मारनेयोग्य) नहीं हुए और न तुमको कोई मार सकता निदान इस प्रकारसे

जो कई राजाओंका रजपूतीका ऋण तुम पर है' उसे हे बड़े क्षत्रिय मेवाड़ा राणा! द्रवो अर्थात् देवो। मैंने गुणोंका पक्ष लेकर अनेक ग्राम पति और गढ़ पतियोंका जस गायाहै और याचना की है ॥ २ ॥ परन्तु तू हिन्दुओंका धणी है और महाराणा प्रतापसिंहका सुयोग्य पुत्रहै (इससे यह अभिप्रायहै कि, यह क्षत्रियोका ऋण तेरे पिताका किया हुआहै इस लिये इस ऋणको चुकादेना तेरा धर्महै) इस कारण कई राव, रावत, रावल और राजाओने जो राणोंपर अपना ऋण रक्खाहै उसे तेरे पाससे मांगना चाहिये ॥ ३ ॥ महाराणा प्रतापसिंहने राजाओंके ऋणको इतना वढा लिया था कि उसके चुकजानेके लिये मेरा मन साक्षी नही देताथा, परन्तु हे महाराणा कुम्भाकी कलाको धारण करनेवाले राणा अमरसिंह! तू अठारह राजाओंके ऋणको देकर उऋण होगया ॥ ४ ॥ सीसोदियाने सव ऋणका सीलणा (फैसला) अर्थात् सव चुकाकर उद्धार करादिया। उसके देवता सूर्य और चन्द्रमा साक्षीहैं। हे महाराणा! मुझे "रायपुर" ग्रामका दान करके तुमने क्षत्रियोके कुलका लहणा (ऋण) छुड़ालिया अर्थात् अव उस ऋणका दावा तुमसे कोई नहीं करेगा आपने उसी ऋणमें मुझे "रायपुर" देकर फैसला करालिया ॥ ५ ॥

गीत (१७१)

सांगण दूसरा अभनमा उदैसी,
अमरा अंवर अड़ियो ॥

दे आसीस तनैं दसरावो,
नवरोजे नां वड़ियो ॥ १ ॥
चरचै चँनण तूझ चीतोड़ा,
पुहपमाळ पहरावै ॥
दासपणों न करै दीवाळी,
ईद तणैं घर आवै ॥ २ ॥
पातलरा छळ जाग पतावत,
अरसीरा छळ आगै ॥
यळ जसरात जनामियो अमरा,
जमांरात नह जागै ॥ ३ ॥
चित्रांगढ हद सोह चाढवा,
सोह हमीर सरीषां ॥
लाषाहरा नकूं लेषवियो,
तथ मेळे तारीषां ॥ ४ ॥

टीका–हे दूसरे संग्रामसिंह और दूसरे उदयसिंहरूपी अमरसिंह ! तुझे आर्योंका त्योहार दसहरा आशीर्वाद देता है कि जो तेरेही प्रतापसे नवरोजे नहीं पहुंचा ॥ १ ॥ हे महाराणा ! दीपमालिका तुझे चन्दनसे चरचती और पुष्पमाला पहिनाती है कि जिसने तेरे प्रतापसे ईदके (यवनोंके) घरमें जाकर दासपन नहीं किया ॥ २ ॥ हे अमरसिंह !

तू यशकी रात जनमा था अतः महाराणा प्रतापसिंह और अरिसिंहके १ यशके लिये तैनें भी जुम्मारातमें जाकर जागरण नहीं किया ॥ ३ ॥ हे लाखाके वंशवाले महाराणा अमरसिंह तैनें चित्तोड़की शोभाको और हम्मीरसिंह सरीखे पुरुषाओंकी शोभाको हदतक बढानेके लिये तिथिके साथ यवनोंकी तारीखें लगाकर कभी हिसाब नहीं किया ॥ ४ ॥

दोहा (१७२)

कमधज हाडा कूरमा, महलां मोज करंत ॥
कहजे पानाषाननें, बनचर हुवा फिरंत ॥ १ ॥

टी०–राठोड़, हाड़ा और कछवाहे तो महलोंमें आनन्द भोगते हैं परन्तु खानखानाको कहदेना कि हम जंगलीकी तरहं वनोंमे घूमा करतेहैं ॥

दोहा (१७३)

चहुवाणां दिल्ली गई, राठोड़ां कनवज्ज ॥
राण पयंपै पाननैं, वो दिन दीसै अज्ज ॥ २ ॥

टीका–महाराणा अमरसिंह खानखानाको कहतेहै कि जिस दिनके पलटनेसे चहुवाणोंमे दिल्ली और राठोडोंसे कन्नोज चला गया वही दिन आज हमको हमारे लिये भी दीखता है ॥

[नोट–उपरोक्त दोनो दोहे महाराणा अमरसिंहजीने नवाब खान खानाको लिखे थे जिसके उत्तर में नवाब खान खानानें निम्न लिखित दोहा लिख भेजा था.]

दोहा (१७४)

धर रहसी रहसी धरम, षप जासी पुरसाण ॥
अमर विसंभर ऊपरै, राष नहच्चो राण ॥१॥

टीका-तुम्हारी पृथ्वी तुम्हारे ही रहेगी और धर्म भी तुम्हारा यथावत् बना रहेगा एवं यवन नाश पाजावेंगे सो हे महाराणा ! उस अविनाशी विश्वंभर पर विश्वास रक्खो ॥

महाराणा श्रीकर्णसिंहजी ।

उक्त महाराणा वि. सं. १६७६ मे गादी विराजे इनके समयमें दिल्लीसे कोई युद्ध न हुआ अतः इनका शासनसमय बहुत शान्तिसे बीता । जहांगीर बादशाहका शाहजादा खुर्रम अपने पितासे बाग़ी होकर उदयपुरमे शरण चला आया जिसको महाराणा कर्णसिंहजीने बहुत सत्कारसे रक्खा । इनका देहान्त विक्रमी संवत् १६८४ में हुआ था ॥

गीत (१७५)

प्रगट कोट गढ पाड़, साही धरा पलटजै,
सुणै सेषू तणों उवर सीधो ॥
जान कर परणवा जावतां जैतहत,
करण तैं माऴवो फतै कीधो ॥ १ ॥
धर नयर बधूंसे तेण रिव धूंधऴो,
अमरवत आद सेवरै अणभंग ॥

सिषर असपत तणों उवर छीनो नहीं,
सुणे सुरताण तो अभनमा संग ॥ २॥
सषंड षुरसाण लाहोर पड़ संक सह,
महा मेछां तणों माण मलियो ॥
आपरी धरा उगराह कूंमर अभँग,
वाय नीसाण दिस घरां वलियो ॥ ३ ॥

[गांधण्यां जातिके चारण भल्लाजी कृत]

[नोट—यह गीत महाराणा कर्णसिंहजीके कुंवरपदेके समयका है, जिस समय वादशाही सेनासे युद्ध करके महाराणा अमरसिंहजीने मालवा खोसा था, उस समय कर्णसिंहजीने वड़ी वीरतासे युद्ध किया था उसी समयका वर्णन इस गीतमे है।]

टीका—सेखूका उदर सीधा सुनकर वादशाहकी भूमिको पलटते समय हे वीर कर्णसिंह ! जान वनाकर व्याहनेको जाते हुए तैंने मालवा विजय कर लिया ॥ १ ॥ हे अमरसिंह जीके पुत्र ! तुमने भूमि और नगरोंका नाश कर डाला जिससे सूर्य धुंधला होगया अतः हे राणाके पुत्र ! तुम्हारा मोड़ (मुकुट) अभंग है, हे दूसरे संग्रामसिंहरूपी महाराणाके पुत्र ! तुमने मालवा क्या छीना है मानो १ वादशाहका २ उदर छीन लिया ॥ २ ॥ हे कुंवर कर्णसिंह ! ३ देश सहित खुरासान और लाहोरमें भय घुस गया और म्लेच्छोंका दर्प जाता रहा, इस प्रकार अपनी पृथ्वीका उद्धार करके वह कुमार ध्वजा उड़ाकर अपने घर पीछा आया ॥ ३ ॥

महाराणा श्रीजगतसिंहजी (बडे)

ये महाराणा वि. सं. १६८४ मे मेवाड़की गद्दी विराजे । इनके समयमे भी दिल्ली आदिके साथ कोई युद्ध नहीं हुआ और इनका राज्यसमय भी बहुत शान्तिसे बीता, दिल्लीके बादशाह शाहजहांने 'जो कुछ समय तक शाहजादेकी हालतमे उदयपुरमे शरण रहा था सुना जाता है कि उसका बदला देनेके लिये महाराणाको कईबार स्नेहसहित दिल्ली बुलाया परन्तु उक्त महाराणाने अपने पितामह महाराणा अमरसिंहजीकी प्रतिज्ञा बनी रखनेकी इच्छासे दिल्ली जानेसे इनकार किया । ये महाराणा बहुत बड़े दानी थे जिनने चारणोंको ८८ ग्राम, सात सो हाथी और छप्पन हजार घोड़े दिये थे इन महाराणाका देहान्त वि. सं. १७०९ में हुआ था ॥

गीत(१७६)

ग्रहतै सत डोर जगा छत्रियां गुर,
　　बोह मोजां बिध अतुळ बळ ॥
ऊडी जग ऊपर आहाड़ा,
　　कीरत गूडी तणी कळ ॥ १ ॥

कव कव मुष जैकार करंती,
　　इळ हूँता गम अगम अड़े ॥
मेर सिषर ऊपर मेवाड़ा,
　　चंग ज्युहीं गुणबाण चड़े ॥ २ ॥

करन सुजाव बधे तो करगां,
कल़ हूँता गम अगम किया ॥
चाढे धूमंडल़ चीतोड़ा,
धू धारक जिम ब्रहमाधिया ॥ ३ ॥
जस बाषाण राजपँछ बाजे,
अलष भुयण घण सुणे इम ॥
राणा अवर घणा दिन रहसी,
जुग जुग पंगी चंग जिम ॥ ४ ॥

टीका–इस गीतमे कीर्तिको गुड्डी (पतंग) कल्पना करके उसका सुमेरु शिखरपर पहुंचना कहा है, अभिप्राय यह है कि महाराणा जगतसिंहकी कीर्तिस्वर्गतक जापहुंची । हे क्षत्रियोंमे गुरु (श्रेष्ठ) और वहुत दान करनेवाले अतुलवल-शाली महाराणा जगतसिंह ! तेरी कीर्तिरूपी गुड्डीकी कल़ अर्थात् (पतंग) सतरूपी डोरको लेकर अर्थात् सत्त्व अथवा सत्यका आश्रय करके जगत्के ऊपर उडी ॥ १ ॥ और कवि कविके मुखपर जयशब्द करती हुई अर्थात् कवियोंसे प्रशंसा पाती हुई पृथ्वीमे चलकर अकाशतक जा पहुंची । हे मेवाड़ा ! तेरा गुणवती अर्थात् शौर्यादि गुणोंसे युक्त कीर्ति गुणवती अर्थात् डोरसे लगी हुई गुड्डीके सदृश सुमेरुके शिखर पर जा चढी ॥ २ ॥ हे कर्णसिंहके पुत्र ! अथवा कर्णके सदृश दान करनेवाले ! तेरी कीर्तिरूपी कल़ (पतंग) ने अगम्य

स्थानोमें भी गमन किया अर्थात् जहां पहुंचना अत्यन्त कठिन है वहां भी जापहुंची । हे आर्यधर्मके धुरंधर चीतोड़ा 'ब्रह्म-धिया' अर्थात् ब्रह्माकी (धी) पुत्री (सरस्वती) कीर्ति ध्रुवमण्डलपर भी जापहुंची ॥ ३ ॥ हे राणा ! तेरे जसका वरवाण गरुड़ शब्द करता है जिसको अलख भुयण अर्थात् अलख जो परमेश्वर उसके भवनमें अथवा अलख (नहीं प्रत्यक्ष हो) लोकमें दोनो ही प्रकारसे (स्वर्गमें) बहुधा सुणते हैं । हे जगतसिंह ! तेरी कीर्ति चंग (पतंग) की भांति जगत्में बहुत दिनोंतक व्याप्त रहेगी ॥ ४ ॥

गीत(१७७)

अवर देस देसांतणां लार कर एकठा,
रैसिया मूगलां दीध राये ॥
हेक सिर नाविंयो नहीं सांगाहरै,
जगै पतसाहरै द्वार जाये ॥ १ ॥
झाड़ पाहाड़ मेवाड़रा झाटके,
जूझ रूपी हुवो षाग झाले ॥
मुगल्लां न गो दिल्लीस थाणा मिलण,
हींदवाणां तणों छात हाले ॥ २ ॥
राण रजपूत वट तणों छळ राषियो,
साहसूं नांषियो तोड़ सांधो ॥

कमर बँध छोड़कर जोड़ डँडवत करण,
करनरै नामियो नहीं कांधो ॥ ३ ॥
जगतसी अमरसी उदैसी जेहवो,
छातपत केम कुळ राह छाडै ॥
राण सीसोदियो टेक झाले रहै,
अेक पतसाहसूं कंध आडै ॥ ४ ॥

[बारहठ शाखाके चारण गोविन्दजी कृत]

टीका—अन्य राजाओंने देश देशान्तरोका कर इकटा कर के खिजे हुए मुगलोंको देदिया, परन्तु संग्रामसिंहके पोते जगत्सिहने वादशाहके द्वारपर जाकर अपना शिर नही नमाया ॥ १ ॥ मेवाड़के पहाड़ो पर कई बार वादशाहकी फोजने आक्रमण किया. वहां हिन्दुओंका छत्रपति खड्ग लेकर कालरूप हो रणमे जूझा, परन्तु दिल्लीपति मुगलके दरबारमे मिलनेको नहीं गया ॥ २ ॥ राणाने क्षत्रियोंके मार्गके ? लिये ही धर्म रक्खा और वादशाहसे सन्धि नही की; अन्य नृप कमरसे खड्ग खोलकर हाथ जोड़ कर सलाम करते है, परन्तु कर्णसिहके पुत्रने कन्ध नही नमाया ॥ ३ ॥ यह राणा जगत्सिह उदयसिह व अमरसिहके सदृश है अतः अपना कुलधर्म कैसे छोडेः हिन्दूपति शीसोदिया राणा जगत्सिह अपनी टेक नही छोड़ता सदा वादशाहके साथ अनम्र-भाव रखता है ॥ ४ ॥

दोहा (१७८)

सिंधुर दीधा सातसो, हैंवर छपन हजार ॥
चोरासी सांसण दिया, जगपत जग दातार ॥१॥

[नोट–महाराणा जगत्सिंहजीने स्वर्णके कई तुलादान किये और अपनी उमरमें इनने चारणोंको ८४ ग्राम, सातसौ हाथी और छप्पन हजार घोड़े दिये इस विषयमें निम्नोक्त दोहा प्रसिद्ध है, और ब्राह्मणोंको दान दिया जिसकी संख्या एक श्लोकमें है ॥]

टीका–जगतमें दातार महाराणा जगतसिंहने सातसो सिन्धुर (हाथी) दिये और छप्पन हजार घोड़े प्रदान किये. और चौरासी पट्टे भूमिदानके कर दिये ॥ १ ॥

गीत (१७९)

घांसां[1] हर नरां पाषरां गरहर,
वसू हुवै नच बळावेळा[2] ॥
असैपत[3] तणो चीत आहाड़ा,
तुळा चढंतां हुवे तुळा ॥ १ ॥
जगपुड़ जगा पाषरां जंगम,
रमहैर[4] माथै घात रहै ॥
रुकमां जोष जोषियां राणा,
पड़िया जोषै दिली पहै ॥ २ ॥

महाराणा श्रीजगत्‌सिंहजीने 'मूंदाड़' के ठाकुर चारण कविवर करणीदानजीका स्वयं सन्मुख पधार कर स्वागत कियाथा जिसका यह निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है।

दोहा।

करनारो जगपत कियो, कीरत काज कुरब्ब।
मन जिण धोखो ले मुआ, साह दिलीस सरब्ब॥

टी०-महाराणा जगत्‌सिंहने कीर्तिके लिये करणीदानका कुरब अर्थात् सन्मुख आकर विशेषरूपसे वह सत्कार किया कि जिसका दिल्लीके सब बादशाह धोखा लेकरही मरगये।

माण थाण परसण विय मोकल,
घसंण फोज पड़ घण घणी ॥
घणी चत्रंग बैसतां धारणँ,
धारणं चूको दिली धणी ॥ ३ ॥
कलमांधर गाहै करनावत,
चायंगुर कनक तुला चड़ियो ॥
भलदाता चेलो तो भारी,
असपत चेलो ऊपाड़ियो ॥ ४ ॥

[नोट–इन महाराणाने स्वर्णके कई तुलादान किये हैं जिनकी यादगारमे उदयपुरमे राजमहलोमें वडी पोल और त्रिपोलियाके वीचकी पूर्वकी दीवार पर पत्थरके कई तोरण वने हैं जो एक एक तुलादान पर एक एक तोरण वनाया गया था]

टीका–१ सेनामें मनुष्यों और पाखरोंका शब्द होकर पृथ्वीपर २ चारोओर नाच होरहा है, हे अहाड़के पति महाराणा! आपके तुला वैठनेके समय ३ वादशाहका चित्त हलका होगया ॥ १ ॥ हे जगतसिंह! तेरे घोड़ोंकी पाखरोंसे पृथ्वीपर ४ शत्रुओंके सिरपर वात रहती है हे महाराणा! तेरे स्वर्ण आदिके आभूषणोंसे तुलते समय दिल्लीके पतिको आतंक (भय) पड़गया ॥ २ ॥ दूसरे मोकल महाराणा! तेरे वड़े मान और वड़े स्थानके कारण इतनी वडी वडी सेनाएं चलती हैं कि ५ मार्ग पड़गये हैं ६ हे चित्तोड़के पति! तेरे ७

तराजूमें बैठते समय दिल्लीका पति ८ विचार चूक गया है ॥ ३ ॥ हे कर्णसिंहके पुत्र ९ वीर जगत्सिंह ! तेरे मुसलमानोंकी पृथ्वी दबाकर सोनेकी तुला चढनेसे हे महादानी ! तेरा १० पलड़ा तो भारी होगया और बादशाहका पलड़ा हलका होनेसे ऊंचा होगया ॥ ४ ॥

महाराणा श्रीराजसिंहजी (बड़े)

महाराणा राजसिंहजी वि० सं १७०९ में गद्दी विराजे । ये महाराणा असाधारण वीर और प्रतापी हुए हैं । अथवा यों कहना चाहिये कि दूसरे महाराणा प्रतापसिंहजी ही थे। बादशाह औरंगजेबके क्रूर और निर्दयी राज्यसमयमें यदि हिन्दुओंके धर्मका रक्षक कोई हुवा है तो केवल महाराणा राजसिंहजी ही थे। ये वीरपुंगव हिन्दूधर्मकी रक्षाके लिये अपना प्राण सदा हथेलीमें ही लिये रहते थे। सुना जाता है जिस समय औरंगजेब हिन्दूधर्मको संसारमेंसे नष्ट कर देनेके लिये निरन्तर चेष्टा कर रहा था, उस समय महाराणा राजसिंहजीने ही काजियोंकी डाढियां मुंडवा कर उनको जबरदस्ती पुराण पढाये थे। इन महाराणाका औरंगजेबके साथ द्वेष तो पहिले ही चला आता था परन्तु अन्तमें कई कारण ऐसे होगये कि जिनसे औरंगजेबको बहुत बडी फौज लेकर उदयपुर पर चढ आना पड़ा। इन कारणोंमेंसे एक कारण उस पत्रका भी था जो महाराणाने जिजिया नामक कर लगानेके समय बहुत कठोर विलक्षण शब्दोंमें बादशाहको

लिखा था, जब औरंगजेब उदयपुर पर चढ आया तो उस समय उक्त महाराणाजीने उदयपुरमें घिर कर लड़ना उचित न समझा अतः उदयपुरको खाली करके पश्चिमी पर्वतोंमें चलेगये और वहांपर कई वार वादशाही सेनाको पराजित करके अपनी वीरताका परिचय दिया । और अन्तमें हलदी घाटीके स्थानपर स्वयं औरंगजेवसे वहुत बडी लड़ाई लड़नेका निश्चय करके "ओडां" नामक ग्राममें मुकाम किया और दूसरे दिन वादशाही सेना पर हमला करनेको सवार होना चाहते थे पर कुछ कायर और हरामखोर नीच सेवकोंने अपने मरनेके भयसे भोजनमें विष मिला दिया जिससे वि० सं० १३३७ में उक्त महाराणाका देहान्त होगया । इन महाराणाके कृपापात्र दधिवाड़िया शाखाके चारण आसकरनजी थे जिनको ये महाराणा भाई कहा करते थे ये भी इसी विषसे मारे गये । इन महाराणाने वि० सं० १७१८ मे 'राज समुद्र' नामका एक वहुत वडा तालाव वनवाना प्रारंभ किया जो वि० सं० १७३२ में संपूर्ण हुआ इस तालावके वनवानेमें अनुमान ४० लाख रुपये और इसकी प्रतिष्ठाके समय उत्सव और दान पुण्यमे अनुमान ६५ लाख रुपये व्यय हुए थे, यह तालाव उदय पुरसे पचीस मीलकी दूरी पर है ॥

गीत (१८०)

परम अंस राजेस धन वंस हींदूपती,
लियो विसतारसो तोम हीलोल ॥

जितूं करवा तणो सोच न कियो जितो,
इन्द्र भरवा तणों कियो आलोच ॥ १ ॥

जगातण राजसामुद्र जग जाणियो,
वयण वाषाणियो येह वारूं ॥
करनहर तमासै हेल़ माटै कियो,
सुरांपत वि मासै वेल़ सारूं ॥ २ ॥

वरुण येतो कठा आणसूं विचारै,
चवै इम तरणसूं मूंह चड़ियो ॥
करण दरियावरी रीत लष कैलपुर,
पुरंदर भरणरो चीत पड़ियो ॥ ३ ॥

राण महराण अेहो कियो राजसी,
तेण जल़ न्हाण दुनियाण तरियो ॥
नरांरै पती मोंटो इसो निबँधियो,
भुयण—पत सुरांरै नीठ भरियो ॥ ४ ॥

टीका—हे परमेश्वरके अंश हिन्दूपति महाराणा राजसिंह ! हे श्रेष्ठ वंशवाले ! तैंने 'राजसमुद्र' तालाव वनवाकर विस्तारका भी अन्त लेलिया, तैंनें उक्त तालाव वनवानेका विचार इतना नहीं किया जितना इन्द्रने इसे भरनेका सोच किया ॥ १ ॥ महाराणा जगत्सिंहके पुत्रके 'राजसमुद्र' को जब जगतने जाना तो प्रशंसाके यह वचन कहे कि महाराणा कर्णसिंहके

पोतेंने जो तालाव खेलमात्रमें वनवाया है उसको इन्द्र दो मासमें क्योंकर भरेगा ॥ २ ॥ कैलपुरा (महाराणा) की तालाव वनवानेकी रीतिको देखकर इन्द्रने भरनेकी चिन्तामें पड़ कर सूर्यसे कहा कि अव इतना जल कहांसे लाऊंगा, इस तरहं इन्द्रको भरनेका सोच पड़ गया ॥ ३ ॥ हे राजा राजसिंह ! तैंनें ऐसा समुद्र वनाया कि जिसके जलमें दुनियॉ स्नान कर २ के तिर गई । मनुष्योंके पति महाराणाने ऐसा वडा समुद्र वनाया कि जिसको देवताओंके पति इन्द्रने कठिनाईसे भरा ॥ ४ ॥

गीत (१८१)

रचतां इसो राजसर राणा,
लेषो जगरो कवण लहै ॥
अस सूरज वहतो आधंतर,
वेलां पग मांडतो वहै ॥ १ ॥
लागै आभ लोड़ती लहरां,
ऊमडतै दरियाव उतंग ॥
सूरजतणों हींदवा सूरज,
पाणीपंथो कियो पमंग ॥ २ ॥
जगपत राण तणां जालाहेल,
जगत कथै जस जुवो जुवो ॥

हैवर दणियर अधर हालतो,

हव सरवर आधार हुवो ॥ ३ ॥

अेको समँद इसो ओल्हारियो,

सात समँद जण हुवा समास ॥

देसी तो आसीस घणा दिन,

सूरज देव तणों सपतास ॥ ४ ॥

टीका—हे महाराणा ! तुमने 'राजसमुद्र' ऐसा वडा वनाया है कि जिसमें जलका प्रमाण कौन लेसकता है सूर्यका अश्व जो पहिले आकाशमें चलता था सो अव तरंगो पर पैर रखनेवाला होगया ॥ १ ॥ इस उमंडते हुए जलाशयकी उत्तुंग लहरैं आकाशको १ चाटती हैं, जिनमें हे हिन्दुओंके सूर्य ! महाराणा ! सूर्यके अश्वको पानीपंथा (पानीपर चलनेवाला) वना दिया ॥ २ ॥ हे २ सूर्यरूपी महाराणा ! हे जगत्सिंहके पुत्र ! जगत्मे तेरा यश जुदा जुदा कहते हैं कि सूर्यका ३ घोड़ा पहिले विना आधार चलता था सो अव यह तेरा सरोवर उसके आधार होगया है ॥ ३ ॥ तैनें एकही समुद्र ऐसा ४ रचा है कि जिसके सामने सातो समुद्र छोटेसे दीखने लग गये अतः सूर्यदेवका ५ सप्ताश्व घोड़ा तुझे वहुत दिनतक आशीर्वाद देवेगा ॥ ४ ॥

गीत (१८२)

विध चूका वैद न जाणै वेदन,
औषध लहै न पीड़ अथाह ॥
रात दिवस षटकै उर राजो,
साजो तेण नहीं पतसाह ॥ १ ॥

षैगां चढ चोगान न षेल्है,
वेलै पड़ियो राज वियोग ॥
आंगमणी सीसोद न आवै,
रोद हिये ताइ लागो रोग ॥ २ ॥

मालपुरा सरषा गढ मारे,
राणें पर हंस दीध रिण ॥
भोग सँजोग नहीं रस भीनो,
ओरँग छीनो रोग इण ॥ ३ ॥

धूणैं सीस न धूणैं धजवड़,
मारै रीस सहै मन मांय ॥
जगातणैं असमाध जगावी,
जवन तणां घट हूंत न जाय ॥ ४ ॥

टीका–उपचार भूलेहुए वैद्य वेदना नहीं जानकर वृथा इलाज करते हैं क्यौंकि वादशाहके कलेजेको राणा राजसिंहने रात दिन पीड़ित कर रक्खा है अतः इस रोगपर हकीमोंके नुसखे नही चलते ॥ १ ॥ घोड़ोंपर सवारी करके वादशाह चौगानमें नहीं आता और राणाके आतापसे राज्यका वियोग होना सोचकर बरबरता है । सीसोदिया कब्जेमें नही आता इसी विमारीका दुःख मुसलमान शत्रुके शरीरमें छा रहा है ॥ २ ॥ मालपुरा जैसे गढोंको विगाड़ कर राणानें दिल्लीकी भूमिको अपने हाथमें कर ली, इस व्यथासे ही सर्व सुखोके संयोगको भोगता हुआ भी 'ओरंगजेब' क्षीण होता जाता है ॥ ३ ॥ तरवार घुमानेका जोश नहीं रहा अतः केवल मस्तक घुमाता है, और अपने अहङ्कारकी खीजको मनही मनमें मारता है । राणा जगतसिंहजीके पुत्रने ऐसा रोग लगाया है कि, जो यवनके शरीरसे नही जावेगा ॥ ४ ॥

गीत (१८३)

दिली ऊपरा राजसी राण चढियो ज दन,
नयर धक मालपुर लंक नांई ॥
धुवांसूं हुवो इंदलोक सह धूंधळो,
तप गयो ठेठ अहराव तांई ॥ १ ॥
सुतन जगतेस दळ कीध आरँभ इसा,

असुरचा प्राजलै सहर अघला ॥
पुरंदर मंदरां बीच काजल पडै,
सहँसफण तणा सिर जलै सघला ॥२॥
हींदवां छात अषियात बातां हुई,
सुज हुवे जैण साषी अरक सोम ॥
धारधर नयण अकुलावियो धुवांसूं,
धराधर कमल अकुलावियो धोम ॥३॥
आकुलत व्याकुलत चलत नह आंघणैं,
पीव किण भांत आराम पामै ॥
सुकरदे सकरचा नैण मूंदै सची,
नागणी नाग सिर घड़ा नामै ॥ ४ ॥

टीका—जिस समय महाराणा राजसिंहने दिल्लीके देशपर चढाई की तो मालपुरा नगर लंकाकी भांति जल उठा। धुआंसे सब इन्द्रलोक धुंधला होगया और पाताल देश शेष नागतक तप गया ॥ १ ॥ जगतसिंहके पुत्रने अपनी सेनाका ऐसा आरंभ किया कि जिससे यवन बादशाहके दूरवाले देश भी जलने लग गये। इन्द्रके महलोंमें कज्जल जम गया और शेषके सब फण जलने लग गये ॥ २ ॥ हिन्दुओंके छत्रपतिकी ये बातें प्रसिद्ध होगई और सूर्य चंद्रमाने भी इसकी साक्षी दी कि धाराधर (इन्द्र) के नयन तो धुआंसे

घबरा उठे और धराधर (शेष) के मस्तक तापसे जल उठे ॥ ३ ॥ इस लिये आकुल व्याकुल होकर अंगनमें फिर नहीं सकते, सो दोनोकी स्त्रियां विचार करनेलगीं कि, पतिको आराम क्यों कर मिलै अतः शची तो अपने हाथोंसे शक्रकी आंखें मूंदने लगी और नागिन शेषनागके सिरोंपर जलके घड़े डालने लगी ॥ ४ ॥

छप्पय (१८४)

मालपुरो बालियो,
उमँग उडियो दावानल़ ॥
पड़े दिली ऊपरा,
थयो जमुना ऊन्हो जल़ ॥
जमना जा गँग मिली,
गंग जा मिली समंदां ॥
आभा भरिया इंद,
साष पूरी रव चंदां ॥
कलमपत माण हीणां किया,
बब्बर अकबर दब्बिया ॥
चीतोड़ नाथ बैकुंठपर,
सुण जगतेस गरब्बिया ॥

टीका—महाराणाने मालपुराको जलाया जिसका अग्नि-कण उड़ कर दिल्लीपर पड़ा जिससे यमुनाका जल उष्ण होगया, यमुना गंगामें जाकर मिली और गंगा जाकर समुद्रमें मिली जहांसे इन्द्रने वद्दल भरे, जिसकी सूर्य और चन्द्रने साक्षी दी, इस तरह यवनपतिको मानहीन किया सो सुनकर वावर और अकवर लज्जित हुए, और चित्तोड़के पति जगत्सिंहको अपने पुत्रका ऐसा वल सुनकर वैकुंठमें घमंड हुआ॥

सौराष्ट्री दोहा (१८५)

मालपुरारो माल, कैलपुरै घर घर कियो।
सवल दिलीरो साल, राणो ऊभो राजसी॥

टीका—१ महाराणाने मालपुराका माल घर घरका करादिया वह दिल्लीका सवल दुश्मन महाराणा राजसिंह खड़ाहै॥

छप्पय (१८६)

अजे सूर झलहलै.
अजे प्राजलै हुतासण॥
अजे गंग पलहलै,
अजे सावत इंद्रासण॥

अजे धरणि ब्रहमंड,
अजे फल़ फूल धरत्ती ॥
अजे नाथ गोरक्ख,
अजे अह मात सकत्ती ॥
आजू हीलोहल़ धू अटल़,
वेद धरम वाणारसी ॥
पतसाह हूंत चीतोड़पत,
राण मिलै किम राजसी ॥

टीका–अद्यावधि सूर्य तेजमय है, अभीतक अग्निमें दाहशक्ति है, अभीतक गंगा वह रही है, इन्द्रका आसन अभी तक ज्यौंका त्यौं है, पृथ्वी और ब्रह्माण्ड अभीतक अपनी हद्द पर हैं, फल फूल अभीतक पृथ्वीपर पूर्वभावसेही वर्तमान हैं, अभीतक गोरखनाथ विद्यमान हैं और योगमाया ने अभी तक अपनी शक्ति धारण कर रक्खी है, समुद्र अभी-तक निज मर्याद पर अटल बना हुआ है और काशी भी यथावत वर्तमान है, फिर चित्तोड़का महाराणा राजसिंह बादशाहसे क्यौं कर मिलेगा ॥

[**नोट**–'वंशभास्कर' के कर्ता महाकवि सूर्यमल्ल लिखते हैं कि उपरोक्त छन्द जिलिया चारणवासके एक कम्मा नामक नाईने महाराणा राजसिंहजीको बादशाहसे मिलनेके लिये

महाराणा यशप्रकाशके छपनेके अनन्तर कमाजीनामक नाईका कहा हुआ एक गीत प्राप्त हुआ वह यह है–

गीत।

धरा वेध षत्र षेद चत्रकोटगढ ढेलड़ी,
पूरबा नषत्र सुबषत प्रमाणो।
साह अवरंग अवतार सिसपालरो,
राजसी किसन अवतार राणो॥ १॥

मांडियो ज्याग कमधां घरे माढहो,
लिषत वर सुवर ईसवर लिषायो।
कथन सुण द्वारकाहूंत आयो किसन,
उदैपुरहूंत इम राण आयो॥ २॥

घुरत सद नगारां सझे हिक साथ घण,
सेहरो वांधि वे वर सनेही।
चाव करि कुनणपुर अेम चँवरी चढे,
जगारो किसनगढ जोध जेही॥ ३॥

अेक अधकार हींदू तुरक ईपतां,
जकी तो वात संसार जाणी।

किसन धरि रुकमणी ले गयो कँवारी,
असररै कलोधर पराणि आणी ॥ ४ ॥

धरा धक धूण गढ कोट चाढे धके.
देस रावणतणै दिये खगदाह ।
पैलकै गयो सिसपाल माथो पटकि,
पटकि सिर हमरकै गयो पतसाह ॥५॥

राजरा विरद वाषाण गुण रायवर,
कथन सुणि दिलीचे वीच कहसी ।
राजसी राण हिंदँवाण ध्रम राषतां,
राण बाषाण जुग च्यार रहसी ॥ ६ ॥

[नोट—किशनगढकी किसी राजकुमारीका विवाह वहांके महाराजके विचारसे बादशाह औरंगजेबके साथ स्थिर हो चुकाथा उस समय राजकन्याने यवनके साथ अपना पाणिग्रहण होना नितान्त अनुचित जानकर गुप्तरूपसे महाराणा श्रीराज-सिंहजीके पास निजको व्याह लेनेका संदेशा भेजा जिसपर महाराणा साहब किशनगढ आ राज-कन्याको विवाह कर लेगये उसही वृत्तान्तका यह गीत है ।]

टीका—पूर्वानक्षत्रयुक्त अच्छे समयपर धराका वेध करने तथा क्षत्रियोंको खेद पहुंचानेके लिये चित्तौड़गढ़ और दिल्लीसे दो वर आये जिनमें बादशाह औरंगजेब तो शिशुपालका अवतार है और महाराणा राजसिंह कृष्णका अवतार है ॥ १ ॥ आज राठौडोंके घर माढ़हा बनाहै, यज्ञ मंडा है परन्तु ईश्वरने राजकुमारीके भाग्यमें उत्तम वर लिखाहै इस लिये जैसे रुक्मिणीका संदेश सुनकर द्वारकासे कृष्ण आये ऐसेही उदयपुरसे महाराणा राजसिंह आया ॥ २ ॥ नगारोंका नाद हो रहा है सेहरा बांधकर दो वर एक साथ तैयार हुए और कुनणपुरकी भांति किशनगढमें महाराणा जगत्सिंहका पुत्र और बादशाह उत्साहपूर्वक चंवरी (विवाह मण्डप) पर चढे ॥३॥ हिन्दू और मुसलमानोंका समान अधिकार देखते हुए सब संसार इस बातको जान गया कि कृष्ण तो रुक्मिणीको कुमारी अर्थात् अविवाहिताको ही हरण कर लेगये परन्तु महाराणा अमरसिंहजीकी कलाको धारण करनेवाला महाराणा राजसिंह विवाह करके राजपुत्रीको लाया ॥ ४ ॥ सन्मुख आयेहुए बादशाही गढ तथा कोटोंसहित पृथ्वीको कम्पायमान करदी और रावणरूपी बादशाहके दलको खड्गरूपी अग्निमें दग्ध करदिया। जिस प्रकार पहले शिशुपाल माथा पटककर चला गया वैसेही इस समय अनेक प्रकारसे हतोत्साह होकर शिर धुणता हुआ बादशाह भी चला गया ॥५॥

राजसिंहके विरुद (स्तुति) व गुणोका वर्णन तथा बादशाहका वृत्तान्त सुनकर लोग दिल्लीके बीचमें कहेंगे कि हे राणा राजसिंह हिन्दुओंके धर्मकी रक्षा करनेपर चारों युगोंमें राणाओंका यश स्थायी रहेगा ॥ ६ ॥

दिल्ली जाते समय मार्गमें सुनाया था, सो यह छन्द सुनतेही वे वापस उदयपुर लौट आये इससे यह नहीं समझना चाहिये कि महाराणा राजसिंहजी बादशाहसे मिलनेको दिल्ली जाते थे क्योंकि महाराणा राजसिंहजीने कभी ऐसा इरादा किया ही नहीं यह बात इतिहासोंसे सिद्ध है परन्तु जैसे उनकी प्रशंसामें और लोग काव्य रचा करते थे वैसे ही इस नाईने भी यह छप्पय उक्त महाराणाके लिये बनाकर उनको सुनाया यह नाई जिलिया चारणवासका रहनेवाला था कि जो मारवाड़में कुचामणसे तीन कोश उत्तरमें 'रतनू' शाखाके चारणोंका गाम है ॥

दोहा (१८७)

ओड़ा रतन संहारिया, राजड़ आसकरन्न ॥
वो हिंदवाणी बादसा, वो बादसा वरन्न ॥

[नोट–सुना जाता है कि यह दोहा उस समयका है जब कि ओड़ा ग्राममें महाराणा राजसिंह और उनके सच्चे स्नेही 'दधिवाड़िया' शाखाके चारण आसकरनजी खिचड़ीमें विष देकर मारे गये थे]

टीका–'ओड़ा' में दो रत्न मारे गये जिनमें एक तो राणा राजसिंह थे और दूसरा आसकरन था जिनमें राजसिंह तो हिन्दूपति बादशाह था और आसकरन चारणवर्णका बादशाह था ॥

टाडराजस्थानसे उद्धृत ।

मजमून खत महाराणा राजसिंह बनाव साहब शाहनशाह औरंगजेब आलमगीर गाजी–

वोद हमदे एजिद जुलजलाल और शुकरिया करम व फज्ल हुजूरे अनवरके×वाजे हो कि अगरचे खैर तलब खिदमत हुजूरे आलासे अलाहिदा होगया है । मगर इताअत और खैरख्वाहीके हर एक लाजमी खिदमतके अंजामदेहीमें हमातन सरगरम है। मेरी दिली खुवाहिश और शेवानारोजी× कोशिस इसमें है के शाहान व उमराव मिरजायान व राजगान मुमालिक हिन्दोस्तान और फरमांरवायान ईरान व तूरान व रूम व श्याम व वाशंदगाने हफ्त अकलीम× और सैइयाहान व हर बवरकी× आफियत व वहवूदीमें तरक्की हो. चुनाचे मेरा यह शोक मशहूर व मारूफ है कि हुजूरके दामा दिलको भी उसमे मुकामें ईसतवाह नहीं होसक्ता इस वास्ते अपने रूसूख खिदमाते साबिका और हुजूरके ईलतफात पर ऐतवार करके मैं हुजूरसे ऐसे मामले पर मुतवज्जह

(१) तारीफ खुदा वडा जो बुजुर्ग है और सुकरिया वादशाह जो वखाशिश मेहरवानी, करनेवाला× (२) रातदिनकी कोशिस× (३) साती विलायत×(४)सफर करनेवाले मुल्क दर मुल्क फिरने वाले दरया और खुसकीके×(५) कोई शक व सुवहा (६) रसाई (७) मेहरबानी ।

होनेकी इल्तजा करता हूं जिसमें जाते खास व अवामुन्न नासके फवाइद मुजमिर हैं×--

मुझको दरयाफ्त हुआ है के इस खैरख्वाहके खिलाफ जो तदबीरें हुई हैं उनकी तामील व अंजामदेहीमें जर कसीर खर्च हुआ है । और खजाना आमिरेशाहीमें जो कमी आयद हुई उसके रफा करनेके वास्ते हुजूरने खिराज वसूल करनेका हुकुम दिया है। वाजेह राये आलिये हुजूर हो कि आपके अजीमुश्शान बुजुर्ग मोहम्मद जलालुद्दीन अकबर [३]खुलद अल्लाह मुलकहूने× अरसे ५२ बावन वर्ष तक कारोबार सलतनतको बडे इसतकलाल और इन्साफसे अंजाम दिया था, और हर फिरका रिआयाके आराम व आसाइशमे कोशिस की थी, खुवाह कोई ईसाई हो या मूसाई या दाऊदी या मोहम्मदी या ब्राह्मण हो या उन दहरियोंके फिरकेसे हो जो दवामियत मादेसे मुनकिर हैं× या उससे जो वजूदे आलमको मुनहसर बेइत्तफाक समझते हैं, उनकी सब पर यकसां तवज्जह व मेहरबानी थी कि इस बिला इमतयाज शफावतके शुकरिमें उनकी रिआयाने उनको जगतगुरु यानी मुहाफिजनो एवशरके× लकबसे मुमताज किया था।

(१) अर्ज (२) जिसमे आपके और तमाम दुनियाके फायदे शामिल है× (३) हमेशा बादशाही करो× (४) पदार्थोको हमेशा नहीं मानते जगतको अपने आप पैदा होना समझते हैं× (५) हिफाजत करनेवाला बडा समझा गया×।

हजरत मोहम्मद नूरू उद्दीन जहांगीरने कि खुदा उनको भी बहिश्त नसीब करे इसही तरह २२ बाईस वर्ष तक जिल्ले हिफाजत व हिमायतको अपनी रिआया[1] पर मुहीत रखा[1] रफीकोंके[2] साथ हमेशां वफादारी और मुहिमाते सलतनतमें कूवत व जोर आजमाई करके कामयाब हुए। मशहूर शाहे जहांने भी अपने ३२ बत्तीस वर्षके मुतवातिर[3] अहद मैं रहम वा सखावतका उमदा ईजरा और दवामी[4] नेकनामी हांसिल करनेमें कमी न की। आपके बुजुर्गोकी ऐसी पुरखैर व फैयाज आदतें थीं इन फराख और उलू हिम्मतीके उसूल पर अमल करनेसे जिस तरफ उन्होंने अंजीमत[6] की फतह व नुसरत पेशरौं हुई, और इसी जरियेसे उन्होंने अकसर मुमालिक व किलआतको मगलूब व मुतीय[7] किया मगर हुजूरके अहदमें अकसर मुमालिक सलतनतसें जाते रहे हैं और इस वजहसे कि तबाही व मुसीबत बिला मुजाहमत आलमगीर है[8] दिगर मुमालिकका नुकसान और आयद होगा। आपकी

---

(१) अपनी रिआयापर मेहरबानीका साया रक्खा× (२) हमरायोपर निगाह [मेहरबानी]× (३) उमदा जमानेमे× (४) हमेशाकी नेकनामी × (५) उदारचित्तता (६) चढ़ाई की और फतहयाब हुए× (७) ताबे (अधीन) (८) मुसीबत बिना रोक टोक दुनिया भरमे फैल गई (इसके दूसरे मायने) के तबाही व मुसीबत खुद आलमगीरही है×।

रिआया पामाल होगई है और आपकी सलतनतका हर एक मुल्क तबाह व मुफलिस होगया है। वैरानी जीयादह होती जाती है और आफतें बढ़ती जाती हैं। जिस हालतमें खुद वादशाह और शाहजादोंके घरको इफलासने जा घेरा तो अमीरोंका खुदा जाने क्या हाल होगा-सिपाह नालाँहै×[1] ताजिर मुस्तगीस हैं×[2] मुसलमान शाकी हैं, हिन्दू तबाह हैं और कमबख्त मुसीबत जदह लोगोंके गिरोह किनानेश[3] बिनासे मोहताज हैं× दिन भर गम व गजवसे सिर पीटते हैं, जो वादशाह ऐसे आफत जदा लोगोसे खिराजे[4] गरां×वसूल किया चाहै वो अपनी अँजमत[5] व श्यान× को क्यों कर कायम रख सकता है। इस जमानेमें मशरकसे[6] मगरव×तक मशहूर है कि हिन्दोस्तानका वादशाह विचारे हिन्दू मजहवी लोगोंसे तासुव करके ब्राह्मण, सेवड़ा, जोगी वैरागी और संन्यासियोंसे खिराज वसूल किया चाहता है और नशलें तैमूरियांके अजीमुश्शान रुतवेका मतलक लिहाज न करके वेगुनाह वेकस खुदा परस्तोंपर अपनी ताकतका इमातहान करनेपर उतर आया, अगर हुजूरका कुछ भी एतकाद[7] उन किताबोंपर है जिनको मुतवरिक[8] व मजहवी कहते हैं तो वे आपको रहनुमाई

---

(१) फौज रोती है × (२) सोदागर नालशी हैं × (३) एक वक्त रातको भी रोटी नहीं मिलती × (४) भारी महसूल × (५) वडप्पन × (६) उदय अस्त × (७) प्रामाणिक (८) शिक्षा।

करेंगी खुदावन्द ताला रब्बुल आलमीन है न सिरफ रब्बुल मुसलमीन है हिन्दू और मुसलमान एकसां उसकी मख-लूख हैं रंगका फरक उसके हुकमसे है वोही सबको पैदा करता है आपके [1]मोविदोंमें उसीके नामपर अजान दीजाती है और [2]बुतखानोंमें भी जहां घण्टे हिलाये जाते हैं मजमें इबादत वोही हैं । गैर लोगोंके मजहब या रसमियातकी इहानत करना खुदावन्द तालाकी मरजीसे खिलाफ वरजी है क्योंकि अगर हम तस्वीरको मिटावें तो लाजिम है कि मुरिदे इताब मुतसविर हों किसी शाइरने सच कहा है कि खुदावन्द तालाके मुखतलिफ कामोंपर एतराज व नुकता चीनी की [3]मुंवादरत मत करो—अल गरज महसूल जो आप हुनूदसे तलब करते हैं खिलाफे मांदल्रातहै, और उसही कदर खिलाफे मसलहत है, क्योंकि मुल्क उससे मुफलिस होजावेगा अलावा बरी यह फैल जदीद और कवानीने हिन्दोस्तानसे खिलाफ है । अगर आपके जोशे मजहवीने आपको इस इरादे पर कतई आमादाह कर दिया है तो बमुकत जाये इनसाफ लाजिम है कि अव्वल रोमासिंहसे जो हुनूदमें मुकद्दम समझा जाता जाता है मतालिबा किया जावे और बाद अंजां इस खैरतलवको फरमाया जावे क्योंकि

(१) मसजिदोमे (२) मन्दिरोंमें (३) जी चलाना (४) इन्साफ (५) रामसिंहजी हाडा ।

मेरे मुकाबिलेमें आपको कम मुशकिलात वाके होंगी वरना मोरे व मगस×को अजीयत पहुंचाना उलू हिम्मती और दरया दिली×से बईद है—तआज्जुब है कि बुजराय सलतनतने हुजूरको इमान व इज्जतके कवाइदकी हिदायत करनेमें बड़ी गफलतकी है।

ये महाराणा साहब जैसे वीर और नीतिज्ञ थे, वैसे ही गुणग्राही और कवि भी थे। इनकी कविताशक्ति और कविजनप्रियता इस निम्नलिखित छप्पयसे प्रकट होती है, जो कि उनका स्वयं बनाया हुआ है और राजनगरमें राजमहलकी पालपर उनहींके बनाए एक महलके गोखेमें खुदा हुआहै।

छप्पय (१८८)

कहां राम, कहां लषण,
नाम रहिया रामायण।
कहां कृष्ण बलदेव,
प्रगट भागोत पुरायण॥
वालमीक शुक व्यास,
कथा कविता न करंता।
कुण सरूप सेवता ध्यान,
मन कवण धरंता॥

---

(१) चींटी और मक्खी× (२) बड़प्पन व गम्भीरता×।

जग अमर नाम चाहो जिके,
सुणो सजीवण अक्खरां।
राजसी कहै जगराणरो,
पूजो पाँव कवेसरां॥

टी०—राम और लक्ष्मण कहां हैं रामायणमें उनका नाम रह गया है। कृष्ण बलदेव कहां, वे केवल भागवत पुराणमें प्रकट हैं। यदि वालमीकि, शुक और व्यास कथा तथा कविता न करते तो कोन राम कृष्ण आदिके स्वरूपकी सेवा करता और कौन ध्यान धरता। यदि संसारमें अमर नाम चाहते हो तो सजीवन अक्षर सुनो, राणा जगतसिंहका वेटा राजसिंह कहता है कि कवीश्वरोंके पैर पूजो॥

महाराणा श्रीजयसिंहजी। (दूसरे)

महाराणा जयसिंहजी वि० सं १७३७ में गादी विराजे। ये महाराणा अच्छे वीर और शान्तचित्त हुए हैं, इन महाराणासे बादशाह औरंगजेवके साथ सन्धि होगई थी जिसमें चित्तोड़, पुर, मांडल, वदनोर और मांडलगढ ये पांचों परगने महाराणाजीको वापस मिले, इन महाराणाने 'जय समुद्र' नामक एक वहुत बडा तालाव वनवाया जिसे ढेवरकी झील भी कहते हैं। यह तालाव हिन्दुस्थानकी कृत्रिम झीलोंमें सवसे वड़ा माना जाना है। इन महाराणाका देहान्त वि० सं० १७५९ में हुआ था।

गीत (१८९)

ऊठ्यो दिली हूं ओरंगसाह अेक राह तणै अांटै[१]
महाबाह बिहूं राहां मेटबा म्रजाद ॥
धकां धकां चहूं चकां हूचकां षड़ग्ग धारा,
बीर हक्कां हींदवां तुरक्कां भिड़े बाद ॥
अेकंकार करेवानूं दिली भरत्तार आयो,
तुंजीहां अठारटंकी आवछ्यिां तोण ॥
राण सार धार पाण छत्रीकार राषे ध्रम्म,
हींदूकार न दै तेण अेकोकार होण॥२॥
पढावे कुराणां तिकां पढावै काजियां पूजा,
सुराणां पुराणां धेन ब्रहंमाणां सेव ॥
राजा तणो छत्रधारी षागधारी राजहंस,
दाणवांसूं वेधकारी अवत्तारी देव ॥३॥
रुड़ावो नीसाण सदा जीतरा जैसीह राण,
राषियो केवाण पाण ईंदवाण राह ॥
आछा आछा रायजादां साहजादां किया आगैं,
पाछा पाछा पगां होय भाग छूटो पातसाह॥४॥

टी०—हिन्दू और यवनोंका १ एक धर्म करनेके २ अर्थ दिल्लीके महाबाहु औरंगजेब बादशाह हिन्दू और यवनोंके

दोनो धर्मोंकी जुदी जुदी मर्यादाके तोड़नेको इच्छा करके चला. तब चारो ४ ओर ५ युद्ध करनेके अर्थ तरवारें निकली और हिन्दू तथा यवन वीरोंकी वीरहाक बढने लगी ॥ १ ॥ दिल्लीका पति ७ अठारह टांककी ६ कमान हाथमे लेकर दोनो धर्मोको एक करनेको आया तो इधरसे महाराणाने ८ तरवारकी धाराके बलसे क्षत्रियधर्म रखकर हिन्दूधर्मको मुसलमानी धर्ममे शामिल नही होने दिया ॥ २ ॥ जो काजी कुरान पढाते थे उनको महाराणाने देवता, पुराण, धेनु (गौ) और ब्राह्मणोंकी सेवा करना सिखलाया जिससे ऐसा ज्ञात हुआ मानों किसी देवताने दानवरूपी यवनोंका ९ क्षय करनेक हेतु खड्ग और छत्रको धारण करनेवाले राजसिंहके पुत्रके रूपमे जन्म लिया है ॥ ३ ॥ हे महाराणा जयसिंह ! आप सदा विजयके नगारे बजवाइये कि जिननें अपने खड्गबलसे हिन्दू धर्मकी रक्षा की और जिस बादशाहने अच्छे अच्छे राजा और शाहजादोंको आपके सन्मुख युद्धमें आगे किया था वह बादशाह ही पीछे पैर देकर युद्धसे भाग छूटा ॥ ४ ॥

महाराणा श्रीअमरसिंहजी (दूसरे)

महाराणा दूसरे अमरसिंहजी वि. सं. १७५५ मे गद्दी विराजे । इनके राज्यसमयमें औरंगजेबके पुत्र बादशाह बहादुरशाहने आमेर और जोधपुर दोनो खालसा कर लिये थे, तब उक्त दोनो राजा सहायता लेनेको 'उदयपुर' आये । और

इन महाराणाने महाराजा जयसिंहजीको अपनी पोती और अजीतसिंहजीको अपनी बहिन इस शर्तपर व्याह दी कि उदयपुरका भानजा छोटा होने पर भी गद्दीका अधिकारी होगा । इसके बाद दोनोंको सहायता देकर आमेर और जोधपुरसे बादशाही खालसा उठवा दिया । ये महाराणा वि सं १७६७ मे परलोकवासी हुए ।

महाराणा श्रीसंग्रामसिंहजी (दूसरे)

महाराणा संग्रामसिंहजी वि. सं १७६७ मे गद्दी विराजे। ये महाराणा बहुत बुद्धिमान् और दूरदर्शी थे और बहुत न्यायकारी तथा उदारचित्त थे। इनके समयमे दिल्लीकी बादशाहत तो नष्ट होनेपर आगई थी और मरहठोंका उपद्रव प्रारंभ होगया था । परन्तु इनने मरहठोंसे बराबर मुकाबिला किया और उनकी अधीनता स्वीकार करना नही चाहा । इनका देहान्त वि. सं. १७९० मे हुआ ॥

गीत(१९०)

ग्रहां हेक राजा सिधां हेक राजा अगँज,
सिरै नव अग्यारह राज साजा ॥
सूर शिव दोय राजा फवै राण सस,
राण सम तीसरो नको राजा ॥ १ ॥

प्रहारै तिमर विष नजर छाकां पिये,
घूमरां सत्रां पग धजर घावै ॥
दिवाकर अजर सगराम सम सुर दुहूं,
अवर छत्रधर नको नजर आवै ॥ २ ॥
जहरधर सुनर निरजर नगर जोवतां,
वहर तप हेक दिल गहर वीजो ॥
वंवहर सूर गुर अमर तण वेषतां,
तुलै नह बराबर भूप तीजो ॥ ३ ॥
तिहूं लोकां महीं जोड़ सांगा तणी,
हेक रिव दुवो जटधर अरोड़ो ॥
निलज नवरोज मेल्है तिके नारियां,
जिके छत्र धारियां किसो जोड़ो॥ ४ ॥

[कविया शाखाके चारण कविराजा करणीदानजी कृत]

टी०--एक ग्रहोमे राजा है और दूसरा सिद्धोमे राजा है जिनमे एक तो नवोंमें श्रेष्ठ सूर्य है और दूसरा ग्यारहमें श्रेष्ठ शिव है ये दो ही राजा राणाके समान फवते (शोभते) है और तीसरा कोई राजा इनके सदृश नही है ॥ १ ॥ सूर्य तो संसारके अन्धकारको नाश करता है और शिवनें असह्य विष पी लिया है। इसी तरहं महाराणा संग्रामसिंह भी खड्गसे शत्रुओंका नाश करता है अतः अन्य छत्रधारी संग्रामसिंहके

बराबर नहीं दखिते ॥ २ ॥ देवताओंके पुर (स्वर्ग) मे देखनेमे भी तेरे योग्य दो ही दीख पड़ते हैं । उनमे एक तो तपके कारण और दूसरा चित्तकी गंभीरताके कारण प्रसिद्ध है अतः अमरसिंहके पुत्र संग्रामसिंहको देखते तीसरा राजा कोई ऐसा दृष्टि नहीं पड़ता ॥ ३ ॥ तीनोंही लोकोंमे संग्रामसिंहकी बराबरी करनेवाला एक तो सूर्य है और दूसरा जटाधारी महादेव ही है । और जिन निर्लज्ज राजाओंने अपनी राणियोंको नवरोजे भेज दी, उनका सादृश्य इनके साथ क्यों कर होवै अर्थात् वे इनके बराबर नहीं हो सकते ॥ ४ ॥

गीत (१९१)

बैसंतै पाट सँगराम महाबल,
चहुवां कूंटां क्रीत चवी ॥
कुंजर पाय बांधिया केवी,
कुंभाथल चाढिया कवी ॥ १ ॥
मँडतै तिलक राण मेवाड़ा,
सझिया भला मैंगलां साज ॥
बाँधा पीझ रीझ बैठाया,
रिम कदमां होदां कवराज ॥ २ ॥
अमर समो भ्रम जगड़ अमनमा,
वणवै नपत तपन वडवार ॥

विहुंवै थोक हाथियां वणिया,
अर लंगर जसकर असवार ॥ ३ ॥
गुर गहलोत आवतै गादी,
छलियो समँद हींदवां छात ॥
दुरदांतणैं फव्या आदू ये,
पावां प्रसण कलावां पात ॥ ४ ॥
वढियो सदा सिँघासण वणतां,
रोस रीझ सिंधुरां सिरै ॥
पड़िया षल नेसास करै पग,
कव चढिया आसीस करै ॥ ५ ॥

टीका–हे महावल राणा संग्रामसिह ! तैंने पाट बैठतेही चारोंओर जस फैला दिया, शत्रुओंको हाथियोंके पैरोंसे बंधवा दिये और चारण कवियोंको उनके कुंभस्थलों पर आरूढ किये ॥ १ ॥ हे मेवाड़के राणा ! तेरा राजतिलक होते ही तैंने हाथियोंका साज अद्भुत रीतिसे सजाया कि खिज कर शत्रुओंको तो हाथियोंके पैरोंमें बांध दिये और रीझ कर कविराजोंको हौदोंपर बैठादिये ॥ २ ॥ हे महाराणा अमर सिंहजीके सदृश अनम्र भावसे विराजमान महाराणा ! तेरे राजतिलकके मुहूर्तसे शुभ नक्षत्रका और मेवाड़का गौरव वढ गया जिससे दोनो ही थोक हाथियोंमें अच्छे वने अर्थात्

शत्रुगण तो हाथियोंके लंगरसे बंधे और चारण गण हाथि-योंपर सवार हुए ॥ ३ ॥ हे हिन्दुओंके छत्र श्रेष्ठ गुहिलोत ! तेरे गद्दी बैटते ही समुद्र सीमासे उझल गया और राज्य शासनके प्रथम समयमे ही हाथियोमे ये दोनो शोभित हुए अर्थात् शत्रु तो पांवोमे और सुकवि चारण कलावों पर ॥ ४ ॥ सिंहासन बैठते ही महाराणाका रोष और रीझ बढे। शत्रुगण तो हाथियोके पैरोमे बंधे हुए निःश्वास लेने लगे और कविजन हौदो पर चढ कर आशीर्वाद देने लगे ॥ ५ ॥

गीत(१९२)

अजर धोम गोळां गजर सार कैमर उडै,
ऊमडै समर तूटै वळां आव ॥
तठै सगराम असरेस तण ताहरा,
पग हुवै मेर गिर हाथ पँषराव ॥ १ ॥
धरा ठहराण ऊडाण असहां धड़ा,
अभँग ऊडाण अवसाण अगराज ॥
हुवां घमसाण षूमाण थारा हुवै,
रांण पोयण गिरँद पाण पगराज ॥२॥
सुजड़ अधकाव जड़ कुरड़ं परवाह सक,
दूठ ऊमरड़ सत्रां होम देहा ॥

उरड़ घमँचाल़ होतां वणै आपरा,
अनड़ पैराज तस गुरड़ येहा ॥ ३ ॥
नवां वर तजै वर आंट जाणै नगां,
आंट नववंस कर जाण ओल़ै ॥
अछर उलटी मुड़ै मेर भव ईषतां,
भुजँग पटकै जटी तमस भोल़ै ॥ ४ ॥

['कविया' शाखाके चारण कविराजा करणीदानजीकृत]

टी०–हे महाराणा अमरसिंहके वंशवाले संग्रामसिंह ! जब असह्य धुंआं आकाशमें छाजाती है, गोलोंका गजर होता है, तलवार तथा तीर उडने लगते हैं और शत्रुओंके शिर टूटने लगते हैं उस समय हे राणा ! तुम्हारे पैर सुमेरु पर्वतकी भांति आडिग हो जाते हैं और हाथ गरुड़ बन जाते हैं अर्थात् गरुड़के सदृश वेगको धारण करके शत्रुओंपर प्रहार करते है ॥ १ ॥ हे खुम्माणके वंशवाले ! युद्ध होनेपर तेरे पैर सुमेरु पर्वत और हाथ पक्षिराज (गरुड़) रूप होजाते हैं ॥ २ ॥ शत्रुओंकी २ पीठपर बहुत १ भाले लगाकर उनके शरीरोंको होम डाला और वह भयंकर २ युद्ध होते समय आपके चरण तो पर्वत और हाथ गरुड़रूप होजाते हैं ॥ ३ ॥ पर्वतकी आंट धारण करनेवाले तेरे पैरोंको देख कर अप्सराएं नवीन पतियोंको छोडती हैं और तेरे हाथोंके कारण शिव सर्पोंको दूर

करते हैं (इसही अर्थका स्पष्ट करके उत्तरार्द्धमें कहा है) महाराणाके पैरोंको सुमेरुके समान अडिग जानकर अप्सराएं पीछे फिर जाती हैं और हाथोंको तार्क्ष्य (गरुड़) के रूपमें देखकर शिव सर्पोंको छोड़ते हैं कि वह कहीं खा न जाय॥४॥

महाराणा श्रीजगतसिंहजी (दूसरे)

ये महाराणा वि० सं० १७९० मे गद्दी विराजे और जयपुरके महाराजा जयसिंहजीके देहान्त होने बाद महाराज माधवसिंहजीको जयपुरकी गद्दी दिलानेके अर्थ चोसठ लाख रुपये हुलकरको दे करके उसको जयपुरके महाराजा ईश्वरीसिंहजी पर चढालाये। और कई लड़ाइयां करके अपने भानजे माधवसिंहजीको हिस्सा दिवाया। इनका देहान्त वि० सं० १८०८ में हुआ॥

महाराणा श्रीप्रतापसिंहजी (दूसरे)

ये महाराणा वि० सं० १८०८ मे गद्दी विराजे और तीन ही वर्ष राज्य करके वि० सं० १८१० मे परलोक सिधारे॥

महाराणा श्रीराजसिंहजी (दूसरे)

उक्त महाराणा वि० सं० १८१० मे गद्दी विराजे। इनके शासनकालमे मरहटोंने सात चढाइयां की इससे मेवाड़को बहुत नुकसान उठाना पड़ा। इनका देहान्त वि० सं० १८१७ मे हुआ था॥

महाराणा श्रीअरिसिंहजी (तीसरे)

ये महाराणा वि० सं० १८१७ मे गद्दी बैठे इनके समयमें फरेबी राणा रत्नसिंहका फितूर खड़ा होजानेके कारण मेवाड़के अधिकांश उमराव महाराणासे पलट कर सिंधियाको चढालाये जिसका प्रथम (अव्वल) मुकावला उज्जैन में हुआ, जिसमें 'सलूंबर' के वालक रावतजी पहाड़सिंहजी और 'शाहपुरा' के राजा उम्मैदसिंहजी बड़ी वीरतासे लड़ कर काम आये इन सलूंवर रावतजीके लिये ऐसा प्रसिद्ध है कि युद्धमें चलते समय शाहपुराके राजा उम्मेद सिंहजीने इनको रोका कि आप वालक हैं अतः घरपर ही रहें इसपर रावतजीने जवाव दिया कि मैं वालक हूं परन्तु मेरी 'सलूंवर' वालक नहीं है । अन्तमे युद्धमें वडी वहादुरीसे काम आये । जिसके पीछे दूसरा युद्ध सिंधियासे उदयपुरमें हुआ जिसमें फौज खरच देने पर सन्धि होगई, इन महाराणा अड़सी जीको बुंदीके रावराजा अजित सिंहजीने छलघातसे वि० सं० १८२९ में मार डाला ॥

दोहा (१९३)

अड़सीसूं अड़िया जिके, पड़िया करै पुकार ॥
म्हापुरसांरी मूंडक्यां, गिलगी गांव गँगार॥१॥

[नोट—रत्नसिंहजीकी सहायक होकर नागोंकी सेना आई थी जिसे गंगारके मुकाम पर सबसे पहले स्वयं महाराणाने घोड़ा उठाकर काटडाली इस विषयका यह दोहा है]

टी०—जिन महापुरुषों (नागो) ने आरीसिंहजीसे युद्ध किया वे पड़े २ पुकार करने लग गये औा उनके सिर गंगार नामक पुरी खागई (निगलगई) ॥ १ ॥

गीत (१९४) मरसिया

भुजां धारियो न षाग तैं बाकारियो न वाघ भूरो,
करग्गां प्रहारियो दगासूं आणे कूंत ॥
अेका अेक लाषां वातां हारियो धरम्म अजा,
हींदूनाथ मारियो विसास घात हूंत ॥ १ ॥
रूकां घाय जातो तोनें इळारा वदंता राव,
दीठ आय जातो जे नगारो चाड़ देत ॥
तठै भेद लड़स्सी दगारो पाय जातो तो तो,
षाय जातो अड़स्सी जगारो चोड़ै षेत ॥ २ ॥
षेळा चंडी नचातो ओ मचातो सूरमां पागां,
वणा जाडा थंडांनूं रचातो घेर घेर ॥
हाकले राणासूं साम्हैं चाळतो जै पूंदी हाडा,
वूंदी आडावळा सूधी राळतो वषेर ॥ ३ ॥
कपटी भेषरै मतै चोहाण पोमायो काम्नूं,
वणायो इसो ही तंत लेषरै ब्रह्माण ॥

गोपाल ज्यूं अवस्साण देपरै जिहान गायो,
पायो श्री दीवाण अंत लेपरै प्रमाण ॥ ४ ॥

[भाटा शाखाके चारण जीवाजीकृत]

टीका—हे अजितसिंह ! तैंने भुजोंपर खड्ग नहीं उठाया और न राणारूपी सिंहको ललकारा, केवल हाथमें भाला लेकर अपने धर्मको हारकर लापांही बातें अकेले ही हिंदूपतिको विश्वासघात करके धोखेसे मारलिया ॥ १ ॥ यदि तू उसे ललकार तरवारसे मारता तो संसारके लोग तुझे निःसन्देह वीर कहते यदि तू चौड़ेमें नगारा घुराकर दृष्टि आता तो वीर कहलाता, और जो तेरे छलसे लड़नेका भेद उसे मालूम पड़ जाता तो जगतसिंहका पुत्र अरिसिंह तुझे चौड़े खेत खा जाता ॥ २ ॥ यदि तू महाराणाको सामने आकर दकालता तो वह कई शूरोंको प्रसन्न कर देता और युद्धमें कालीको नचाता और बडी बडी सेनाको घेर घेर कर रचाता और हे कायर हाडे ! तेरी बुंदीको 'आडावला' पर्वत सहित बिखेर डालता ॥ ३ ॥ हे चहुवाण ! तैंने कपटी बन कर कौनसी बात पर इतना घमंड किया, यह तो ब्रह्माने अन्तमें ऐसा ही लेख लिखा था सो देख ! संसारने भी यही कहा कि महाराणा अरिसिंहने भी श्रीकृष्णकी तरहं अवसान समय पाया अर्थात् जैसे श्रीकृष्णने व्याधके हाथसे मृत्यु पाई वैसीही महाराणाकी भी मृत्यु हुई ॥ ४ ॥

महाराणा श्रीहमीरसिंहजी (दूसरे)

उक्त महाराणा वहुत छोटी उमरमे वि. सं. १८२९ में गद्दी विराजे। इनके राज्य समयमें मेवाड़की सेनाके सिंधी सिपाहियोंने वहुत उपद्रव मचाया और सरदार भी सव पलट रहे थे अतः सरदारो और सेनाको पलटा देखकर सिंधियोंने मेवाड़को वहुत लूटा इन महाराणाका देहान्त वि. सं. १८३४ में हुआ था।

महाराणा श्रीभीमसिंहजी।

ये महाराणा विक्रमी संवत् १८३४ में गद्दी विराजे। इनके शासनकालमें भी मेवाड़मे सरदारोंका विप्लव बना ही रहा और इधर हुल्कर और सिंधियाने मोका देखकर देशको लूटना प्रारम्भ किया। तव गवर्नमेटने राज्योंको अपनी रक्षामें लेनेके लिये कहला भेजा जिसको महाराणाने स्वीकार कर लिया। इस पर मेवाड़में प्रथम पोलिटिकल अफसर कर्नल जेम्स टाडका शुभागमन हुआ इन्होंने सरदारोंका महाराणासे पीछा मेल कराया। इन महाराणाका देहान्त विक्रमी संवत् १८८५ मे हुआ. ये महाराणा वहुत वडे वदान्य (उदार) थे॥

दोहा (१९५)

राणै भीम न रक्खियो, दत विन दीहाड़ोह।
हय गयंद देतो हथां, मुवो न मेवाड़ोह॥ १॥

टीका—महाराणा भीमसिंहने कोई दिन भी दान विना नही रक्खा अर्थात् प्रतिदिन दान करता रहा । अपने हाथोंसे जो हाथी घोड़े देताथा वह मरा नही है किन्तु अव भी यश-स्वरूपमें प्रकाशमान है ।

महाराणा श्रीजवानसिंहजी ।

महाराणा श्रीभीमसिंहजीके ९५ पुत्र पुत्रियोंमेंसे उनके देहान्त समय केवल जवानसिंहजी ही विद्यमान रहे थे जो वि. सं. १८८५ में गद्दी वैठे, और वि. सं. १८९५ मे इनका देहान्त हुआ ॥

महाराणा श्रीसरदारसिंहजी ।

ये महाराणा वागोरसे आकर वि. सं. १८९५ मे गद्दी वैठे । इनके समयमें गवर्नमेण्टने मेवाड़मे 'भीलकोर' नामक सेना नियत की इनका देहान्त विक्रमी संवत् १८९९ में हुआ था ॥

महाराणा श्रीस्वरूपसिंहजी ।

ये महाराणाभी वागोरसे आकर वि. सं. १८९९ में गादी वैठे। इन्होनें मेवाड़के राज्यमे कुछ कानून वनाये जो अवतक काममें लाये जाते हैं । इन्होंने प्रजाका शासन वहुत उत्तम किया था और मेवाड़ पर जो कर्ज होगया था वह सव उतार कर खजानेमें भी रुपये जमा किये । इनको विक्रमी संवत् १९०७ में पक्षाघात होगया था और इनका देहान्त वि. सं. १९१८ में हुआ था ॥

पुस्तक छप जानेपर महाराणा श्रीजवानसिंहजीके वर्णनका एक गीत मिला (जो उनका स्वर्गवास होनेपर किसी सुकविने कहा था) वह यह है–

गीत।

भूलै नह सहर मुलक नह भूलै,
पँडित न भूलै पाणा।
भड़ कव पासवान किम भूलै,
रूष न भूलै राणा ॥ १ ॥
उदियापुर गोषां अनदाता,
निरव्रतपणो न धारो।
करवा सहल भूप हेकरसां,
पाछा महल पधारो ॥ २ ॥
भाला हथां जोध भीमाणी,
वाल्हा सुरपुरवासी।
पांत विराज विलाला पातां,
प्याला मद कुण पासी ॥ ३ ॥
सत आचार अथग रा सहजां,
पग रा पळां पवाना।

मन मोहण थिर चर षग मृगरा,
जगरा मुकट जवाना ॥ ४ ॥
दीवाळी होळी दसरावै,
गौरि लहूर गवाड़ा ।
असवारी थारी कद आसी,
मिणधारी मेवाड़ा ॥ ५ ॥
षेलण फाग षास षिलवतियां,
सूरां रमण सिकारां ।
अेक बार षडवै कर आजो,
तीजां तणा तिवाँरां ॥ ६ ॥
कर पिँडदान गया सिर कीधो,
सो परलोक सुधारो ।
महाराणा ओछी ऊमरमें,
जीत गयो जमवारो ॥ ७ ॥
वाणारसी असी बरणां बिच,
फजर सिवालय फिरतां ।
वा छिब बळे नजर कद आसी,
कासी दरसण करतां ॥ ८ ॥

चिंतामणरूपी चीतोड़ा,
पारिस कलव्रछ पातां ।
पाछी खबर किणी नह पाई,
जवर पयाणै जातां ॥ ९ ॥
भूरा बाघ किसै मिस भूलां,
आवै निस दिन याद अमाप ।
फूटै हियो आंतरै फिरतां,
बडी सुहम करतां मा बाप ॥ १० ॥

टी०—हे महाराणा ! सब नगर और देश तथा पण्डित लोग तेरे हाथोंको नहीं भूलते, भड़ (योद्धा) कवि और पास रहनेवाले तो किस प्रकार भूलें परन्तु वृक्ष भी तुझे सर्वदा स्मृतिपथसे पृथक् नहीं करते ॥ १ ॥ हे अन्नदाता ! उदयपुरसे सर्वथा निवृत्त मत हो और विनोद करनेके लिये हे राजन् ! एक वार पीछेही महल पधारो ॥ २ ॥ भाला हाथमें रखनेवाले योद्धाओंको भय देनेवाले, स्वर्गवासियोंके वल्लभ, सबमें विराजमान उदार महाराणा ! अब चारणोंको मद्यके प्याले कौन पावेगा ॥ ३ ॥ हे सदाचार और सुशीलके आश्रयदाता, खड्गसे खलोंको नाश करनेवाले और स्थावर जंगम व पशु पक्षियोंके मनको मोहित करनेवाले, जगत्के मुकुट महाराणा जवानसिंह ! तू कैसे भूला जाय ॥ ४ ॥ दीवाली होली और दसरावेको गौरीजनोंसे लहूर ('लहूर' मारवाड़में एक प्रकारके गीतोंकी संज्ञा है) गवानेवाले हे मणिधारी मेवाड़पती

तेरी सवारी कब आवैगी ॥ ५ ॥ निकट रहनेवाले अन्तरङ्ग जनोंसे फाग खेलनेवाले और आखेटमें विनोद करनेवाले महाराणा ! तीजोंके तिवार (उत्सव जो कि श्रावण शुक्ला तृतीयाको होताहै) को एक वार परिकर बनाकर पधारो॥६॥ हे महाराणा ! तैने गयामें अपने हाथसे पिण्डदान करके पर-लोक सुधार लिया और थोडीही अवस्थामें जमवारा (जन्म) जीत लिया अर्थात् परलोक और यह लोक दोनों सुधार कर तैने जीवन सफल कर लिया ॥ ७ ॥ असी और वरणा नदीके बीचमें विराजमान वाणारसी पुरीमें प्रातःकाल शिवमन्दिरोंमें भ्रमण करते २ काशीपुरीमें कभी तेरी वह उत्तम छवि भी दृष्टिमें आवेगी ॥ ८ ॥ चारणोंके लिये चिन्तामणिरूपी और पारस तथा कल्पवृक्षरूपी हे चीतोड़ा तेरे महाप्रस्थानमें जाने पर किसीने भी तेरी पीछी खबर नहीं पाई ॥ ९ ॥ हे बाप ! किस मिससे तुझे भूलें रात दिन तेरी अमाप (अथाह) स्मृति आतीहै । हे मा बाप ! तेरे महायात्राके पथिक होनेपर पीछे फिरतें हमारा हृदय विदीर्ण होता है ॥ १० ॥

गीत (१९६)

करन जेस हेस भूदेव अमरी किया,
चीत रजपूत वट मुठठ चाहे ॥
राण सारूप रहियो जितै राषियो,
मारवो तारवो हात मांहे ॥ १ ॥
भूपती असर रहियो रचे भींतड़ां,
हाथियां दियो दत आप हाथे ॥
तणैं सादल किया राज चत्रगढ जितै,
सीह अजिया पियो नीर साथे ॥ २ ॥
देष फरंगाण हिंदवाण थंभ दियो छो,
कियो छो विधाता ऊंच काजां ॥
थेट इनसाफरी घड़ी सावत थकां,
रंकरी पड़ी आतंक राजां ॥ ३ ॥
जोम रह बोल रहिया जुगां जावतां,
सत्रां अणभावतां दीघ त्रासा ॥
नागद्रह कायरो वचन कहियो नहीं,
समटियो वायरो जितै सासा ॥ ४ ॥

[दधिवाडिया शाखाके चारण कमजी कृत]

टी०—कर्णकी तरह स्वर्ण देकर जिसने ब्राह्मणोंको तृप्त कर दिये, और चित्तमें क्षत्रियत्वका घमंड सदा बनाये रक्खा वह महाराणा स्वरूपसिंह जबतक जीता रहा तबतक उसने मारना और तारना हाथमें ही रक्खा ॥ १ ॥ उस राजाने कई मकानात बनवाये और अपने हाथसे हाथियोंका दान दिया। इस सरदारसिंहके पुत्रने जबतक चित्तोड़के राज्यका शासन किया तबतक सिंह और बकरीको एक घाट पर साथ पानी पिलाया ॥ २ ॥ विधाताने उसको उग्र कार्य करनेको उत्पन्न किया था अतः जबतक उसने न्याय किया तबतक गरीबोंकी आतंक राजाओं पर पड़ती थी ॥ ३ ॥ हे महाराणा! जबतक आप विद्यमान रहे तबतक सदा वीरताके वचन ही बोलते रहे और शत्रुओंको नहीं रुचनेपर भी आपने उनको त्रास ही दिया, और जबतक श्वास चलता रहा तबतक मुंहसे कायर वचन कभी नहीं कहा ॥ ४ ॥

महाराणा श्रीशंभुसिंहजी।

ये महाराणा भी बागोरसे आकर विक्रम संवत् १९१८ मे गद्दी विराजे। और बहुत उत्तमतासे राज्यशासन किया। इनका देहान्त विक्रम संवत् १९३१ मे हुआ ॥

महाराणा श्रीसज्जनसिंहजी।

ये महाराणा 'सोन्याणा' ग्रामसे आकर विक्रमी संवत् १९३१ में गद्दी विराजे। और विक्रम संवत् १९४१ में परलोक सिधारे ॥

गुसांई गणेशपुरीजीके बनाए हुए काव्य।

कवित्त (१९७-१९८)

दैसिक सुदैसिक सुधारै दोऊ लोकनकों,
दोऊ ना सुधारै ताहि दैसिक न मानूं मैं।
अम्मृत वही है जो कि मृतक जिवावै द्रुत,
मृत ना जिवावै ताहि अमृत न मानूं मैं॥
रसायन वो ही जो रसायन जराकों हरै,
जरा ना हरै ताहि रसायन न मानूं मैं।
सज्जनकों सज्जन जो मानै सु ही सज्जन है,
सज्जन न मानै ताहि सज्जन न मानूं मैं॥१॥

टीका-जो विद्वान् पुरुष दैशिक और सुदेशिक दोनो लोकोको सुधारै वह ही दैशिक है, और जो दोनोंही लोक सुधारनेका ध्यान नहीं रखता उसको मैं देशिक नहीं मानता। अमृत उसे ही कहना चाहिये जो द्रुत अर्थात् शीघ्रही मृतक (मरा हुआ) को जिलादेवे, और जिसके सम्बन्ध होनेपर मृतक पुनः जीवित नहीं हो उसको मैं अमृत नहीं जानता। मेरे विचारसे रसायन (चमत्कारी औषध) वह ही है जो रसायन अर्थात् रसोंके विकृत होजानेसे उत्पन्न होनेवाली जरा (शिथिलता) को हटावे, किन्तु जो जराको ही नहीं दूर करसकता उसको रसायन कैसे कहा जाय। ऐसे ही जो

मनुष्य सज्जनको अर्थात् दयादाक्षिण्यादि उत्तम गुणोंके आश्रय पुरुषको सज्जन (भला) ही मानताहै अर्थात् कदाचित् भी श्रेष्ठ पुरुषके सुचरितको कलङ्कित करना नही चाहता किन्तु उसे गुणशाली जान कर प्रेमपूर्वक उसकी प्रशंसा करता है वह ही सच्चा सज्जन है, और जो सज्जनको सज्जन नही मानता प्रत्युत (बल्के) उसके सद्गुणोंको दम्भ (कपट) मोह (अज्ञान) आदि बताकर दूषित करता है उस को मैं सज्जन (सत्-जन) अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष नहीं मानता किन्तु ऐसे कुचाली मनुष्यको मैं अबोध जानताहूं । इसी प्रकार महाराणा सज्जनसिंहको भी जो सज्जन नहीं मानता उसे भी मैं सज्जन नहीं कहता । अभिप्राय यह है कि महाराणा सज्जनसिंह अपने सद्गुणोंके कारण सच मुच सज्जन ही हैं ॥ १ ॥

दोहा ।

दसरथ निस चुकिय दुरद,
उत पुनि लिन्निय आह ।
सज्जन निस कुस लच्छ हनि,
सबतैं लिन्न सराह ॥ २ ॥

[**नोट**—महाराणा सज्जनसिंहजीने रात्रिको एक छोटा निशाना उडाया, उस समय गुसाईंजीने यह दोहा सुनाया था जिसमें दशरथके साथ महाराणाका व्यतिरेक (उत्कर्ष) कहा है]

टी०–राजा दशरथ रात्रिको शब्दवेध करनेके प्रसंगमे दुरद अर्थात् हाथीका निशाना भी चूक गये और उधर सुयोग्य पुत्र श्रवणके अन्धे और अनाथ माता पिताका शाप लिया। परन्तु महाराणा सज्जनसिंहनें निशामे छोटे निशानेको मारकर सबसे प्रशंसा पाई अर्थात् महाराणाका लक्ष्य-वेधका अभ्यास प्रौढ और प्रशंसनीय है ॥ २ ॥

सवैया (१९९)

रावरा दान मुरार भनै जग,
वन्दित है कवि कीरति गाई।
मैं हूं अजाचक भूप जोधानको,
वीनती माफीकी यातैं कराई ॥
सज्जन मो अपराध न लेखिये,
देखिये रावरे वंस वडाई ॥
धर्म निवाहनको हिंदवानको,
रान रहे तनत्रान सदाई ॥

[कविराजा मुरारिदान ' आशिया महामहोपाध्याय रचित]

[नोट–कविराजा मुरारिदानजी प्रथम वार उदयपुर गये तब महाराणा सज्जनसिंहजीने विदाके समय उनको ' लाखपसाव ' देना चाहा उस समय कविराजजीने यह सवैया सुनाकर माफी चाही जिस पर महाराणा साहब उक्त दान देनेसे रुक गये]

टीका–मुरारिदान कहता है कि आपका दान जगत्‌में वन्दना करने योग्य है जिसकी कि कवियोंने कीर्ति गाई है । परन्तु मै जोधपुरके राजाओंका अयाचक (जोधपुरके अतिरिक्त दूसरे राजाओंसे दान न लेनेवाला) हूं इस लिये दान लेनेके लिये मुआफीकी विनती करता है । हे महाराणा सज्जनसिंह! आप मेरे अपराधकी ओर ध्यान न दें किन्तु आपके वंशके गौरवपर विचार करें । हिन्दुओंके धर्मकी रक्षा करनेके लिये महाराणा सदाही तनुत्रान (कवच) रहे हैं अर्थात् अपने शरीरपर आघात सहकर आर्योंके धर्मको रक्खा है ॥

कवित्त–मरसिया (२००)

गुनी गन गुनि गुन गोर गहि बांधै ग्रन्थि,
विरुद विचार वीर ओगुन विसरगो ।
विज्ञनतैं प्रीति कर विज्ञनकी वृत्ति वर,
विज्ञनको दुःख हर भूरि सुख भरगो ॥
धवल धुरीन धीर धीर धुर धार धार,
स्कंधावार भार फतमाल कंध धरगो ।
गुजर करौं हौं जो लौं ऊमर गुजर जैहै,
उजर हो जापै वोह गाहक गुजरगो ॥३॥

[गुसाई गणेशपुरीजीकृत]

टीका–जो वीर विद्वज्जनोंके गुणोंको भले प्रकार जांच

कर गुणोकी गांठ बांध लेता, और विरुद अर्थात् नरेश। विचार कर अपराधोंको भूल जाता था (भाव यह है कि जो सर्वदा गुणग्राही था और दोष पर ध्यान नही देताथा) जो महाराणा विद्वानोंकी श्रेष्ठ वृत्तिमें अर्थात् सर्वदा सदाचरणमें तत्पर रहता था, अत एव विद्वानोंसे प्रीति करता था, क्योंकि 'समान शीलव्यसनेषु सख्यम्' अर्थात् बराबरवालोंमें परस्पर प्रीति होती है। हा! चतुर पुरुषोंके दुःखोंको हरण कर उन्हें यथेष्ट सुख देनेवाला गया। हा! धीर पुरुषोंकी उज्ज्वल धुरको धारण करनेवाला धरा (पृथ्वी) का धुरंधर अर्थात् धीर और वीर महाराणा राज्यशासनके भारको फतहसिंहके कंधेपर धर कर स्वयं स्वर्गको सिधारा। हा!!! मैं योंही (अनास्थासे) गुजर करताहूं जबतक कि उमर गुजर जाय क्योंकि जिस पर सर्व प्रकारसे उज्र था वह गुणग्राहक आज भूमण्डल पर नहीं है॥ १ ॥

बारहठ कृष्णसिंह सोदरचित-

कवित्त मनहर (२०१-२०२ तक)

सज्जन सिधायो स्वर्ग मेदपाट मौली मनि,
छायो अन्धकार छिति कवि कविताईको।
कहै कवि कृष्ण मेरो जीवन आधार हुँतो.
पुण्य पारावार हुँतो भारत भलाईको॥

[illegible] कुवात पारिजातको अपक्क फल,
गिरिगो सो जान्यौ हेतु क्षात्रलघुताईको ॥
करिगो असार जग भरिगो सुयश भूरि,
परिगो शिखर हाहा नीति निपुनाईको॥१॥

टीका—मेवाडका मौलिमणि महाराणा सज्जनसिंह स्वर्गको सिधार गया। आज कवि और कविताईका अन्धकार छागया। कवि कृष्णसिंह कहता है कि महाराणा मेरे जीवनका आधार था अर्थात् सर्वतो भावसे पालन करने वाला स्वामी था। और भारतवर्ष (हिन्दोस्तान) की भलाईका पवित्र समुद्र था। हा! कालरूपी यवनके प्रचण्ड वेगमें आकर कल्पवृक्षका फल अपक्कही गिर गया सो क्षत्रियोंकी लघुताका कारण जाना जाताहै। हा! महाराणा जगत्को असार करगया। अपने व्यापक सुयशसे संसारको पूर्ण कर गया। हा! हा! आज राजनीतिका निपुणताका शिखर टूट पडा॥

करोलीके हेत लरयौ रक्षक हरोली वानि,
राजनको मौलिमनि उत्तम उजारो हो ॥
जामके कुजाम जामनेरतैं निकारि तहां,
शुद्ध क्षत्रि थापनके जापन करारो हो ॥
सबहीकी ढाल शत्रुसाल ह्वै सदैव रह्यो,

ब्रिटिस अनन्य मित्र प्रीति प्रतिपारो हो ॥
सोची नाहिं हाहा विधि सज्जन बुलातें स्वर्ग,
अज्जनकी अज्जताको कौन रखवारो हो ॥२॥

टीका—हा! जो महाराणा करोलीके लिये हरोली बनकर रक्षक हुआ। और जो राजाओंका मौलिमणि व उत्तम प्रकाश करनेवाला था। जिस महाराणाने जामनगरमें यवन राजा होनेके अवसरपर गवर्नमेंटसे वहां क्षत्रिय राजा होनेका अनुरोध किया। और स्वजातिके साथ सहानुभूति प्रकट की और जो सदा ढालरूप होकर सबकी रक्षामें जागरूक था और शत्रुओंके हृदयमे सालता था। उस गुणशाली महाराणा सज्जनसिंहको स्वर्ग बुलाते समय हे विधातः! तैंनें इतना भी विचार नही किया कि अब आर्योंके आर्यधर्मका रक्षक कौन है॥ २॥

महाराजाधिराज हिन्दूपति 'रविकुलकमलदिवाकर'
वर्तमान महाराणा श्री १०८
श्रीफतह सिंहजी वहादुर
जी० सी० एस० आई०।

वर्तमान महाराणा साहब विक्रम सं० १९४१ में मेवाड़के राज्य सिंहासनपर विराजे। ये महाराणा साहब जैसा राज्य शासन कर रहे हैं सो सबपर विदित है।

सवैया (२०३)

छोरि किते पतनी अपनी मन,

रामजनी मुखके अभिलाखे ।

मत्त किते मदिरा मद है,

वस नींद कितेक लखे रित भाखे ॥

धर्मरता जगके करता,

रसना निज भूपनके गुण भाखे ।

सत्य दया समता रु सुशील,

फता नृप ये चहुं आपही राखे ॥ १ ॥

[फतहकरण 'उज्ज्वल' कृत]

टी०—कितने ही राजा लोग अपनी धर्मपत्नियोंको छोड़कर वेश्याओंके मुखकी शोभापर लुभा गये। कितने ही राजा मदिराके मदसे मत्त हुए रहते हैं । और कितनेही निद्राके वश होकर समय विताते हैं यह बात मैं सत्य कहताहूं । हे स्वधर्म परायण महाराणा फतहसिंह ! जगत्के कर्ताने निज रसनासे अर्थात् वेदरूपी वाणीसे राजाओंके जो गुण आज्ञा किये उनमें विशेषकर सत्य, दया, समता (सब पर एकसा भाव रखना) और सुशील इन चारों गुणोंको आपहीने आश्रय दिया है ॥१॥

दोहा (२०४)

घणी रीझ थोड़ो घमँड, चित सुध सरली चाल ।

दीन सहायक काछ दृढ, महाराण फतमाल॥२॥

[फतहकरण 'उज्ज्वल' कृत]

टीका—महाराणा फतहसिंहकी रीझ बहुत है। घमंड थोड़ा है। चित्त शुद्ध है। और व्यवहार सरल है। ये महाराणा दीन दुखियाओंकी सहायना करते हैं। और काछके दृढ अर्थात् जितेन्द्रिय हैं॥ २॥

कवित्त (२०५)

जाहरी करोल करैं अक्क हत्थे बब्बरकी,
ठाहरी सुनेतैं रान थिरता रचै नहीं।
थाहरी घिराय काढ लागनी लगावैं तोक,
खा हरी गुरांट पैंड एकहू खचै नहीं॥
हाहरी अवाज छोड़ आहरी करन लागै,
ताहरी करै तीको कोड उपमा जचै नहीं।
वाहरी गऊके फतहसिंह नृप धारैं जब,
ना हरी करै तो नार नाहरो बचै नहीं॥१॥

[मोडसिंह 'मेयारिया' कृत]

[नोट—इस कवित्तमे वर्तमान महाराणा साहबका सिंहकी शिकार करनेका वर्णन है]

टीका—जब करोल (शिकारी) नोंहत्थे बबरी नाहरकी खबर देते हैं, तो महाराणा सिंहका पता पातेही थोड़ा भी विलंब नहीं करते और थाहरी घिराकर लागनी अर्थात निशाना नहीं चूकनेवाली तोक लगाते हैं जिससे सिंह तत्काल गुरांट

खाकर पड़जाता है। एक पैंड भी नहीं उठा सकता। वह हाहकी आवाज अर्थात् दकाल करना छोड़कर विह्वल हो आह भरने लगता है। इस कर्तव्यकी कोई उपमा नहीं प्रतीत होती। गौके वाहरी अर्थात् गोरक्षाके लिये सन्नद्ध महाराणा फतहसिंह नृप धार उस समय जो हरी अर्थात् विष्णु भगवान भी ना करैं तो नाहैं नहीं वच सकता॥

कवित्त मनोहर (२०६)

मात पितु भाव कारि चारन विचारते न,
जानि पूजनीक हित क्षत्रीहू धरत को।
छूटि जातो नातो वो सनातनको सैजहीमें,
लोक लाज लीह लोप डरतैं डरत को॥
सूकि जातो सिन्धु यह पात पाठशालारूपी-
काव्य खट अंग गंग धारतैं भरत को।
धरतो न पाट फतमाल मेदपाटको तो,
सज्जनकी मनसाकों पूरन करत को॥

[वारठ कृष्णसिंह 'सोदा' कृत]

[नोट—यह कवित्त चारण पाठशालाको दूसरी वार खोलते समय वारहठ कृष्णसिहजीने महाराणा साहवको सुनाया था]

टी०—चारण लोग क्षत्रियोंको माता पिताके भावसे नहीं विचारते और कौन क्षत्रिय इनको पूजनीय जानकर हित करता। वह सनातनका सबन्ध सहजही छूटजाता। और लोकमें लज्जा (मर्यादा) का लोप करनेसे कौन डरता। अर्थात् सबही लाजका लोप कर डालते। यह चारण पाठशाला रूपी सिन्धु भी सूख जाता और काव्य और छै शास्त्र और व्याकरणादि छहों अंगोंको गङ्गाकी धारासे कौन भरता। अहो विद्यानुरागी वीर महाराणा फतहसिंह मेवाड़के पाटपर नहीं विराजते तो महाराणा सज्जनसिंहजीकी मनसाको कौन पूर्ण करता अर्थात् वर्तमान महाराणा साहबने "चारणपाठशाला" को फिरसे खोलकर भूतपूर्व महाराणाके मनोरथको पूर्ण कियाहै॥

कवित्त (२०७)

वीर दृढ निग्रह वदान्य राजनीति विज्ञ,
वंस अध्वगामी सत्यसंध सुद्ध मत्ताको।
'अज्जकुल कमल दिनेश' पद यथायोग्य,
वेद धर्म रच्छक निवाहनीक नत्ताको॥
नित्य जस निगादि अनित्य गनै पुद्गलकों,
सस्त्रविद्या सफल सराहनीय सत्ताको।

सेदपाट भूषन प्रमान्यौ गुनरत्ता पेखि,
जान्यौ हम फत्ता है नमूना रान पत्ताको ॥१॥

[बारहठ बालाबक्स 'पालावत' कृत]

टीका–महाराणा फतहसिंह वीर और दृढ विग्रह (युद्धमें) स्थिर अथवा विग्रह अर्थात् शरीरसे दृढ–बलशाली हैं । वदान्य अर्थात् उदार हैं और राजनीतिमें निपुण हैं । अपनी वंशपरिपाटी पर चलते हैं । प्रतिज्ञाको निबाहते हैं और इनका अन्तः करण निर्मल है । वेदके धर्मकी रक्षा करनेको सन्नद्ध (कटिबद्ध) हैं । और नत्ता अर्थात् संबन्धको निभाने वाले हैं । इन महाराणामें " आर्यकुलकमलदिवाकर " यह विशेषण यथार्थ फबता है । ये महाराणा जमको नित्य (अविनाशी) मानते हैं और पुद्गल अर्थात् शरीरको अनित्य (नाशवान्) जानते हैं । शस्त्रविद्यामें इनकी सत्ता (अभ्यास) सफल है अत एव प्रशंसनीय है । सो मेवाड़के भूषणके असाधारण गुण देखकर हम ऐसे अनुमान करते हैं कि महाराणा फतहसिंह महाराणा श्रीप्रतापसिंहका नमूनाहै अर्थात् उन्हींके सदृश विरुदावली योग्य हैं ॥

दोहा (२०८)

धर्म मतानैं चित धरयौ, गिण प्रभुताने संग ।
अवल पताने ज्यौं अबै, राण फतानै रंग ॥२॥

[बारहठ बालाबक्स 'पालावत' कृत]

टी०—मेवाड़की प्रभुता पाकर महाराणाने धर्मके मतेको (सनातन धर्मके सिद्धान्तको) अंतःकरणसे स्वीकार कियाहै अर्थात् धर्मको अव्याहत रखकर उत्तम प्रणालीसे राज्यशासन कररहे हैं इसलिये पहले जिस प्रकार महाराणा प्रतापसिंहको रंग था वैसे ही अब महाराणा फतहसिंहको रंग है॥

सवैया (२०९)

सस्त्र समस्तमें वाही सजावट,
मैनत है मजबूत मताको।
टेढी जगां चढिवेमें टटोर लो,
थाकै नहीं फिरता फिरताको॥
सिकारके नाम पहाड़ मझार,
निहारै सुटोर सो नेह नताको।
जथारथ जान जपै जुगता यह,
रान फता अवतार पताको॥

[चारण युक्तिदान 'देथा' कृत]

टीका—शस्त्र धारण करनेका वह ही प्रकार है अतुल परिश्रमी है और अपने प्रशंसनीय सिद्धान्तपर दृढ है। और टेढी जगह अर्थात् पर्वतोंके विषम स्थानोंमें भ्रमण करनेकी ओर देखो तो फिरते २ कभी थकते ही नहीं। सिकारका नाम सुनते ही पहाड़में जापहुंचते हैं। उत्तम पुरुषोंसे स्नेह करते हैं और

मेदपाट भूषन प्रमान्यौ गुनरत्ता पेखि,
जान्यौ हम फत्ता है नमूना रान पत्ताको ॥१॥

[बारहठ बालाबक्स 'पालावत' कृत]

टीका–महाराणा फतहसिंह वीर और दृढ विग्रह (युद्धमें) स्थिर अथवा विग्रह अर्थात् शरीरसे दृढ–बलशाली हैं। वदान्य अर्थात् उदार हैं और राजनीतिमें निपुण हैं। अपनी वंशपरिपाटी पर चलते हैं। प्रतिज्ञाको निवाहते हैं और इनका अन्तःकरण निर्मल है। वेदके धर्मकी रक्षा करनेको सन्नद्ध (कटिबद्ध) हैं। और नत्ता अर्थात् संबन्धको निभाने वाले हैं। इन महाराणामें " आर्यकुलकमलदिवाकर " यह विशेषण यथार्थ फबता है। ये महाराणा जसको नित्य (अविनाशी) मानते हैं और पुद्गल अर्थात् शरीरको अनित्य (नाशवान्) जानते हैं। शस्त्रविद्यामें इनकी सत्ता (अभ्यास) सफल है अत एव प्रशंसनीय है। सो मेवाड़के भूषणके असाधारण गुण देखकर हम ऐसे अनुमान करते हैं कि महाराणा फतहसिंह महाराणा श्रीप्रतापसिंहका नमूनाहै अर्थात् उन्हींके सदृश विरुदावली योग्य हैं॥

दोहा (२०८)

धर्म मतानैं चित धर्‌यौ, गिण प्रभुताने संग।
अवल पतानै ज्यौं अबै, राण फतानै रंग ॥२॥

[बारहठ बालाबक्स 'पालावत' कृत]

टी०-मेवाड़की प्रभुता पाकर महाराणाने धर्मके मतेको (सनातन धर्मके सिद्धान्तको) अंतः करणसे स्वीकार कियाहै अर्थात् धर्मको अव्याहत रखकर उत्तम प्रणालीसे राज्यशानस कररहे हैं इसलिये पहले जिस प्रकार महाराणा प्रतापसिंहको रंग था वैसे ही अब महाराणा फतहसिंहको रंग है॥

सवैया (२०९)

सस्त्र समस्तमें वाही सजावट,
मैनत है मजबूत मताको।
टेढी जगां चढिवेमें टटोर लो,
थाकै नहीं फिरता फिरताको॥
सिकारके नाम पहाड़ मझार,
निहारै सुठोर सो नेह नताको।
जथारथ जान जपै जुगता यह,
रान फता अवतार पताको॥

[चारण युक्तिदान 'देथा' कृत]

टीका-शस्त्र धारण करनेका वह ही प्रकारहै अतुल परिश्रमी है और अपने प्रशंसनीय सिद्धान्तपर दृढ है। और टेढी जगहं अर्थात् पर्वतोंके विषम स्थानोंमे भ्रमण करनेकी ओर देखो तो फिरते २ कभी थकते ही नहीं। सिकारका नाम सुनते ही पहाड़में जापहुंचते हैं। उत्तम पुरुषोंसे स्नेह करते हैं और

प्रीतिका सम्बन्ध यथावत् निभाते हैं । इस कारण सारा जगत् यथार्थ जानकर कहता है कि महाराणा फतहसिंह महाराणा श्रीप्रतापसिंहका अवतार है क्योंकि उन सरीखे असाधारण गुणोंका इनमें पूर्णतया अनुभव होता है ॥

दोहा (२१०)

लखन कुंभ सांगे पतै,
जवन जोर दिय तोड़ ।
तेहिं रविकुल चिर थिर फता,
सब हिन्दुन नृपमोड़ ॥

[रामनाथ 'रतनू' कृत]

टीका–महाराणा गढलक्ष्मणसिंह, महाराणा कुंभा, महाराणा संग्रामसिंह और महाराणा प्रतापसिंहने यवनोंका मान मर्दन कर उनके प्रभुत्वको तोड़ जिस वंशका गौरव वढाया । उस पूजनीय सूर्यवंशमें हे सब हिन्दुओंके राजशिरोमणि महाराणा फतहसिंह ! चिरकालतक मेवाड़का शासन करते रहो ॥

दोहा(२११)

बुद्धि समप्पण गजवदन, गुणद विधारण गाथ ।
सिद्धि करण असरण सरण, नमो नमो गणनाथ॥

[बारहठजी बालावक्सजी 'पालावत' कृत]

दोहा (२१२)

अलिक इन्दु कुञ्जर तुचा, मुण्डमाल वपु छार।
अहि भूषण विजियाभखी, जय जय जय त्रिपुरार॥

[गोपालदानजी 'कविया' कृत]

इति शुभम्।

मेवाड़के प्रसिद्ध १६ उमरावोंकी गणना ।

त्रिहुं झाला त्रिहुं पूरब्या, चौंडावत भड च्यार ।
दुय सगता दुय राठपड़, सांरगदेव पँवार ॥
सरणायत्तां "सादड़ी[१]," "गोघूंदो[२]" घर गल्ल ।
दुरग "देलवांडो[३]" दुरस, झाला खत्रवट झल्ल॥२॥
'कोठारयो[४]' अर 'वेदलो[५],' 'पालसोल[६]' भुजपाण ।
मांझी धर मेवाडमें, चितवंका चहुवाण ॥ ३॥
दिपै 'सलूंबर[७]' देवगढ[८],' 'वेघूं[९]' थान विचार ।
अधपतियां 'आंमेट[१०]' ए, चौंडा सरणा च्यार॥ ४ ॥
इक 'भींडर[११]' दुय 'वांनसी[१२],' महिविच सगतां मोड़ ।
'घांणेरो[१३]' 'बदनोर[१४]' घर, राणधरा राठौड ॥ ५ ॥
'कानोडह[१५]' आपण करां, सरणों सारंगद्योत ।
ज्यौं पँवार 'वीझोलियां[१६],' वेहूं सरणा जोत ॥६॥

शुद्धिपत्र ।

पृष्ठसं.	पङ्क्तिसंख्या.	अशुद्ध.	शुद्ध.
३	१९	प्राप्त है	प्राप्त हुई है ।
४	१७	क्षत्रियां	षत्रियां।
५	१	गाजें	गांजे ।
,,	११	भाभी	भामी ।
१२	१२	झूड़ी	झड़ी ।
१३	३	कीधों	कीधो
१४	१७	धायन	घायन
१७	७	हमीरसिंहजी	श्रीहमीरसिंहजी ।
२०	११	सुरंगतरी	सुरपतरी ।
२१	१६	याद	यदि ।
२४	२	वयणा	वयणां ।
,,	१८	खेताजी	श्रीखेताजी ।
२८	९	वोहलों	वोहलों ।
३१	१	पीछ	पीछे ।
३३	२१	छत्रपत्र	छत्रपत ।
३९	१३	चूंक	चूक
४०	६	वळवंत	वळवॅत ।
,,	१४	वडे गढ २	वडे २ गढ ।
४५	२	रायमळ	रायमल ।
,,	९	हूवे१०	वे१० हूं
४६	६	डंड	डॅड ।

पृष्ठसं.	पङ्क्तिसंख्या.	अशुद्ध.	शुद्ध.
४७	१८	कूभाहेरे	कूंभाहेरे ।
४९	१४	गंह	गह ।
५०	१२	६	९ ।
५९	१७	हमी	हमीर ।
६०	९	कव्या	कव्यां ।
६१	७	वरिवर	वीरवर ।
६३	२	ने	ने ।
६६	७	मजीत	मसीत ।
६८	१	देवा	देवां ।
७२	१०–१२		है ।
,,	१२	उसा	उसी ।
,,	,,	दाखता	दीखता ।
७४	२१	उदयसिहजी	श्रीउदयसिहजी ।
७८	५	उधोर	ऊधोर ।
८२	२०	जाछे	त्राछे ।
८४	४	पाप	पाय ।
,,	५	सुदतार	अदतार ।
८५	१३	तणौं	तणैं ।
८६	१२	पकारि	फकीर ।
९२	१७	वाजेती	वोजंती ।
१०६	४	कसामद	कुसामद ।
,,	७	दुसरा	दुरसा ।
,,	१३	राणा उत	रांणाउत ।
१०८	१७	काट पणधर	काढ, पणधर ।

पृष्ठसं.	पङ्क्तिसंख्या.	अशुद्ध.	शुद्ध.
१०८	२०	वाला	वाले ।
१०९	४	वंशवाला	वंशवाले ।
१११	१३	करै	करैं ।
११३	१३	(वीच)	वीच ।
११५	१८	सुःख और दुख	सुख और दुःख ।
,,	२०	जासीं सूरमा	जासी सूरमां ।
११६	१०	पांतरियो	पांतरिये ।
,,	१९	लिये हुए	किये हुए ।
,,	२२	साथें	साथे ।
११८	४	चिॅनार	चितार
११९	१	विरुद्ध छिहत्तरी	विरुदछिहत्तरी ।
,,	७	नमो	नमे ।
,,	१३	काना	कानां ।
१२०	१	रहै	रहे ।
१२१	१७	राज राणा	राजा राणा ।
१२२	१०	जो वादण	ज्यूं वादळ ।
१२३	७	मजीत	मसीत ।
१२५	१	जो राणा	राणा ? जो आप ।
,,	११	निराझियो	निरझरियो ।
१२७	१८	टोटी	टोपी ।
१२८	१४	पेल	पेले ।
१३१	२	वैरसे	वेरसे ।
,,	१९	स्रियां	स्त्रियां ।
१३३	१३	मच्डलग्गनतैं	मण्डलगानतैं ।

पृष्ठसं.	पङ्क्तिसंख्या.	अशुद्ध.	शुद्ध.
१३४	४	इक्कल–जिहं	इक्कल–जिहँ ।
,,	१९	गढालोंको	गजढालोंक
१३५	१८	तेरे–वहमण्डको	तेरे–ब्रहमण्डकों ।
१४३	१८	पूजकर	पूजगर ।
१४४	१५	दक्षिण्य	दाक्षिण्य ।
१४९	८	कूरमा	कूरमां ।
१५४	१२	रैसिया	रीसिया ।
१५७	२	घण	घणा ।
,,	३	वणी	धणी ।
,,	१६	अहाड़के	आहाड़ोंके ।
१५९	२२	हीलोल़	हाल़ोच ।
१६०	४	बारूं	वारू ।
,,	६	सारूं	सारू ।
१६३	६	षैगां	षगां ।
,,	७	बेलै	वैलै ।
,,	११	राणें पर हस	राणै पर हँस ।
१६४	६	वरवरताहै	वरघराताहै ।
१६५	८	आंघणे	आंगणै ।
१६९	१२	संहारिया	सँहारिया ।
१७०	२	महाराणा राज-सिंह बनाव	महाराणासाहव रा-जसिह बनाम ।
,,	४	वोद	वाद ।
,,	१०	दामा	दाना ।
,,	१५	वे इत्तफाक	व इत्तफाक ।

पृष्ठसं.	पङ्क्तिसंख्या.	अशुद्ध.	शुद्ध.
१७१	१७	शुकरिमें	शुकरियेमें।
१७४	९	मतसविर हा	मुतसविर हो।
,,	१६	आमादाह	आमादा।
,,	१९	खैरतलबको फ- र्माया	खैरतलबको याद फर्माया।
१७७	१५	ईंदवाण	हींदवाण।
,,	१७	पाछा पाछा	पाछा।
१८१	११	सॅगराम	सॅग्राम।
,,	१७	षीझ	षीज।
१८३	१२	वळां	षळां
,,	१६	ऊडाण	आपाण।
,,	२०	ऊमरड़	उमरड।
१८४	३	नवां	नवा।
,,	६	तमस	तगस
१८७	५	त	तैं।
,,	१०	चाड़	चौड़ै।
१९१	२	जेम हेम	जेम दे हेम।
,,	१५	दीव	दीध।
१९२	१२	वरिता	वीरता।
,,	१३	जबंतक	जवतक।
१९६	१७	जोलौं	योंही।
,,	१८	वोह	वह।
१९७	३	गूणग्राही	गुणग्राही।
,,	१५	सोद	सोदा।

पृष्ठसं.	पङ्क्तिसंख्या.	अशुद्ध.	शुद्ध.
१९८	१०	यवनके	पवनके ।
२००	२	अपनी मन,	अपनी, मन ।
,,	२०	सथ सरली	सुथ सरली ।
२०१	११	तीको कोड	तो कोऊ ।
२०२	५	धार	धारैं ।
,,	६	नाहरैं	नाहर ।
२०३	१३	निग्रह	विग्रह ।
२०४	१९	प्रभुताने	प्रभुतानै ।
२०६	८	तेहिं	तिहँ ।
२०८	७	पाल सोल	पालसोलि ।

कुछ सूचनाएं।

(१) वहुत जगहँ 'ड़' के स्थानमें ड और 'तरह' का तरहं रह गया है तथा 'ल़' का ल वा 'ल' का ल़ भी होगया है सो विद्वज्जन सुधार लेवैं।

(२) पृष्ठ ५२ में जो सादड़ी वालोंके विषयमें उल्लेख किया गयाहै उसकेलिये ऐसा भी निश्चय हुआ है कि वह वृत्तान्त महाराणा श्रीप्रतापसिंहजीके साथ जो हलदी घाट पर युद्ध हुआ उस समय झाला मानसिंहजीने जो अप्रतिम स्वामिभक्तिका परिचय दिया उस समयका है।

(३) पृष्ठ ७१ में जो नोट है उसकेलिये यह भी सुना-गया है कि उल्लिखित गीत बारहट जमणाजीने उदयपुर पधारनेपर महाराणा साहबको सुनाया था।

(४) पृष्ठ ७७ में महाराणा श्रीप्रतापसिंहजीके लिये जो 'जिन्होंने अपने धर्मकी रक्षाके अर्थ राज्य भी खोदिया' यह वाक्य लिखा है इससे अभिप्राय यह है कि, महाराणा साहवने राज्यसुखको तुच्छ समझा और उसके अधीन नहीं हुए।

(५) पृष्ठ ८४ में जो 'मह लागो पाप' इत्यादि गीत है उसके लिये जनश्रुति ऐसी है कि वह गीत सुप्रसिद्ध विद्वान् और ईश्वरभक्त वारहट ईसरदासजीने महाराणा साहवको सुनाया था।

(६) पृष्ठ १५६ में महाराणा जगत्सिंहजीके दानवर्णनका जो एक श्लोक होना नोटमें लिखा गयाहै उसका वहुत अन्वे-षण किया गया परन्तु वह अवतक उपलब्ध नहीं हो सका।

इति

महाराणायशप्रकाश-शुद्धिपत्र

समाप्त ।

भावी विचार

SECRET SCIENCE

OF

NATURE READING

होनेवाली छिपीहुई बातों को जान लेना

शकुन, वायु परीक्षा, स्वरोदय, केरल, स्वप्न, मैस्मरेजम, अंतरयामी विद्या, हस्त सामुद्रक, कपाल सामुद्रक, अंगसामुद्रक, सब के नियम नकशा देकर समझाये. युक्तियों से सिद्ध किये बिना गुरू के समझलो, जो चाहे आज़माले सब सच्चे

१००० उपयोगी चुटकले

बाबू प्यारेलाल ज़मींदार बरौठा

ने संस्कृत फ़ारसी अंगरेजी के अनेक ग्रन्थो का सारांश लेकर और महात्माओं की सेवा से संग्रह किया

मिलने का पता—

विद्यासागर डिपो, अलीगढ़

इस का तर्जुमा उर्दू, गुजराती, गुरमुखी, मरहठी, अंगरेजी, में भी छप रहा है

जगद्विनोद यन्त्रालय अलीगढ़ में

बल्देव प्रसाद लखनऊ निवासी के प्रबन्ध से मुद्रित

तीसरी बार) १००० कापी) | १९०६ ई० | { मूल्य प्रति १) रु०

भूमिका

—::*::—

अब तक हमने उद्भिज, व जरायुज विद्या की पुस्तके लिखीं थीं, इस पुस्तक को देखकर कदाचित आप चौंक पड़ेगे कि ऐसी विस्मृत बातो का स्मरण फिर क्यों कराया। हमारे बहुत से भाई तो अप्रसन्न होंगे कि ऐसे व्यर्थ लेखों की ओर सर्वसाधारण का ध्यान दिलाया जाता है परन्तु उन को इतना पक्षपात न करना चाहिये यदि तर्क हो तो उचित रीति से होनी चाहिये हम कहते है कि जब वह ही अपने साइंस की थ्योरी का किसी पुराने फैशन के मनुष्य के सामने वर्णन करते है तो वह उनको निरा विक्षिप्त समझता है। तो क्या इस भांति उनकी तिरस्कार नहीं होती और क्या वह मन में नहीं कहते कि कैसे मूर्ख से पाला पड़ा है, निःसंदेह एक विचार का मनुष्य दूसरे विचार वाले को मूर्ख और स्वय अपने को सत्य मार्ग पर जानता है। यदि उसके समझाने का प्रयत्न भी किया जाय, तो तर्क करने वाले के तर्कों को चाहे वह कैसे ही दृढ हों सर्वथा तुच्छ और निरर्थक समझता है, वरन् उसकी बुद्धि पर रोता या हँसता है। वास्तव मे यदि न्याय किया जाय तो दोनो ही भूलपर होते है क्योंकि ईश्वर की सृष्टि का अभी तक पूरा २ भेद नहीं खुला, अतएव दृढता के साथ नहीं कह सकते कि किसका विचार सत्य है परन्तु अधिक भूलपर वह मनुष्य है कि जो किसी नवीन बात को सुन कर बिना सोचे विचारे उसे सत्य या असत्य बतलाने लगता है।

परन्तु वह सम्मति अपने ही हेतु हो न कि दूसरो को तंग करने या किसी की हंसी उड़ाने को इसी आशा पर मुझे इस पुस्तक के लिखने का साहस हुआ ज्योतिषविद्या मुझे बहुत सत्य जान पड़ी, और सर्वसाधारण को भी इसकी चाह देखी, मेरी राय सम्मति इस के सम्बन्ध मे चाहे जैसी हो परन्तु विश्वास करने वाले मनुष्यों को उचित है कि इसको भली भांति छान बीन करके कुछ परिणाम निकाले, मैने यह संग्रह जो ऐसी विद्याओ को सुगमता से समझा सके तैयार करना इस हेतु अत्यावश्यक समझा कि "यदि यह विद्याए सत्य प्रमाणित हो तो सब से अधिक आवश्यकीय और लाभदायक है यदि असत्य निकले तो भी जितनी और इनको कलई खुले उत्तम है," । इन बातो के जानने वाले केवल करामाती साधु जन होते है परन्तु वह कभी किसी को नही बतलाते, और यदि बतलाते भी है तो प्रथम ही से उसको अपना सा लँगोटा बँधवा देते है, संस्कृत भाषा मे जो पुस्तके परोक्ष विद्या की है वह बड़ी ही गूढ है उनके समझाने वाले सब मर गये, इसलिये सत्यता की खोज मे मनुष्य अब तक अति चिन्ता को प्राप्त थे उनको बहुधा अवकाश निर्णय करने का नही मिलता था, मै ने आपके हेतु बहुत सी संस्कृत पुस्तको को पंडितो से पढ़वा कर सुना, और ऐसी पुस्तके अंग्रेजी मे जहां तक मिली उनको पढ़ा फिर दोनो का मिलान करके यह अपूर्व पुस्तक निर्मित की

मै ने इस मे वे सम्पूर्ण विद्याए कि जिन से गुप्त तथा भविष्य बातो को जान सकते है । उनके समस्त नियम व रीतो का वर्णन भली भांति किया है । और प्रत्येक विद्या को साइंस के अनुसार ठीक प्रमाणित करने का भी प्रयत्न किया है, ऐसी बाते लिखी है कि जिनका बहुधा प्रत्येक मतानुयायी तथा प्रत्येक देश के मनुष्य मानते है और प्रति दिन काम मे लाते है गूढ बाते ऐसी सरल और सर्वसाधारण के समझने योग्य करदी है और स्थान स्थान मे चित्र भी देकर समझाया है कि एक साधारण मनुष्य बिना गुरु की सहायता के उनको समझने और फिर शीघ्र काम मे ला सके, इतनी बाते कोई गुरू १०० रु० भी लेकर न बतलावेगा जितनी इस एक पुस्तक मे मिलेगी ।

जिन महाशयो को ऐसी विद्याओ पर विश्वास है वह तो इसको गले का हार बनावेगे, परन्तु इसके विरुद्ध महाशय भी अवकाश काल मे आनन्द के लिये इसकी सैर किया करेगे और एक उत्तम मैदान अनुसंधान के लिये पावेगा ॥

यद्यपि इसी एक पुस्तक मे इतनी विद्याओ की सम्पूर्ण व्यवस्था और नियम लिखना असम्भव है परन्तु तो भी मै ने किसी विषय की कोई आवश्यकीय बात नही छोडी और व्यर्थ बाते नही भरी । लेख को शब्दो से विस्तृत नही किया, अत्यन्त [illegible] खा है, और सम्पूर्ण बाते सत्य लिखी है, जिनकी परीक्षा हर समय हो सकती

है इसमे जादू, आदि धोखे धडी की बाते बिलकुल नही है लिखावट का ढंग ऐसा नही है कि दस सफे पढगये और कहानी के अतिरिक्त कुछ न पाया, इसके प्रत्येक पृष्ठो मे पचास, सौ, विद्या की बाते मिलेगी, कहानी या विस्तार का इस पुस्तक में पता न लगेगा ।

पाठक गणो से आशा है कि इसको खेल तमाशे या जादू की एक असत्य पुस्तक न समझेंगे, वरन् इसके लाभदाई नियमो का स्मरण करके उनसे लाभ उठावेगे इसके पढने वाले को संसार मे बडी सुगमता होजावेगी वह प्रत्येक बात को पहिले ही से जान लेगा और जानकार उसका प्रबन्ध कर सकेगा और कभी धोखे में न पड़ेगा, यदि इसकी नीव सत्यता पर होगी तो विद्या सब के हृदय मे आप ही आप घर करेगी, और नवीन प्रकाश युक्त फिर जीवित हो जायगी ।

प्रत्येक मनुष्य इसके प्रयोगी होने का अधिकारी नही प्रत्येक विद्या के वास्ते बुद्धि भी चाहिये, तलवार कैसी ही तीक्ष्ण हो परन्तु चलाने वाले का हाथ सच्चा हो यह लड़को का खेल नही कि चाहे जिसकी चेष्टा देखी और कह दिया कि यह मनुष्य ऐसा है ऐसे ही " नीम हकीम खतरे जान नीम मुल्ला खतरे ईमान, " हुआ करते है, विद्वानों को उचित है कि बडे अभ्यास के उपरान्त प्रयोगी बनने का दावा करे और भली भाति सोच कर उत्तर दे जिससे पीछें उनकी हँसी न हो, इस को तमाशेकी भाति न दिखलोष, इसके द्वारा कुछ कमाई न करे और अयोग्य लाभ उठाने का विचार भी हृदय मे न लावे और इसका प्रयोग केवल अपने कामोके सम्बन्ध में रक्खें।

ऐसी पुस्तक का छपजाना और बिकना अहोभाग्य है प्रत्येक विद्या की यह दशा सदैव ही रही है कि जब तक उसपर विश्वास न हो तबतक अप्रतिष्ट रही और जब विश्वास होगया तो अधीरता हुई और खोज जारी देखो वही फिलसफा और इतिहास की प्राचीन पुस्तकें जिनको प्रथम कोई हाथ मे न लेता था अब वह हाथो हाथ फिरती है बडे श्रम से मनुष्य उन्हे ढूँढते है कि इनका कोई भाग और कही मिल जाय, इसलिये प्रत्येक विद्या के सम्बन्ध मे जो कुछ मिल सके उसको तो अवश्य ही लिखना चाहिये कि जिससे समय के हेर फेर से वह नष्ट भ्रष्ट न हो जावें और भाग्य की प्रबलता से कभी कभी लाभदाई सिद्ध हो

यहां तक मिले तहांतक ढूंढ ले कर इकट्ठे किये । और यह पुस्तक निर्माण की ।

कदाचित और भी बहुत से ऐसे मनुष्य होंगे जो इस की बार बार परीक्षा करके सही पाचुके है और इसके विश्वासी है परन्तु उनको कोई पूर्ण गुरु या ऐसी पुस्तक कि जिसमे सम्पूर्ण रीते सिखलाने के योग्य हो नहीं मिलती, यह पुस्तक उनकी निराशा को दूर करेगी । और अन्त मे विश्वास करने वालो को अद्भुत यथार्थ प्रमाणित होगी ।

इस पुस्तक को आप दो बार प्रारम्भ से अन्त तक चित्त लगाकर पढ लीजिये परमेश्वर चाहेगा तो आप इसको विश्वस्त हो जायगे और त्रिकालज्ञ बनकर भावइय बातें पहिले ही से भली भांति कह दिया करेंगे ॥

प्यारेलाल.

पहला अध्याय।

सामुद्रिक

(१) सामुद्रिक उस विद्या को कहते है कि जिसका ज्ञाता किसी मनुष्य का केवल स्वरूप देखकर उसके स्वभाव और भाग्य का वृतान्त बतला सकता है और भूत तथा भविष्य वृतान्तों को भी जान लेता है।

(२) इस विद्या को हमारे पुरुषा आर्य महर्षि सब जानते तथा मानते थे और अत्यन्त विश्वास पूर्वक इस पर कार्य करते थे, इसका वर्णन रामायण महाभारत और पुराण इत्यादिक मे सैकड़ों स्थानो पर आया है और जहां जिस किसी मनुष्य का वर्णन लिखा है वहां उसके चक्षु श्रवण नासिका हस्त और पाउ इत्यादि की बड़ाई सौंदर्य भाव से नहीं की, वरन् उसके प्रत्येक अंग का चित्र इस हेतु दिखलाया गया है कि उसके स्वभाव और प्रकृति स्वय ज्ञात हो जावे।

(३) कुछ हमारे ही देश मे नहीं वरन् ईरान के आतशपरस्त मनुष्यों के इतिहास मे भी इस पवित्र विद्या का पता लगता है यूनानी भी इसको स्वीकार करते है वरन् अरस्तू से नामी फिलासफर ने इस विद्या की एक पुस्तक बनाई थी फैसागोरस और सुकरात भी इसको मानते थे और अब तक सम्पूर्ण यूरोपीय जन इसको मानते है, यही हाल चीन, अफ्रीका तथा अमेरिका निवासियों का है।

(४) भाग्य का लिखा हुआ नहीं मिटता, यह एक प्रसिद्ध कहावत है वह भाग्य किसी पुस्तक या पट्टी पर नहीं लिखा वरन् इन्ही दैवी अक्षरों मे हमारी देह मे अंकित है ईश्वर ऐसा मूर्ख नहीं था कि हमारे हाथ मे व्यर्थ लकीरें खींच देता और तिल आदि बनाने का दु:ख भोगता, और यों तो न मानने की कोई औषधि नहीं है, चन्द्रमा, सूर्य, बिजली, समुद्र, पर्वत को भी देखकर नास्तिक ईश्वर को नहीं मानता।

(५) प्रत्येक पदार्थ जो उत्पन्न होता है वह उसी के सदृश होना चाहता है जिससे कि उस का बीज निकला, परन्तु उत्पत्ति का देशकाल अपना प्रभाव डालकर कुछ न कुछ अन्तर कर देता है, फिर थोड़ा सा अन्तर सत्संग तथा शिक्षा के कारण भी पड़ जाता है, अतएव प्रत्येक मनुष्य की सन्तान यद्यपि पृथक् २ स्वरूपों की तो होती है परन्तु एक मुख्य सदृशता परस्पर अवश्य रखती है, यदि बाप बेटे का रूप एकसा हुआ करता तो उनके भाग्य और स्वभाव में थोड़ा भी अन्तर न होता।

(६) जब घोड़े को मोल लेते हैं तब उस के दोष गुण भौंरी इत्यादि भली भांति विचार लेते हैं, बदमाश, चोर, पागल की सूरत नहीं छिपती यद्यपि यथार्थ वर्णन नहीं कर सकते परन्तु हिन्दू, मुसलमान, मरहटा, पारसी, ईसाई आदिक को देखकर तत्काल ही जान लेते हैं जब स्वरूप देखकर मनुष्य या पशु की जाति बतला सकते हैं तो फिर प्रकृति और स्वभाव बतलाना कितनी दूर रह गया, और ऐसी सैकड़ो बातें हैं कि यदि हम किंचित भी ध्यान करें तो इस विद्या का विश्वास दिलाने के निमित्त परिपूर्ण हैं।

(७) हम अत्यन्त सरलता से खुर, टाप और पंजे वाले जीवों के स्वभाव के ढंग व अन्तर को वर्णन कर सकते हैं, बुलडाग और शिकारी कुत्ते की बंश के स्वभाव और प्रकृति पहिचान सकते हैं, फिर क्या यह सम्भव नहीं! कि किसी मनुष्य का आकार तथा हाथ पैर की बनावट देखकर यह बता सके कि यह बुद्धिमान, क्रोधी, परिश्रमी तथा आरोग्य होगा अथवा बेवकूफ, सुस्त, भोगी या कैसा फिर इसी भांति सम्बन्ध मिलाते २ क्या हम अटकल से इस परिणाम तक नहीं पहुँच सकते, कि उस की आयु, धन आदिक की क्या दशा होगी!।

(८) ग्रहों की चाल के प्रभाव से ऋतुयें बनती हैं, ऋतु का प्रभाव रुधिर पर पड़ता है जैसी दशा रुधिर की होती है, वैसा ही स्वभाव होता है, स्वभाव प्रत्येक काम को कराता है, काम का फल अवश्य ही कुछ होता है, उसी फल का नाम भाग्य है, अब यदि कोई मनुष्य ज्योतिष शास्त्र वेत्ता किसी की भाग्य और स्वभाव तथा गुप्त वार्त्ता प्रगट करने का प्रण करे तो वह मिथ्या नहीं हो सकता।

(९) सामुद्रिक के चिन्ह हमारे मन के भेदान प्रगट करते हैं,

जो स्वाभाविक होनव्य है, और यदि छोड़ दिया जावे तो अपना कार्य पूर्ण करेगा, परन्तु हम चाहें तो उसके विरुद्ध कर सकते हैं और यथोचित श्रम के साथ उसके प्रबन्ध या सुधार में सफल हो सकते हैं, और यदि हम उसी के अनुसार चलें तो उसका कार्य्य शीघ्र ही पूर्ण करा सकते हैं, जिस भांति एक बीज में दैवी शक्ति है कि वह एक वृक्ष उत्पन्न करेगा यदि वह पृथ्वी पर पड़ा रहे तो कभी न कभी अवश्य जमेगा और यदि हमने लेकर उसे तोड़ डाला या सन्दूक में बन्द कर दिया तो बेचारा विवश है यदि हम उसको खाद में गाड़कर पानी दें तो वह और शीघ्र उगेगा ॥

(१०) यदि दैवी नियमों के प्रतिकूल करना सम्भव न होता तो हम जानवरों को पालकर उन से काम न ले सकते, तोते, मैना को अपनी भाषा न सिखा सकते, अद्भुत २ प्रकार के फल, फूल और तरकारियें न उत्पन्न कर सकते, यद्यपि यह तब्दीली सम्भव है तथापि कभी यह आक्षेप नहीं हो सकता कि किसी प्राणी तथा वृक्ष के स्वभाव जानने का श्रम न किया जावे, जब विद्या की प्रतिष्ठा की गई, तो वैद्यक, पदार्थ विद्या, योग, रसायन, संगीत विद्या आदिक ऐसी ऐसी गूढ़ विद्यायें उत्पन्न हो गईं, रेल और तार बर्की काम देने लगी यदि सब को व्यर्थ जानकर त्याग देते तो आज हम वनमानुष होते।

(११) इस विद्या के जानने से बड़े २ लाभ है-हाकिम के स्वभाव तथा प्रदेशी के वृत्तान्त को भली भांति जान सकते है-किसी मनुष्य को मित्र बनाने में प्रथम उसके स्वभाव को जान सकते हैं होनहार भाग्य शालियों के शुभ अङ्कों को देख कर तथा बालकों के स्वभाव व भाग्य की भावी दशाओं को विचार कुछ प्रबन्ध अपनी इच्छानुसार कर सकते है, और यदि अपने सम्पूर्ण दुःखों को इस भांति भली प्रकार से दूर नहीं कर सकते तो कुछ न कुछ यत्न अवश्य कर सकते है।

(१२) संस्कृत भाषा में इस विद्या के सम्बन्ध गर्ग ऋषि, वराह मिहिर और व्यासजी ने अपनी पुस्तकों में भली भांति लिखा है-भारतवर्ष से यह विद्या ईरानियों ने ली, कि जिनकी जादूगरी तथा मन्त्र अब तक प्रसिद्ध है तदनन्तर यहां से यूनान और रूम में पहुँची, फ़ारसवालों ने इस में बड़ी निपुणता प्राप्त की, फिर अमेरिका

लों ने इस में नमक मिर्च मिलाकर और भी प्रकाशित करदिया।

(१३) यूरोप और अमेरिका में इस के ज्ञाता बड़े २ विद्वान तथा प्रोफेसर हैं परन्तु हमारे देश में मूर्ख ज्योतिषी और भड्डरी लोग जो घर २ में हाथ देखते फिरते हैं, इसके ठेकेदार रह गये हैं, यह लोग एक पैसा ले कर समस्त जीवन का हाल सत्य, असत्य कह सुनाते हैं और लोगों को ठगते हैं उनकी मूर्खता और असत्य भाषण यद्यपि हानिकारक हैं किंतु इसकी असत्यता के हेतु कोई तर्क नहीं हो सकती, नव शिक्षक लोग सदैव इन चालाक पेशेवरों की उपमा देकर कहा करते हैं कि यह सब बात असत्य है, परन्तु यह भ्रम का आक्षेप न्यून बुद्धि के कारण है विद्वान की अपूर्णता से विद्या असत्य नहीं हो सकती, यह कहावत प्रसिद्ध है कि "वेद सच्चा वक्ता झूठा"

(१४) समय की प्राचीनता तथा उलट पुलट से यह सब बात अतिशोधन योग्य तथा अर्थहीन हो जाती है परन्तु यह भी स्मरण रहे कि जिसका मूल पुष्ट है वही इतने दिनो तक स्थिर रह सकती है,※

वही बात सबको स्वीकृत होकर उन्नति पा सकती है कि जो सदैव परीक्षा में सत्य उतरती हो, और प्रत्येक तार्किक के सन्मुख सत्य ठहरी हो फिर उसी सत्य बात का नाम लेकर कोई चालाक किसी को भ्रम दे सकता है उस की ओट के बिना कौन ध्यान दे सकता है

(१५) सामुद्रिक शब्द का अर्थ है "छिपा हुआ" इस विद्या के तीन विभाग है। Chiromancy हस्त सामुद्रिक अर्थात् केवल हाथ की लकीरें और अँगुलियों की बनावट आदिक देखकर भूत और भविष्य बातों का वर्णन करना।

Physiognomy. अर्थात् अङ्ग, तिल, आकार तथा शरीर की लम्बाई, चौड़ाई और बोझ आदिक देख कर सब हाल बतलाना Phrenology अर्थात् कपाल का विचार जिसमें खोपड़ी के पृथक्‌२ स्थानो की उंचाई निचाई देखकर किसी मनुष्य का केवल स्वभाव बतलाना यह विद्या एक जर्मनी के डाक्टर ने अभी प्रकाशित की है।

(१६) प्रथम तो हम करोमन्सी का वर्णन करते हैं इसके भी

※ यह आक्षेप ऐसा है कि जैसे कोई नादान हिंदू कहे कि "आर्य्य समाजी बड़े झगडालू होते हैं वह ईश्वर देवता और मा बाप को नहीं मानते, केवल नमस्ते जानते हैं और कजूस हैं" या ऐसा कि कोई नया आया हुआ विलायती साहब कहने लगे कि "हिंदुस्तानी कुली" होता है

दो विभाग है एकतो पालमस्टरी Palmistry जिसमें हाथकी लकीरों व चिन्हो को पहिचान होती है दूसरी Chiognomy जिसमें हाथ तथा अंगुलियो की बनावट देखी जाती है हाथ देखने वाले को उचित है कि सम्पूर्ण बाते देखकर सब फलो को मिलावे, और अधिकता के साथ जो फल मिले उसका वर्णन करे बरन यह उत्तम होगा कि जब तक भली भांति अभ्यास न होजावे तब तक सदैव हाथका चिन्ह लिखकर पुस्तक से मिला लिया करे और दूसरे दिन लिखा हुआ उत्तर दे ॥

(१६) पुरुष का दांया और स्त्री का वांया हाथ देखा जाता है परन्तु जिस भांति कि नाडी देखने की रीति है वैसेही पुरुष हो या स्त्री उसके दोनो ही देखना उचित है क्योंकि केवल एक हाथ का ही देखना उचित होता तो दूसरे हाथमें लकीरें क्यो होती वरन परमेश्वर ने यह विधि रक्खी है कि यदि मनुष्य अपनी भाग्य को पूर्वसे ही जानकर वैठरहेगा तो उसकी वह दशा होगी कि जो एक हाथसे प्रगट है और यदि श्रम करेगा तो वह दशा होगी कि जो दूसरे हाथ से प्रगट है, अतएव दोनों की लकीरें न्यूनाधिक होती है।

(१८) प्रत्येक पुरुष का दांया हाथ कर्त्ता और बायां हाथ कर्मी चिन्ह होता है जिसके दहिने हाथ में लकीरें स्वच्छ और अधिक हों उसको उचित है कि अधिक परिश्रम से द्रव्योपार्जन करे यत्न से खाली नरहे तथा जिसके बांए हाथ में लकीरे स्वच्छ और अधिक हो उसको भाग्यपर भरोसा करके बैठरहना चाहिये उसे घरही में सब प्राप्त हो रहेगा, ऐसे मनुष्य स्वय हाथ पैर नहीं हिलाते और दूसरों को बुद्धि बतलाते तथा उन से काम लेते है।

(१९) देखने के प्रथम हाथ को धोलेना चाहिये, अधिक गर्मी तथा सर्दी के समय और भोजन करने तथा अधिक परिश्रम के उपरांत हाथ देखने का निषेद है हाथ की समस्त बातें स्त्री पुरुष दोनों की समान ही है, बहुधा हाथ की लकीरें मिटजाती तथा नई उत्पन्न होजाती है सामुद्रिक का जो कुछ फल वर्णन किया जावे उसमे प्रश्न कर्त्ता के पद तथा दशा का भी विचार रखना अवश्य है जिसे जो रेखा एक दरिद्रका धनीहोना प्रगट करेगी, उसी से एक राजाका महाराजा होना सिद्ध होगा इसके विरुद्ध नहीं कारण कि प्रत्येक मनुष्य को उसकी हैसियत के अनुसार ही पद मिलता है।

(२०) हाथमें इतनी बातें देखी जाती हैं ।

हाथ की बनावट, हाथ का चमड़ा अंगुलियों की बनावट' अंगुलियो के पोरुवे, नरव, अंगुलियां के भाग, हथेलियों के ऊंचे नीचे स्थान, हथेली की लकीरें, हथेली के चिन्ह, अंगुलियों की लकीरें तथा चिन्ह; कलाई की लकीरें, और हथेली की पीठ। इन सब बातों के नाम और अर्थ को चित्र मे देखकर स्मरण करलो, हम इनका वर्णन क्रमशः प्रारम्भ करते हैं।

(२१) **हाथकीबनावट**—यदि हाथ दीर्घ होतो दूर दर्शी, कारीगर और छोटे पदार्थों की इच्छा करनेवाला यदि, अत्यन्त दीर्घ हो तो पक्षपाती, शीघ्रता करनेवाला और लघु हो तो बुद्धिमान, अहंकारी लालची, बड़े पदार्थों का चाहनेवाला, और आयताकार हाथ हो तो किसी भवन की ऊंचाई और उसकी शोभा को सराहनेवाला होता है परन्तु उसकी कारीगरी और श्रेष्ठता को नहीं समझता, कठोर हाथ वाला अधिक परिश्रमी तथा सरल स्वभाव और नरम हाथवाला चालाक परन्तु अत्यन्त सुस्त, अति कड़ा हाथ जो खुल न सके वह हठी मोटा पुष्ट तथा चिकना और सदैव उष्ण रहनेवाला कि जिस में बहुत पसीना न आवै अच्छा, कड़े चमड़े वाला लकीरों से परिपूर्ण हो तो लड़ाका अथवा रोगी, और नरम चमड़े वालालकीरों से परिपूर्ण हो तो सत्यवक्ता अत्यन्त श्वेत रंग का हो तो स्वार्थी।

(२२) **गठीला**—अर्थात गिरहदार हाथ वर्गाकार होतो ईमानदार नेक, आयताकार हो तो साहसी, नोंकदार होतो बुद्धिमान, **चिकना** जिस में अंगुलियों की गांठ निकली हो यदि वर्गाकार हो तो अति आज्ञावर्त्ती आयतकार हो तो श्रमी विख्यात चाहनेवाला, और यदि नोंकदार हो तो चतुर और तरंगी ॥

हथेली की अपेक्षा अंगुलियां अधिक लम्बी हो तो प्रत्येक बात में संदेह करनेवाला, और श्रेष्ठ स्मरण शक्तिवाला, हथेली अंगुलियों से अधिक बड़ी हो तो तीव्र बुद्धि, सूक्ष्मता पसंद करनेवाला, तथा प्रति काम में शीघ्रता करने वाला, उंगली और हथेली समान हो तो सीधा बुद्धिवान, हथेली नीची हो तो धनवान, ऊंची हो तो व्यर्थ व्ययी, लाल रंग की हो तो धनवान, पीली हो तो मद्यपी, हथेली की पीठ

कुरूप, कड़ी, तथा बालदार हो तो अति अशुभ, और पहुंचे का घरा तक नीचा हो तो अशुभ, ।

[२३] **अँगूठा**-जितना बड़ा हो उतना ही अच्छा, लम्बा, हो तो बुद्धिमान और योधा, छोटा हो तो मूर्ख, अंगूठे के नख वाले भाग में इच्छा का स्थान है यदि यह भाग बड़ा हो तो मनुष्य अति बली चित्त का होगा बहुत बड़ा हो तो हठी कठोर हृदय वाला छोटा होतो अव्यवस्थित चित्त-दूसरा भाग तर्क का स्थान है यदि यह बड़ा हो तो न्याय वेत्ता और विद्वान हो तीसरा भाग अर्थात् मूल यदि उभरा हुआ और विस्तरित हो तो स्नेही, भला अधिक उठा हुआ हो तो सौन्दर्य्य ग्राही चिपटा और कम चौड़ा हो तो निर्मोही, स्वार्थी अँगूठा भीतर को झुका हो तो लालची, बाहर को झुका हो तो उदार जितना बड़ा उतना ही शुभ सीधा और नीचा होतो बुद्धिमान

(२४) **उँगलियां** यदि हथेली से अधिक लम्बी और नोकीली हो तो कट्टर मतावलम्बी पुजारी, वर्गाकार पोरुवेवाली हो तो विद्वान, पतली लम्बी तो बुद्धिमान, हथेली से छोटी आयताकार हों तो हास्य का रसिक, नोकीली हो तो भोगी होता है-प्रत्येक उँगली में तीन खण्ड होते हैं, मूल की ओर का भाग शरीर से सम्बन्ध रखता है यदि यह दीर्घ हो तो वह मनुष्य शरीर का आनन्देच्छुक दूसरा भाग हृदय से सम्बन्ध रखता है यदि यह बड़ा हो तो तीव्र बुद्धिमान तथा तीसरा भाग आत्मा से सम्बन्ध रखता है यदि बड़ा हो तो स्वमतधर्मावलम्बी यदि सब से बड़ी उँगली बहुत बड़ी हो और अँगूठा छोटा हो तो स्वात्म घात करने वाला और यदि छोटी उँगली बहुत छोटी हो तो निष्प्रयोजनी और धनवान होता है ।

(२५) यदि उँगलियां भली भांति से परस्पर मिली होवें तो बुद्धिमान तथा धनवान, पड़ी हों तो दीर्घ आयुष्य वाला, कनिष्ट का बड़ी हो तो धनवान. उँगली पतली हो तो अशुभ और उँगलियां बाहर को झुकी हो तो सिपाही होता है ।

उँगलियां को परस्पर मिलाने से यदि A स्थान [में छिद्र बने तो बाल्यावस्था में सुख मिले बीच बने में तो युवावस्था में और यदि C स्थान पर बने तो वृद्धावस्था में सुख मिले ।

(२६) **उँगलियों के पोरुवे**—ऐसे हों । प्रथम उँगली का

यदि नोकदार हो तो निजधर्मारूढी वर्गाकार तो पक्का आयताकार हो तो गंभीर चित्त का, दूसरी उँगली का पोटवा नोकीला हो तो निश्चिन्त वर्गाकार हो तो बुद्धिमान आयताकार हो तो संशयात्मक तीसरी उँगली का नोकीली हो तो गुणाग्राही वर्गाकार हो द्रव्याभिलाषी आयताकार हो तो साहसी छोटी उँगली का नोकीला हो तो तत्त वेत्ता आयताकार हो तो चालाक।

(२७) नख -चौड़े हों तो सीधा तथा लज्जावन्त, सकुचित हों तो बखेड़िया, गोल हो तो विद्वान स्वतन्त्र और आनन्देच्छुक, छोटे हों तो डरपोक, तथा मूर्ख, वार मनुष्य के रक्तवर्ण, छोटे दार नख, और भोगी मनुष्यों के दोनों ओर मास मे गढे हुये होते है, काले रँग के नाखून हृदय के दुःख को प्रगट करते है-नाखून के श्वेत चिन्हों से क्लेश प्रगठ होता है, रोगी मनुष्य के नाखून पीत वर्ण के होते है तथा जिस को मित्रों से हानि पहुँचे उस के भी पीत वर्ण के होते है स्वच्छ तथा रक्त वर्ण के नाखून राजा के, श्वेत वर्ण के कंगाल अथवा गम्भीर के कम चौड़े वर्गाकार लडाकों के, दीर्घनखा परिश्रमी के अधिक चौड़े हठी के, लम्बे परन्तु कम चौड़े नख उत्तम स्वभाव वाले के होते है।

[२८] प्रत्येक उंगली के प्रथम जोड पर अधिक लकीरें उसका प्रभाव थोडा करती है और प्रत्येक लकीर प्रभाव के अधिक करती है।

यदि A स्थान में एक ग्रह का चिन्ह हो तो व्यभिचारी, B में दो क्रास के चिन्ह हो तो प्रतिष्ठित पुरुषों से मित्रता होवे C मे एक क्रास हो तो पुत्र हीन, K में एक क्रास हो तो व्याह न हों D से E तक एक रेखा हो तो जग विख्यात होवे।

यदि N स्थान मे बहुतसी रेखाये परस्पर कटी होवें तो धनवान Z स्थान पर हों तो भोगी, O स्थान पर यदि थोडासी रेखाएं ऐसी हों तो धनवान्; ।

[२९] खडी रेखायें उगलियां के पोरुव मे जितनी अधिक हों उतना ही शुभ, कम हों अशुभ, उंगलियो के मूल के नीचे दो दो खडी रेखाए हो तो अति ही शुभ।

यदि प्रत्येक उंगली मे चार २ रेखाये होवे तो शुभ, एक एक हो तो अशुभ एक हाथ की चार उगलियों की रेखाओ का योग यदि ११ तथा १७ हो तो अशुभ और १८ तथा २१ हो तो अति शुभ आठों

अगुलियों का योग ४२ तथा ३६ हो ता शुभ।

[३०] **शंखचक्र**--प्रत्येक उंगली के पोरवे पर सूक्षम रेखाओं के चिन्ह हुआ करते हैं इन में जो गोल हो उन्हे चक्र कहते है।

यदि दस उंगलियो मे एक चक्र का चिन्ह होवे तो सुख मिले राजद्वार में प्रतिष्टा मिले तीन से धन मिले, चार से विद्वान परन्तु कंगाल, पांच से स्त्री के वस्य, छह से भोगी, सात से सुखी; आठ से मूर्ख; नौसे अधिकारी होता है और दशौ चक्र शुभ होते है।

दूसरा चिन्ह शंख का होता है, यदि शख २, १, ५, हो तो अशुभ और शेष सब शुभ।

तीसरा चिन्ह गदा का होता है यह एक अगुली में हो तो शुभ और सब मे हो बहुत ही सुभ।

चौथा चिन्ह पद्मका सो किसी राजा महाराजा ही के होता है।

(३१) प्रत्येक उँगली के नीचे जिस ग्रहका चिन्ह है वह उसी के नाम से प्रसिद्ध है, और प्रत्येक ग्रह मुख्य अँग से सम्बन्ध रखता है, अतएव जो उँगली अधिक बड़ी हो वह उसी अँग का रोग प्रगट करती है. यदि किसी ग्रह के स्थान से कैंची की रेखाए हो तो उसी अंग पर क्षत [घाव] समझना चाहिये, प्रत्येक ग्रह के स्थान पर एक रेखा खड़ी शुभ होती है अधिक अशुभ।

ग्रहों का सम्बन्ध अंगों से इस भांति पर है।

वृहस्पति का सम्बन्ध मस्तक और फेफडा, शनिश्चर का तिल्ली बकार से, सूर्य का भुजा और मन तथा नेत्र से बुध का कलेजा व टांग से, मंगल का गला व सिर से, चन्द्र तथा शुक्र का देह के निचले भाग से,।

(३२) प्रत्येक उँगलीके मूलसे नीचे कुछ उठा हुआ स्थान होता है यदि वृहस्पति का स्थान उठा हो तो प्रतापवलम्बी व सुकर्मी, और यदि बहुत ही उठा हो तो पक्षपाती तथा घमंडी और न उठा हो तो बे इमान, निर्लज्ज और अधिक स्वार्थी होता है।

शनिश्चर—का गुण है कि या तो अधिक प्रतिष्टा दे या अप्रतिष्टा, यदि इसका स्थान उठा होतो एकांत वासी, डरपोक अधिकता से अल्पभाषी चिन्तक, और यदि नीचा हो तो अल्पायु !

सूरज-से विद्या तथा गुण आते, अधिकता से दिखावटी और

कमी से अत्यंत सीधा।

बुध- विद्वान, अधिकता से चालाक, अल्पता से मूर्ख.

मंगल-सूरमा, अधिकता से निर्दयी, कमी से डरपोक.

चन्द्र-ध्यानमें मग्न, अधिकता से चिन्ता और शोक कमी से निर्विश्वास

शुक्र-सुखाभिलाषी, प्रेमी, अधिकता से भोगी न्यूनता असंभव।

किसी ग्रह का स्थान यदि अधिक रेखाओं से भरा हो तो अधिकता के लक्षण- यदि एक रेखा गहरी खड़ी हो तो उत्तम, दो अति अशुभ, यदि तीन हो तो उसके स्वभाव से अशुभ परिणाम उत्पन्न होंगे।

(३३) जिस भांति किसी मनुष्यका स्वरूप तथा शब्द दूसरे से नहीं मिलता उसी भांति हथेली की रेखाएं भी दो मनुष्यों की एकसी कभी नहीं होती प्रत्येक मनुष्य के हाथ में रंग बिरंगी टेढ़ी सीधी भिन्न २ स्थानों में छोटी बड़ी रेखाएं होती हैं जिसके के हाथों में रेखाएं बिलकुल ही न होवें वह या तो बहुत ही शीघ्र मरजाता है या अत्यंत निर्दई व वनचर होता है धन रेखा जो कलाई से निकल कर उंगलियों तक जाती है वह स्त्रीजाति के किसी मनुष्य के हाथ में आजतक देखने में नहीं आई क्योंकि उनके जीवन की आवश्यकतायें बहुत ही सूक्ष्म हैं यही प्रमाण इस विद्या का है।

[३४] प्रत्येक रेखा जितनी लम्बी, सीधी गहरी और स्वच्छ हो उतनी ही शुभ मध्य में टूटी तथा स्थान प्रतिस्थान में कटी हुई टेढ़ी अधिक चौडी या पीत वर्णकी अशुभ कही जाती है छोटी रेखा कटी और टूटी रुकावट प्रगट करती है एक रेखा पर जितनी रेखाएं आडी काटें उतना ही विघ्न कारिक यदि टूटी रेखा जुड़जावे तो विघ्न पडे परन्तु उसका निवृत होना सम्भव है रेखा पर जंजीर का चिन्ह अशुभ होता है रेखा में छोटा वृत या बिंदु होवे तो अशुभ, यदि कोई रेखा दोहरी हो तो उसका प्रभाव सहायता पाकर पुष्ट हो जाता है, रेखा में छोटी शाखाय निकली हो तो शुभ है।

[३५] प्राय यह तीन रेखा प्रत्येक मनुष्य के हाथ में होती हैं शेष किसी के हाथ में होती है किसी के नहीं इनके अर्थों में अत्यन्त हेर फेर हैं संस्कृत वेत्ता यह कहते हैं कि प्रथम आयुकी द्वितीय स्त्रीकी तृतीय बुद्धि की होती है अंगरेजी वाले कहते कि प्रथम स्त्री की द्वितीय बुद्धि की तृतीय आयु की।

अतएव हम विवश होकर वह लिखते हैं कि जो अधिक विश्वस्त ज्ञात हुआ और एक ऐसी खिचड़ी बनादेते हैं जिस में दोनो के मत परस्पर मिले इसी को सत्य जानना चाहिये ।

(३६) प्रथम यह रेखा यदि दोनो उंगलियों के मध्यतक पहुंचे तो आयु १०० वर्ष की होती है, जिस स्थान पर टूटी हो उसी काल में घोर रोग, स्वच्छ हो तो प्रेमी तथा सत्यप्रतिज्ञ वृहस्पति की ओर दो शाखायें निकली हो तो सत्यवक्ता, सुखी और प्रसिद्ध होवे, फटी हो तो स्त्री से झगड़ा रहे, बिल्कुल नहो तो निर्दयी व बेईमान हो शीघ्रही मरजावे, मोटी तथा दानेदार होवे तो स्नेह के कारण हृदय में क्लेश होवे तीसरी आतम रेखा Vital से मिलेतो दैवत मृत्यु होवे ।

(३७) दूसरी रेखामें यदि शाखायें न हो तो सन्तान हीन बिल्कुल सीधी होतो लोभी, दोहरी होतो वापौती धनमिले, शनिश्चरके नीचे खण्डित हो तो शिर में घाव लगे अथवा विक्षिप्त हो, स्वच्छ और सुन्दर हो तो बुद्धिमान, तथा श्रेष्ठ स्मृति शक्ति वाला, ऊपर वाली रेखा से कनिष्टका उँगलियो के नीचे जा मिले तो मन्द भोगी अथवा अचानक मृत्यु हो, तीसरी रेखा से मिली हो तो स्त्री पुरुष में प्रेम रहे वह मनुष्य सन्सारिक कामो में बड़ा निपुण तथा साहसी, यदि दूर तक मिली हो तो मूर्ख तथा डरपोक हो, यदि बिल्कुल न मिली हो तो निष्कपट शीघ्रकारी और बड़ा बुद्धिमान, तथा अपनी ओर से बेपरवा वा अहंकारी हो यदि एक रेखा बुध और एक चन्द्र को निकली हो तो सत्वादी, शाखायें ऊपर की ओर शुभ, यदि यह रेखा नीचे झुककर चन्द्र स्थानतक पहुचे तो विक्षित हो अथवा डूबकर मरे ।

(३८) तीसरी यह रेखा यदि पूर्ण तथा स्वच्छ हो तो बुद्धिमान आगे आरोग्य और सदैव सुखी रहे, एक दूसरी रेखा उस के ऊपर हथेली के मध्य में और हो तो धन तथा प्रतिष्ठा मिले परन्तु श्रम से दोहरी हो तो विपदी आरोग्य तथा प्रसिद्ध होवे, मध्य में विन्दुज्ञात होवे तो अधा हो, ✱ ऐसा चिन्ह होतो स्त्रियोंसे हानि एक रेखा वृहस्पति की ओर जावे तो साहसी तथा बुधिमान, शनिश्चर की ओर जावे तो सींगवाले जन्तुओं से भय हो, सूर्य तथा बुध की ओर हो तो प्रत्येक काम में सफलता प्राप्त करे चन्द्र की ओर हो तो विक्षिप्त हो या जहाज में बैठकर देशाटन करे, दोनों सिरों पर शाखायुक्त तो शारीरिक तथा बौद्धिक श्रम कदापिन करे नहीं तो बड़ा भय है यदि

यह रेखा चौडी तथा खडित हो तो सर्वदा रोगी रहे ।

(३९) Saturnine लायन आफ फेट—धनरेखा—इस से प्रतिष्ठा और द्रव्य ज्ञात होता है यह किसी किसी के हाथों मे होती है इस के आरम्भ और अत के चार स्थान है. तीसरी रेखा मे से निकले तो शुभ हथेली के मध्य मे उत्पन्न हो तो बुद्धिमान हो परन्तु दुखित रहे, चन्द्र स्थान से निकले तो दूसरे की सेवा से जीवन सुख से व्यतीत हो या दूर का देशाटन करना पड़े यदि पहुंचे से निकलकर बडी अंगुली के नख तक चली जावे तो अत्यन्त सुखी रहे यदि वे उंगली ही मे घुसे तो सिपाही हो परंतु अंत का फल बुरा है टूटी हो ॥ तो कुछ अशुभ नहीं परन्तु दोहरी हो तो अशुभ

(४०)यदि इस मे एक रेखा और चन्द्र की ओरसे आनिके तो मनपी अथवा झक्की, हृदय तथा मस्तक की रेखा पर जहां रुके तो उसी के कारण से सुख मे विघ्न–बृहस्पति की ओर जावे तो व्यापार से लाभ हो--ऊपर की ओर शाखा युक्त शुभ–नीचे से एक रेखा उस से चन्द्र की ओर निकले तो किसी स्त्री से दुःख प्राप्त हो–कलाई की ओर छोटा त्रिभुज हो तो माता पिता उसको छोडकर मृत्यु को प्राप्त हों यदि स्त्री के हाथ में हृदय की रेखा खण्डित हो कर टेढ़ी बढ़े तो विधवा होवे ॥

(४१) यदि सूर्य की रेखा हाथ में वर्त्तमान हो तो कामना सफल और प्रसिद्ध हो तथा विद्याभिलाषी होवे, यह यातो चन्द्र स्थान से निकलती है या vital रेखा से सूर्य की ओर जाती है आरोग्यता तथा हृदय की रेखा यह कलाई के समीप से निकल कर बुध तक जाती है दीर्घ हो तो शुभ,खंडित हो तो अशुभ, दोहरी हो तो बहुत ही सुभ Vital रेखा से निकले तो निर्बल ग्रंथि खावे तो अशुभ Ringof venus रिङ्ग आफ वीनस अर्थात एक रेखा गोल दूसरी उँगली से तीसरी उगली तक यह रेखा तो किसी मनुष्य के होती है जो बड़ा भोगी होता है ।

(४२) स्त्री अर्थात् व्याह की सख्या की रेखा बुध स्थान पर कनिष्ट का के मूल मे होती है ।

सन्तान—की रेखाएं मंगल तथा चन्द्र स्थान पर हृदय की रेखा से नीचे होती है, मोटी रेखा पुत्र की– और पुत्री की पतली खण्डित

और छोटी रेखायें उनका शीघ्र मरना प्रगट करती हैं। अंगूठे के मूल में मोटी रेखाएं भाइयों की, और पतली बहनों की संख्या प्रगट करती है परन्तु इस के सम्बन्ध में पृथक २ सम्मतियें है कुछ निश्चयनही हुआ।

ऐसी प्रत्येक रेखा जो अति छोटी तथा खंडित शाखाओं युक्त हो तो वह यह प्रगट करती है कि वह जीवित न रहैगा॥

(४३) Cross क्रास अर्थात् ऐसा चिन्ह प्रत्येक स्थान में अशुभ होताहै केवल बृहस्पति पर शुभ Star ग्रह-* ऐसा चिन्हभी प्रत्येक स्थान में अशुभ होता है जैसा स्थान वैसा ही फल।

अंचल (जंजीर) टापू वृत्त यह सब चिन्ह अशुभ यदि हाथ में थोड़ी रेखाऐं मिलकर वर्ग तथा त्रिभुज पूर्ण और स्वच्छ बनावें तो अत्यंत शुभ मछली ध्वजा अंकुश हाथी मंदिर पहाड़ कमल इत्यादिक के चिन्ह पतली रेखाओं से हाथ में बने हुए हों तो बड़ा भाग्यशाली अंगूठे में जौका चिन्ह हो तो बहुत ही शुभ है वह मनुष्य कृष्ण पक्ष में उत्पन्न हुआ होगा।

(४४) **कलाई की रेखाएँ**—यदि स्वच्छ और सीधी हों तो आरोग्य और यदि अज्ञात हों तो अपव्यय होगा प्रत्येक रेखा पचीस वर्ष की आयु प्रगट करती है।

तीन रेखाऐं शुभ, यदि चार हों तो बहुत ही शुभ यदि यह रेखाऐं पहुंचे के दोनों ओर घूम जावें तो अत्यंत ही शुभ।

अंगूठे की पीठ की ओर जोड़ पर जो तीन रेखाऐं होती है उनसे बाल्यावस्था, युवावस्था, और वृद्धावस्था का समय प्रगट होता है जो रेखाऐं बहुत स्वच्छ हों उस में सुख मिले जो खंडित हो उसमें दुख रहे।

अंग सामुद्रिक

(४५) अब हम मुख और शरीर के सम्पूर्ण अंगों को देखकर गुप्त भेद जानने के नियमों का वर्णन करते है।

सम्पूर्ण शरीर में इतनी वातें देखी जाती हैं, ललाट, भृकुटी, नेत्र नासिका, मुख, दन्त, ठोढ़ी, श्रवण, वाल, गर्दन ,छाती, पेट, हस्त, पाद, देह की माप, वर्ण, गंध, वोलचाल, और भौंरी, मस्सा. तिल इत्यादिक

पुरुषों के सामुद्रिक से स्त्रियों का सामुद्रिक विलकुल ही न्यारा है,कोई वात जो पुरुष को शुभ होतीहै वही स्त्रीको अशुभ, वहुधा चिन्ह जो पुरुष के दाहिनी ओर देह पर शुभ होते हैं वही स्त्री के वांई ओर अशुभ समझे जाते है।

(४६) यों तो प्रत्येक स्वरूपवान मनुष्य सदैव ही अच्छा होता है। शरीर गुदगुदा, वर्ण स्वच्छ और सम्पूर्ण अंग यथोचित्त तथा सुन्दर हों, परन्तु सुन्दर होने पर भी अंगों की न्यूनाधिकता या छोटे वड़े होने से स्वभाव तथा भाग्य में वड़ा अंतर पड़जाता है यदि ऐसा न होता तो स्वरूपवान मनुष्य ही संसार के राजा, धनी, और विद्वान हुआ करते और कुरूप मनुष्य सेवक होते, सामुद्रिक मे सुंदरता इसका नाम है कि समस्त शरीर के अवयव तथा तिल वा आकार यथोचित्त हों अंगों की वनावट परही स्वभाव निर्भर है, मनुष्य हो या पशु, सव में ही देखनेसे ज्ञात होगा,किवस्तुतः मुख्य स्वभाववाले जानवर किसी मुख्य प्रकार का आकार तथा अंग रखते हैं हिंसक जंतुओं के नेत्र, दांत, और नाक इत्यादिक चरनेवाले पशुओं से विलकुल ही विपरीत होती हैं।

(४७) जव हम किसी अजनवी मनुष्य को देखते है जिससे हम विलकुल अपरिचित है तो प्रथम उसके स्वरूप को ध्यान पूर्वक देखते हैं और किंचित विलंव के पश्चात् कुछ न कुछ फल निकाल लेते हैं और अनुमान कर लेते है कि यह मनुष्य चतुर, सीधा, कंगाल, घमंडी सुस्वभाव, भोगी, विद्वान् या कैसा है, यह एक मुख्य सृष्टि नियम है। अतिरिक्त इस के किसी मनुष्य की आंख और होठ आदि की गति और मस्तक तथा भृकुटी के चढ़ने उतरने से ही तत्काल ज्ञातकर सकते हैं कि उस के हृदय में क्या है और क्या कहना चाहता है।

(४८) जव कोई मनुष्य लज्जावान, भयभीत, क्रोधित, या प्रसन्न होता है तो उस के मुख पर चिंह प्रगट होते है।

पुनः—यदि एक मनुष्य का स्वभाव लज्जायुक्त तथा क्रोधवंत हो तो क्या उस के चिन्ह सदैव मुख से प्रगट न होंगे ! मनुष्य यदि मदित (नशा में) हो तो उस के मुख की क्रांति कुछ वदल सी जा-

यगी, फिर क्या जो सदैव उस का सेवन करे वह छिपा रहता है, इसी भांति यदि एक मनुष्य चाहे कितना ही दुर्बल क्यों न हो उस के सन्मुख किसी मोटे रोगी को देखकर भली भांति बतला सकते हैं। जिस ने सदैव शासन किया है उस के मुख में एक मुख्य अकड़ होती है इत्यादि ऐसी ही बातों का अनुभव कर के विद्वानों ने यह विद्या निकाली प्रत्येक बात को पशुओं के प्रकार और मनुष्यों की जात में मिला मिलाकर निर्णय किया जो सब में एक सा नियमानुसार पाया उसी को ईश्वरीय नियम समझा।

(४९) मस्तक—ललाट जिस मनुष्य का भरा हुआ चौड़ा हो चाहे ऊंचा न हो वह तीव्र बुद्धि का होगा, बहुत ऊंचा, लम्बा, चौड़ा, हो तो मूर्ख, ऊपर को निकला हुआ या ऊंचा कम चौड़ा हो तो मूर्ख ऊपर की ओर ढलवां स्वच्छ जिस पर रेखा न हों परन्तु रिस में रेखा उत्पन्न हो जावें वह बुद्धिमान नासिका के समान ऊंचा और उस से दुना चौड़ा हो और कनपटी यथोचित भरी हो तो श्रेष्ठ भृकुटी के मध्य में दो रेखाएं खड़ी हंसते समय बन जावें तो श्रेष्ठ, नीली नसों का तिलक सा चिन्ह प्रतीत होवे तो अति शुभ।

स्त्री—का माथा लम्बा तथा नसदार हो तो व्यभिचारिणी, यदि बहुत लम्बा चौड़ा हो तो विधवा, व्यभिचारिणी।

(५०) मस्तक की रेखाएं—जो बहुधा युवावस्था के उपरांत भली भांति प्रगट होती हैं, यदि सीधी तथा पूर्ण हों तो अत्यन्त शुभ होती हैं, इन से आयु, धन तथा प्रतिष्ठा प्रगट होती है, इस भांति से कि यदि पांच रेखा हों तो १०० वर्ष की आयु, एक हो तो ४० वर्ष यदि बिल्कुल न हों तो २५ वर्ष इत्यादि २ इसी गणना से क्रमानुसार द्रव्य और प्रतिष्ठा समझना चाहिये, इन से इसी भांति स्वभाव भी ज्ञात होते हैं।

यदि रेखा नं० १ बालों के समीप स्वच्छता से हो तो बुद्धिमान टेढ़ी या खंडित हो तो लोभी उस से नीचे नं २ के स्थान पर यदि रेखा स्वच्छ हो तो ईमानदार अस्वच्छ हो तो भोगी, फिर उस से नीचे नं० ३ यदि स्वच्छ हो तो सिपाही नहीं तो लड़ाका, फिर यदि सीधी भृकुटी के ऊपर स्वच्छ हो तो धनवान नहीं तो लोभी, फिर बाईं भृकुटी के ऊपर स्वच्छ हो तो देशाटन करनेवाला नहीं तो असत्यभाषी फिर दोनों भृकुटियों के मध्य में स्वच्छ हो तो सब को प्रिय नहीं तो

शीघ्र दुःख भोगनेवाला फिर यदि नासिका में तीन रेखाएं हों तो वृद्धता यदि अधिक हो तो व्यर्थ भापी ।

(५२) भृकुटी मिली हुई हो तो कामी व विदेशी, आंख के निकट हो तो बुद्धिमान कोमल चित्त नहीं तो मूर्ख, कठोर हृदय यदि न हो तो मूर्ख, दुर्बल कोमल वाल हों तो कोमल चित्त और कड़े वाल हो तो कठोर हृदय, मोटी तथा काली भृकुटी श्रेष्ठ, प्रारम्भ में मोटी हों तो प्रत्येक काम में शीघ्रता करनेवाला, तीव्र बुद्धि, दु गी की ऊंची नीची झुकी हुई नहीं, मोटी हो तो बुद्धिमान, पतली उत्तम प्रकृत, यदि ऊपर से उठी तथा भारी हो तो बुद्धिमान ॥

स्त्री—अधिक वड़ी व कम वाल युक्त तथा मिली हुई हो तो अशुभ

(५२) नेत्र—श्याम हों तो स्नेही, व सरलचित अत्यंत श्याम हो तो प्रेमी नीली स्वभाव, नीली पीली हो तो अधीर, स्वार्थी, नीली लाल हो तो परम प्रेम नीली हरी हो तो बुद्धि व साहस, पीली हो तो अधीर हरी से धोखा, सफेद से बुद्धिमान, भूरी से कवि, व कारीगर स्वच्छ और वड़ी हों तो सौन्दर्य्य ग्राही छोटी हो तो मूर्ख वड़ी हो तो वड़ी आयुवाली, गोल हो तो सूरमा तथा चोर, भली भांति खुली हुई हो तो निष्कपट फिरनेवाली दुर्जन, लम्वी आंख तथा मोटी पलक हो तो वुद्धिमान, छोटी वड़ी हो तो दुःखी कोए लाल हों तो श्रेष्ट, वाहर को और घनी काली और छोटी हो तो श्रेष्ट, पलक शीघ्र २ लगे तो शुभ, अंधे की अपेक्षा काना और काना की आपेक्षा भेंड़ा खोटा होताहै

स्त्री—की आंख पीत रंग की हो तो व्यभिचारिणी, लाल हो तो कामातुर, काली हो तो वन्ध्या वा व्यभिचारिणी ।

(५३) नासिका--वहुत लम्वी हो तो विद्वान् और प्रवंधी, तोते की सी हो तो सूरमा तथा शासन कर्त्ता, पतली हो तो विद्वान् नथने चौड़े हों तो कवि, वहुत ऊंचे हों तो हठी, और प्रवन्ध शक्ति अधिक चौड़े खुले नकुए हों तो भोगी, ऊंचे हों तो साहसी, नकुए गोल तथा कम चौड़े हो तो श्रेष्ठ नाक न वहुत पतली न मोटी हो तो शुभ, टेढ़ी चपटी सिकुड़ी और वैठी होतो अशुभ, नाकसे होठ समीप हो तो सुकुमार होता है ।

स्त्री—की नाक वड़ी हो तो अशुभ छोटी हो तो शुभ ॥

(५४) मुख, चौड़ा हो तो घमंडी मंदभागी, यदि छोटा हो तो लोभी, गोल और समान हो तो श्रेष्ट चौकोर हो तो छली लंवा, टेढ़ा,

और नीचा हो तो अशुभ, (यदि किसी पशु के सदृश होवे तो वैसाही स्वभाव होवे)

गाल—लाल औरबड़े हों तो श्रेष्ठ ऊंचे हों तो स्वार्थी पतले और रोम युक्त हों तो अशुभ, स्त्री के गाल चिकने होवें तो प्रेमी, पीत वर्ण के होवें तो दुस्वभाव, गोल और भरे हुए हो तो श्रेष्ठ ।

ओष्ठ—लंबे लाल और मोटे हों तो श्रेष्ठ छोटे हों तो निकृष्ट, ऊपर का होठ निकला हुआ हों तो बुद्धिमान, नीचे का बड़ा और लटकता हो तो कामातुर, दोनों न मिलें तो वृहद्वक्ता मुंह बिलकुल बंद हो जावे तो दृड़ प्रतिज्ञा, लंबा मुंह और पतले होठ होवें तो बुद्धिमान, यदि ऊपर का अधिक लम्बा हो तो मधुर भाषी, ऊपर का मसूढ़ा दीखे तो स्वार्थी ॥

जिह्वा, बड़ी, लाल कोमल और पतली हो तो श्रेष्ठ चौड़ी, मोटी, काली, दानेदार श्वेत, और पीली हो तो अशुभ ।

(५५) दांत, श्वेत, चमकीले, एक समान हों तो श्रेष्ठ ३२ हों तो उसकी आज्ञा का सब कोई पालन करें यदि नीचे न्यूनाधिक हो तो अशुभ, थोड़े और अंतर पर होतो भी अशुभ बड़े हों तो दीर्घायु और सब पर दया करनेवाला, छोटे हों तो अल्पायु हिंसक जंतुओंके से हों तो कठोर हृदय चौपायों कैसे हों तो पवित्र बाहर को निकले हों तो दुष्टस्वभाव भीतर को और मुड़े हों तो दुर्बल, नीचे की पंक्ति ऊपर वाली के ऊपर होजावे तो कठोर हृदय दांत पर दांत हों तो बंधु विनाश हो, मसूढ़े न दीख पड़ें तो सत्यवादी, छोटे बड़े और टेढ़े हों तो अशुभ, जन्म समय से ही दांत निकलें या प्रथम ऊपर की ओर निकलें तो अशुभ ॥

यदि स्त्री के दांत बहुत बड़े हों तो अशुभ, छोटे हों तो शुभ पीत वर्ण के तथा छोटे बड़े हों तो दुखदायी, मोटे और श्वेत वर्ण के अशुभ

(५६) **ठोढ़ी**—यदि गोल और भरी हुई होवे तो उत्तम पतली बहुत बड़ी दो भागवाली दरिद्री की मुंह को आवृत्त करे तो स्वाद प्यारी कोमल और मोटी हो तो सुखाभिलाषी, यदि चपटी हो तो कठोर हृदय तथा लोभी, दबी हुई हो तो मूर्ख, चपटी चौकोन्ही हो तो बुद्धिमान छोटी हो तो डरपोक बहुत गुदगुदी हो तो भोगी, यदि उस में गड्ढा हो तो सुख भाव होठ और ठोढ़ी के मध्य में गहरा गड्ढा हो तो तीव्र बुद्धि ।

स्त्री--की ठोढ़ी यदि बहुत लम्बी, मोटी और रोम युक्त हो तो विधवा ॥

(५७) **श्रवण**--यदि कान बड़ा और वलयां होवे तो तत्व वेत्ता प्रवन्ध शाली, लटकता धनवान, पतला तथा नोकीला हो तो दुस्वभाव, यदि कान बड़ा और छिद्र छोटा होवे तो सूरमा तथा बुद्धिमान, लम्बा और मोटा हो तो श्रेष्ठ पतला नसदार और अधिक लंबा हो तो अशुभ, उठा हुआ सांगीतोत्साहक बहुत मोटा हो तो विषयाभिलाषी और मूर्ख, राम युक्त हो तो दीर्घायु, चौड़ा हो जो सन्मुख से पूर्ण दीखे तो निर्दय, कान तथा नाक के मध्य में थोड़ा ही सा स्थान हो तो कठोर हृदय भृकुटी से ऊंचा हो तो हिंसक जंतु के से आचरण वाला नाक से नीचा हो तो डरपोक।

(५८) **केश**--यदि वाल चिकने, नोकीले, काले, शाख रहित, लम्बे कोमल हों तो शुभ, बहुत, अधिक होवें अथवा नहीं होवें तो अशुभ यदि थोड़े हों तो दीर्घायु घने हों तो बुद्धिमान न हों तो कपटी, छोटे तथा लम्बे हों तो दीर्घायु, ऊपर वाल न उत्पन्न हों तो धनवान, यदि लाल रंग के हों तो स्त्र्यासक्त।

(५९) **मूंछ**--बीस वर्ष के उपरांत निकले तो अत्युत्तम इस से प्रथम निकलें तो निकृष्ट, डाढ़ी मूछ बालदार और घनी होवें तो श्रेष्ठ स्त्री के मूंछ हो तो विधवा होवे।

रोम--काले रंग के हों तो अशुभ, लाल रंग के हों तो शुभ एक छिद्र में से एक या दो हों तो उत्तम तीन हों तो अशुभ गुच्छेदार हों तो दरिद्री, पुरुष के सम्पूर्ण शरीर में रोम हों तो दीर्घायु, स्त्री के शरीर में हों तो विधवा, या वन्ध्या अथवा व्यभिचारिणी।

(६०) **ग्रीवा**--यदि छोटी हो तो सज्जन, मोटी हो तो शूर, लम्बी और पतली हो तो अशुभ, टेढ़ी, हो तो निंदक, गोल हो तो शुभ टेंटुआ ऊंचा हो तो अति शुभ, तीन रेखा हों तो राजा होवे।

यदि स्त्री का टेंटुआ (गले की घेंघी, गुदगुदा और मोटा हो तो वह विधवा हो, यदि ३ रेखाएं होवें तो वह रत्न धारण करे, यदि ग्रीवा मोटी हो तो विधवा हो और छोटी हो तो बंध्या होवे।

कंधा--ऊंचे गुदगुदे हों तो उत्तम, स्त्री के अधिक ऊंचे कंधे हों तो वन्ध्या अथवा विधवा होवे, रोमयुक्त नीचे और पतले हों तो अशुभ।

कमर--टेढ़ी नसदार, रोमयुक्त, अधिक लंबी अशुभ।

(६१) भुजा--यदि घुटने तक लम्बे होवें तो शूर और प्रधान होवै, रोमयुक्त होतो दीर्घायु तथा धनी, समान तथा मोटी हो तो देशाटन करनेवाला हो शुंड की सदृश होतो श्रेष्ठ आति रोमयुक्त और छोटी हो तो अशुभ, यदि स्त्री की भुजा रोमयुक्त होतो विधवा और नसदार छोटे होतो अशुभ।

कांख--ऊंची, सुगंधित होतो श्रेष्ठ, बाल ऊपर की ओर घूमे हुये होतो श्रेष्ठ, स्त्री की कांख बिना बाल की तथा गुदगुदी उत्तम होती है।

हाथ--छंगुला अशुभ, स्त्री की अंगुलियां पृथक २ होतो अशुभ एक रेखा अंगूठे से कनिष्ठका उंगली तक गई होतो अवश्य ही विधवा हो।

(६२) छातीऊंची होतो शूर, बड़ी होतो धनवान चौड़ी होतो सज्जन, रोमयुक्त दयालु और शूर यदि बिना बाल की होतो डरपोक, निर्दय. कड़ी होतो धनवान छोटी होतो मंदभागी ऊची नीची होतो तादैघात् मृत्यु यदि स्त्री की छाती रोमयुक्त होवै तो पुरुष घातक अधिक लम्बी और चौड़ी होवे तो व्याभिचारिणी, सम होतो सुंदर, सुखी, तथा असम होतो अशुभ है।

(६३) स्तनस्त्री के बड़े होतो श्रेष्ठ छोटे रोमयुक्त होतो बन्ध्या विषम होतो अशुभ, अति अंतर पर होतो विधवा चलते में मिलजावें तो अशुभ, घुंडी लम्बी होतो व्याभिचारिणी और गोल होतो शुभ।

(६४) पेट--ऊंचा होतो श्रेष्ठ, समान सम और सिलवट न होतो राजा हो यदि एक रेखा होतो अस्त्र से मृत्यु,दो अथवा तीन होतो श्रेष्ठ, घड़े की सदृश अथवा लम्बा होनो अशुभ, यदि स्त्रीका पेट रोमयुक्त लम्बा, तथा चौड़ा होतो बन्ध्या होवे, हलका तथा पतला होवे तो श्रेष्ठ ओर तीन रेखाएं होतो और भी श्रेष्ठ।

नाभि--रोमयुक्त होतो संतान अधिक उत्पन्न हो, रेखाके भीतर होतो अशुभ, गहरी होतो श्रेष्ठ, दाहिनी ओर को चक्र होवे तो अत्युतम, इसी भांति स्त्रियों को भी जानो।

कुक्षि--छोटी हो तो राजा, स्त्री की लम्बी और चौड़ी हो तो श्रेष्ठ यदि मोटी होवे तो स्त्री बन्ध्या होवे।

इन्द्री—पुरुष की इन्द्री छोटी, पतली, काली, कोमल जिसपर नसें दीख पड़े उत्तम, अत्यन्त बड़ी अथवा छोटी और मोटी मंद भागी की चिकनी, सीधी हो तो उत्तम कड़ी तथा टेढ़ी अशुभ॥

अंड कोश—गोल, लम्बे, तथा समान हों यह श्रेष्ठ, छोटे हों तो अल्पायु विषम हो तो भोगी, केवल एक हो तो जल में डूबकर मृत्यु पावे, सूखे तथा मोटे हों तो वह दरिद्री होवे ॥

भग व गुदा ...इत्यादि का वर्णन करनेमें लाज आती है यद्यपि विद्या की बातों में ऐसी बातों का वर्णन करने में कोई हर्ज नहीं परन्तु मुख्यकर इस विचार से छोड़ दिया कि इस को कौन देखने बैठता है और कौन दिखा सकता है ॥

(६६) टांग--धड़ से अधिक लम्बी हो तो शीघ्रगामी और कम लम्बी हो तो शूर ॥

जंघा....छोटी, गोल, गुदगुदी और ढलवां हो वह श्रेष्ठ है।

पिंडली....गुदगुदी हो वह श्रेष्ठ।

घुटना--गुदगुदे और गोल हों वह श्रेष्ठ रोम युक्त हों तो दीर्घायु।

स्त्री--की टांग, पिंडली जांघ इत्यादिक चिकनी हो वह श्रेष्ठ रोम युक्त हों तो विधवा अवश्य हो, यदि नसें दीख पड़े तो अशुभ।

चाल--सम तथा शीघ्र चले वह श्रेष्ठ, मंद २ तथा असम हो वह अशुभ गिरगिट तथा मेंढक की सी चाल अशुभ है।

(६७) पांव—बड़ा हो तो दरिद्री, छोटा हो तो शुभ अत्यताकार तथा लाल राजा का खड़ाऊं के आकार का हो तो श्रेष्ठ परन्तु स्त्री की मृत्यु हो, सम्पूर्ण रेखाएं चक्र आदि हाथ की समान हो तो धनहीन हो और एक स्थान पर कदापि न स्थिर रहे।

गूल्फ--गुदगुदा हो तो उत्तम, कड़ा तथा रोम युक्त हो तो निःसंतान एड़ी छोटी कोमल तथा पसीना रहित होवे वह श्रेष्ठ।

उंगलियां--बड़ी हों तो अत्युत्तम, छोटी हो तो स्त्री मरे समान की हो तो अच्छी छोटी और मोटी हो तो द्रव्य छोड़ कर मरे छोटी हो तो भोगी बड़ी हो तो धनी।

स्त्री के पांव का सामुद्रिक- अंगूठा चौड़ा होतो विधवा, कच्छा हो तो अच्छा गोल होतो दुःस्वभाव, उंगलियां नीचे ऊपर होतो अशुभ यदि पहिली उंगली अंगूठे से बड़ी होतो व्यभिचारिणी और कोई अंगुली धरती कौन छुवेतो व्यभिचारिणी तथा पुरुष घातक यदि पैर की पीठ ऊंची रोम रहित नसहीन और गुदगुदी होतो श्रेष्ठ ॥

(६८) **शरीर की माप**-मनुष्य के अङ्गो का यथार्थ अनुक्रम है- शरीर इस भांति है यदि इससे न्यूनाधिक होतो दोष जानना चाहिये धड़ और टांग समान नाभि से छाती तक समान छाती से नाक तक के शिर की गोलाई के समान ग्रीवा की गोलाई और उतना ही कंधो का अंतर ठोडी से मुंह तक मस्तक की चौड़ाई सम्पूर्ण देह अपने हाथ से सात विलस्त का ॥

और गुल्फ चार अंगुल, पिंडली २४ अंगुल, घुटने ४ जघा १२ पेट २४ ग्रीवा, और मुंह १२ पांव का तलवा १४ पाव की चौड़ाई ६ भुजा २६ हथेली ५ अंगूठा ४ ग्रीवा की गोलाई २४ अंगुल सम्पूर्ण देह १०८ अंगुल का होता है इससे जितना कम उतना ही अशुभ

(६९) **बोझ**--जितना अधिक हो उतनाही धन वान। चमड़ा जितना चिकना हो उतनाही श्रेष्ट यदि काला होतो बलवान, गेहुए रंग का होतो श्रेष्ट, गोरा होतो दयालु, चमकता हुआ काले रंग का होतो अशुभ. श्वेत व पीत होतो रोगी, रुधिर लाल होतो श्रेष्ट, काला तथा श्वेत होतो अशुभ, वीर्य सुगंधित तथा श्वेत कुछ पीला पन लिये हुए होतो शुभ।

यदि एक रग ही दो या तीन छींकें आवे तो शुभ, शब्द या तो धीमा प्यारा हो या वीर शेर की समान हो, चबा चबाकर बोलना रुकरुक न बोलना अशुभ।

एक बड़ी हाण्डी में ऊपर तक पानी भरकर उस मे बैठे और उस मे से यदि १२ सेर पानी निकलजाय तो शुभ ॥

तिल मस्सा आदि

अपना सिक्का जमाते है, प्रथम तो हम ऐसे तिलों के लक्षण वर्णन करते है कि जिन के उत्तर होते है

(७२) मस्तक पर दाहिनी ओर हो तो उस का उत्तर पेट या भुजा पर दाहिनी ओर होगा, यदि ऐसा तिल पुरुष के अंग मे होतो वह सदैव सुखी रहे यदि स्त्री के शरीर पर होवे तो उसका स्वामी प्रसन्न रहे, मस्तक पर बाईं ओर हो तो उत्तर पेट या भुजा पर बाईं ओर हो फल स्त्री पुरुष दोनो ही को अशुभ हो दाईं भृकुटी के ऊपर हो तो उस का उत्तर दाहिनी छाती पर हो और स्त्री पुरुष दोनो धनवान होवे बाईं भृकुटी के ऊपर होवे तो उसका उत्तर छाती पर बाईं ओर होगा यदि ऐसा होवे तो स्त्री पुरुष दोनों ही को बाधा करनी पड़े । दोनो भृकुटियो के मध्य मे हो तो इस का उत्तर पेट के मध्य मे पुरुष वक्ता स्त्री अहंकारिणी, यदि नाक पर हो तो उसका उत्तरनाभि मे पुरुष स्त्रियो से स्नेह रक्खे स्त्री का ब्याह उत्तम स्थान मे हो, कानपटी पर का उत्तर कोखपर सीधी ओर हो तो पुरुष प्रसन्न रहे स्त्री विधवा, बाईं ओर हो तो असाध्य रोग, यदि कान के निकट हो उस का उत्तर पेटपर, दाहिना बाया स्त्री पुरुष दोनो के लिये दुखदाई । नाक की नोक पर हो तो उसका उत्तर गुदापर पुरुष अल्पायु हो स्त्री आत्मघात करे, गाल परका उत्तर कूल्हे पर दाहिना शुभ बाया अशुभ स्त्री पुरुष दोनो को ऊपर के होंठ पर हो तो उसकाउत्तर गुदापर फल रक्त का दुःख होता है नीचे के होठ पर हो तो घुटने पर परोक्ष से व्यापार होवे, ठोडी पर होतो पट्ठे पर या पाव पर दाईं ओर हो तो शुभ बाईं ओर होवे तो अशुभ होवे ॥

३ कपाल सामुद्रिक

(७५) Phrenology--अर्थात् कपाल सामुद्रिक की विद्या का सन् १८०० ई० से कुछ पूर्व जर्मनी के एक डाक्टर गाल साहब ने आविष्कार किया, इस के उपरांत सन् १८३० ई० में सुपर्जीम साहबने जो एक बड़ा विद्वान डाक्टर था उस में और भी नई बातें निकाली और उस के नियम बनाए इस से पूर्व यह विद्या एक दूसरी दशा में सहस्रों वर्ष से चीन देश में प्रचलित थी, हमारी भाषा में भी थोड़े से वाक्य (खप्पड़, दिमाग जो ललाट में लिखा है माथा ठोकना आदि) ऐसे हैं कि जिन से प्रगट होता है कि इस विद्या से कुछ न कुछ हमारे पुरषा अवश्य ही ज्ञातज्ञ थे ।

(७६) बहुत काल तक विद्वान लोग इस बात का चिंतक करते रहे कि जैसे रुधिर की उष्णता और उस के चलने से शरीर चलता फिरता है वैसे ही मन, बुद्धि और इन्द्रियों की निमित्त कारण क्या है वह कौन है जिस से हृदय में शक्ति उत्पन्न होती है, परन्तु इस विद्या के ज्ञात होने से अंत में यह विषय इस भांति सिद्ध हो गया कि मस्तिष्क वह स्थान है जिसका सम्बन्ध मन से है जिस भांति आंख से देखते और कानसे सुनते है उसी भांति मस्तिष्कके द्वारा समझते और इच्छा करते हैं

(७७) फिर मस्तिष्कके भी कई भाग हैं कोई बुद्धिका कोई इच्छा का कोई स्नेह तथा घमंड का यदि समस्त बाते एक ही मस्तिष्क में संयुक्त होती तो प्रत्येक मनुष्य बुद्धिमान होता और अतिरिक्त बुद्धिमान होने के एक ही मनुष्य दयालु, परिश्रमी, अहंकारी, दीन, आलसी प्रेमी, कठोर हृदयी इत्यादि भी होता परन्तु यह सम्भव नहीं, बरन ऐसा होता है कि एक मनुष्य एक विद्या में परिपूर्ण होता है परन्तु दूसरी में परम अनभिज्ञ ॥

एक मनुष्य कीस्मरण शक्ति अत्यन्तही तीव्र है परन्तु बुद्धि बिल्कुल नहीं ऐसी बातो के देखने से ज्ञात हुआ कि प्रत्येक विषयके हेतु पृथक २ स्थान मस्तिष्क मे है ।

(७८) अब प्रत्येक स्थान का ज्ञान करना शेष रहा। फिर देखा कि जब एक बच्चा उत्पन्न होता है तो उस का शिर सन्मुख की ओर कम भराहुआ और पीछेकी ओर निकला हुआ होता है, विचार करनेसे ज्ञात हुआ कि इस में बुद्धि बिलकुल नहीं होती परन्तु स्नेह अधिक होता है इस से सिद्ध होगया कि सन्मुख का स्थान बुद्धि का है और पिछला स्नेहका, फिर ज्यों २ वह बढ़ता है उस की बुद्धि उत्पन्न होकर पुष्ट हो जाती है त्यों २ सन्मुख की ओर से भरती जाती है और युवा होने पर वह अपना यथार्थ मस्तिष्क पाता है
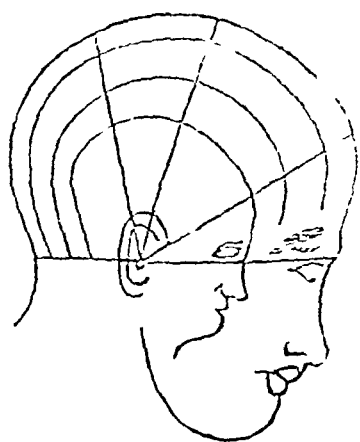
(७९) उपरोक्त रीति के अनुसार बुद्धि कराते लड़ाते सब स्थान ज्ञात हुए और यह निश्चय ठहरा कि जो स्थान भली भांति भरे हुए और उठे हुए हों जानना चाहिये कि वही गुण उस मनुष्य में अधिक है और जो भरा न हो और नीचा हो वहां जानना चाहिये कि यह गुण अति अल्प है क्योंकि मस्तिष्क पर चमड़ा और हड्डी अनार के छिलके के तरह मढ़ी हुई है जैसे मस्तिष्क के भीतर न्यूनाधिकता है वैसाही बाहर भी ऊंचाई निचाई फिर इस भांति परीक्षा की कि एक मनुष्य की बुद्धि के स्थान पर दबाव डाला अथवा घाव लगाया तो वह तत्कालही विक्षिप्त बुद्धिहीन होगया इससे उसका निश्चय होता है

अब तक इस भांति ४० विषयों के पृथक् २ स्थान ज्ञात हो चुके हैं और यह भी ज्ञात हुआ है कि स्त्री पुरुष दोनों पर हम इस विद्या की समान ही परीक्षा कर सकते हैं॥

(८०) यह स्थान हम यहां नम्बर डालकर दिखाते हैं

शिर गोल होता है इस लिये इन दो नकशों में से एक में तो सामने से सब दिमाग दिखाते हैं दूसरे में दाईं बाईं ओर के भागों का लगाई है सो अगर विचारोगे तब इन नम्बरों को दोनों चित्रों में मिलाकर समझोगे तो फिर कोई भाग शिर का शेष न रहेगा जिस का नम्बर

इन में न हो कोई भी जो लगा [illegible] है नहीं [illegible] और इसी स्थान में क्रमशः प्रत्येक नम्बर के स्थान में [illegible] होती है उनके नाम यह है ॥

१ काम २ मोह ३ ध्यान ४ धर्म ५ द्वेष ६ दुष्टता व खाने पीने का शौक ७ चालाकी ८ ग्रहणशक्ति ९ शिल्पकारी १० अहंकार ११ शेखी १२ सावधानी १३ नेकी १४ आधीनता १५ ईमान १६ मजबूती १७ आशा १८ आश्चर्य १९ ख्याली पन २० दिल्लगी २१ नकल २२ खसूसियत २३ सूरत की सूरत २४ पैमायश २५ बोझ २६ रंगत २७ मुकाम २८ संख्या २९ तरतीब ३० मामले ३१ समय ३२ राग ३३ भाषा ३४ अपेक्षा ३५ ज्ञान तर्क॥
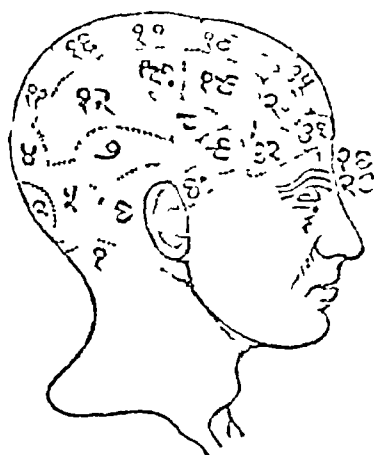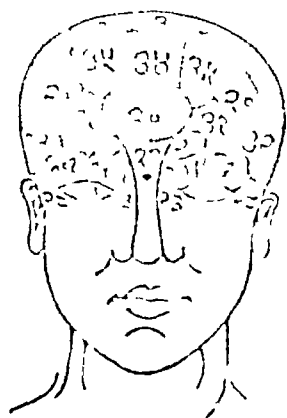
(८१) अब इन स्थानोंकी ऊंचाई निचाईसे अर्थ अपनी बुद्धिसे ऐसे लगाओ कि यदि चोरीका स्थान भलीभांति भराहुआ होता वह मनुष्य चोरहोगा यदि गढ़ाहो वह बात तक कोन छिपा सकैगा प्राणको स्थानभरा हुआ होतो उस को अपने प्राण बहुत प्यारे होंगे परन्तु गढा होतो मरने से किञ्चितभीन डरैगा यदि स्थिरताका स्थानभरा होतो घरमें रहनापसन्द करेगा यदि गढ़ा हो तो देशान्तरोंमें भ्रमणतथा यात्राकरना इसी भांति आंख के समीप के स्थान प्रगट करते है कि शकल के स्मरण रखने के अधिक शक्ति है अथवा रंग, ढंग और बोझ के जानने के और गणित आदि के लगाने की कैसी शक्ति है ॥

(८२) जिस भांति घोड़ा का व्यौपारी देखते ही बतला देता है

कि अमुक घोड़ा शीघ्रगामी है और अमुक भार लेजा सकता है ऐसे ही इस विद्या का ज्ञाता तथा अभ्यासी भी देखते ही बतला सकता है कि अमुक मनुष्य किस काम को भली भांति कर सकता है यद्यपि बिलकुल मनुष्य की शकल का होता है परन्तु उस के मस्तिष्क की बनावट में अंतर होने के कारण उस के स्वभाव में कितना अंतर होता है

(८३) उपरोक्त चित्र में जो २ बातें स्थिर की गई हैं उन से तो कुछ समझ में न आया होगा कि किस भांति किसी मनुष्य के बुरे या भले स्वभाव का ठीक वृतांत ज्ञात होता है सो हम उस की युक्ति वर्णन करते हैं ॥

अहंकारी—जिस मनुष्य के स्थान घमंड पसंद, कठोरता बहुत भरे हों

विद्वेषी—जिस के स्थान पसंद, प्राप्ति और छिपाव बहुत भरे हों

क्रूर—जिस के स्थान लड़ाई तथा दुःख दाई बहुत भरे हों।

आक्षेपी तथा कटाक्षी—जिस के स्थान लड़ाई और तरतीब तथा समानता बहुत भरे हों फिर कई बातों के संयोग से इस भांति परिणाम निकाल लेते हैं जैसे जिस मनुष्य के स्थान बुद्धि और लड़ाई दोनो भरे हों तो वह केवल प्रत्येक बात में अक्षेप किया करेगा जिस के भलाई और लड़ाई दोनो स्थान भरे हों वह बुरे मनुष्यों से घृणा करेगा जिस के धैर्य और प्राप्ति दोनो स्थान भरे हों वह बड़ा साहसी तथा सफलता प्राप्त करने वाला होगा। इन बातों के जानने और वर्णन करने के वास्ते बुद्धि की आवश्यकता है बिना बुद्धि के कोई विद्या किसी काम की नहीं॥

चित्रकार--जिस के रंग, स्वरूप, विस्तार (अभिन्न) और ध्यान के स्थान साधक भरे हों ॥

यदि इस के अनुसार कोई व्यापार प्रारम्भ किया जावे तो अवश्य ही सफलता प्राप्त होगी।

(८५) इस भांति यह निश्चय हो गया कि एक मनुष्य के सिर पर हाथ और ऊंचाई निचाई टटोलने से ज्ञात होसकता है कि उस के स्वभाव में क्या२ बातें हैं परन्तु सिर में बाल होनेसे इस में थोड़ी सी रुकावट होती है अतिरिक्त इस के टटोलने और देखने से ऐसा सत्य अनुमान प्रत्येक स्थान का नहीं होता अतएवयह नियम स्थिर हुआ कि कान के छिद्र को केन्द्र मान कर चारों ओर सिर को नापा
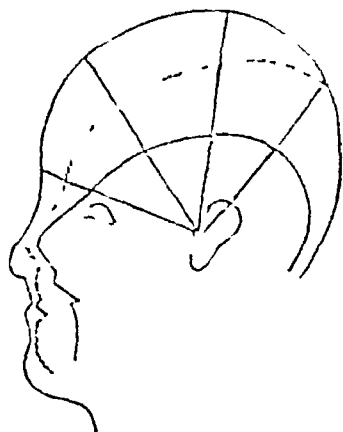
जावेकि किस ओर का किनारा अधिकदूर हैइस भांति ठीक ज्ञात होजायगा कि कौनसा स्थान अधिक भरा हुआ है ॥

(८६) इन चित्रो पर ध्यान देने से यह बात भली भांति समझ में आजायगी, देखोइस प्रथम चित्र में रेखा वाला चहरा मूर्ख हठी का है और बिंदुओं वाला चहरा घातक का है ऊपर वाला चहरा एक कवि का है दूसरे चित्र म बिंदुवोंवाला चहरा एक अपराधी का है और रेखाओं वाला चिहरा एक सुस्वभाव मनुष्य का–इन मेदेखो भली भांति अन्तर प्रगट होता है ॥
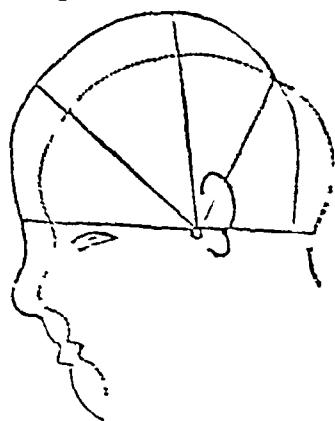
(८७) यहां हम प्रमाण के हेतु कुछ इतिहासिक मनुष्य के चहरों का अन्तर दिखलाते है।

(१) पोप ऐलिक्जेन्डर चौथा जो बड़ा दुष्ट था ॥

(२) जीनो फिलास्फर।

(३) दूसरा फिलप स्पेन का बादशाह जो बड़ा निर्दयी था ॥

(४) ओबर लिन; एक ईसाई कि जो देश हितैषी था ।

इस चित्र में देखना चाहिये कि खोपड़ी के प्रत्येक किनारेतक जो रेखाएं कान से खींची जावैगी वह कैसी विषम होगी अर्थात एक चित्र में बुद्धि का घर खाली और काम का भरा है दूसरे मे बुद्धिका बहुत भरा है तीसरे में घमंड का और चौथेमे विद्वताका घर भरा है
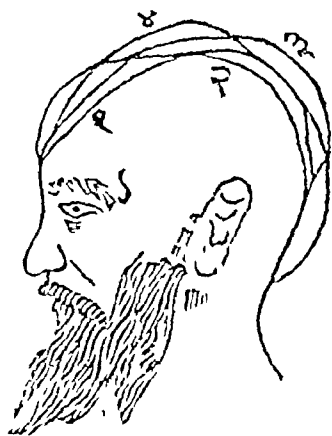
(८६) अब हम बहुतही संक्षेप रीतिसे इस विद्या के आवश्यकीय नियमों का वर्णन करते है सूक्ष्म शरीर के इत्यादि नियमोंको इस हेतु नहीं लिखते कि पाठकगण में की सदी २० उन के बरसक और उन दील में से दो एक समझने के योग्य होंगे ।

(८७) अब हम थोड़ीसी मोटी बातें उदाहरणकी रीति परसमझातेहैं प्रथम चित्र में समझ का स्थान भली भांति से भरा है । ऐसा मनुष्य प्रत्येक बात को बहुत ही शीघ्र समझ लेता है और नयपना की खोज करता है अतएव अपना काम बड़ी बुद्धिमानी से परिपूर्ण करता है । परन्तु दूसरे चित्र में ध्यान का स्थान बहुत भरा हुआ है ऐसा मनुष्य फिलासफी और गणित आदि में बड़ा ही तीव्र बुद्धि होता है परन्तु विद्या के अनुसार बर्ताव कम कर सकता है यदि शिर में ललाट नीचे ऊपर समानता से भरा हो उस में बुद्धि और अभ्यास करने की शक्ति बहुत होती है ऐसा मनुष्य जिस कार्य को करेगा उस मे उस को सफलता प्राप्त होगी ॥

८८ इसी प्रकार यह बातें निश्चित हुई हैं कि

जिस का शिर मनुष्य से ऊंचा हो ऐसा मनुष्य बड़ा ही कृपालु,दयालु उदार, सुस्वभाव और आज्ञा पालक होता है जिस का शिर पीछे का ओर बढ़ा हुआ है ऐसा मनुष्य बड़ा ही स्वार्थी,हठी और घमंडी होता है । फिर यदि शिर ऊपर से समान होतो उस मनुष्य में यह दोनों

प्राप्त करते है, और मा बाप अपने बालकों का स्वभाव पूछने जाते है कि उन को किसी शिक्षा दी जावे इस की खोज दिन प्रतिदिन हो रही है और नित्य नई २ बाते ज्ञात होती है ॥

स्वभाव जानने की और अनेक रीतें

(९६) वर्तमान समय के विद्वानों ने खोज कर करके कुछ नवीन सामुद्रिक निकाले है यद्यपि इन सब को फरनियो ढीने प्रचलित किया अतएव उन्ही पर प्रमाणत करते है। भारत वासियों को उचित है कि इसी भांति श्रम कर के अपनी जाति के सम्बन्ध मे खोज करे।

कि वह यह है कि वस्त्रो कोनध्यान देना लेखिये कर वार्ता को सुनकर और चित्र को देख कर आदि आदि अब हम उनका पृथक पृथक वर्णन करते हैं

(९७) पहने हुए वस्त्र को देख कर हम अनुमान कर सकते है कि पहिनने वाले का स्वभाव कैसा होगा, क्योंकि प्रथम तो वह वस्त्र निराली कुछ प्रकार का होगा फिर उसकी सिलाई और काट छांट या फैशन निराला ही होगा

(९९) Graphology अर्थात् लेखका सामुद्रिक इस से यह अभिप्राय नहीं कि किसी मनुष्यका लिखा हुआ लेख पढ़कर उसके विचार ज्ञात करले यह तो साधारण बात है और सब जानते है परन्तु हमारा अभिप्राय यह है कि किसी मनुष्य से चाहे कोई लेख लिखाया जावे उस की लिखावट का ढग और गोलाई व दनदाने आदि देखकर कुछ फल निकालना जैसे यदि अक्षरो पर बिन्दु न लगाये जावे और बहुत लम्बे २ खींचे तो प्रत्येक काम में शीघ्रता करने वाला यदि एक अक्षर को कई भांति से लिखे तो चचल स्वभाव वाला होवे ।

अगरेजी टाइप और हस्ताक्षरो के लिये जो सामुद्रक है यह भारत वासियों को समझाना व्यर्थ है अतएव यह छोड़ दिया गया है (उस में सिद्ध किया गया है कि दैवी नियम से हाथ वैसा ही लिखता है कि जिस के योग्य वह बना है)

(१००) किसी मनुष्य की वार्ता सुन कर उस के हृदय की दशा को बुद्धि मान तुरंत ही जान लेता है यदि धोखा न दिया जावे कहा भी है कि तावच्च शोभते मूर्खो यावत्किञ्चिन्न भाषते ७७ अतिरिक्त इस के यदि किसी मनुष्य से कोई पुस्तक ही क्यों न पढाई जावे तो भी कुछ न कुछ उस का स्वभाव जान सकते है यदि हमारी बुद्धि तीव्र हो ॥

एक अगरेजी पुस्तक में तो यहां तक लिखा है कि कोई मनुष्य चाहे कितनी ही ओट में बैठा हुआ हंस रहा हो उस का स्वभाव इस भांति जानसकते है कि यदि आ के साथ जैसे अहाहा हसे तो ईमानदार और सुस्वभावई के अंग जैसे ही ही ही हसे तो उदास, डरपोक

उन के मस्तिष्क के मुख्य भागो पर चोट पहुचती है श्याम देश के दो बालकाकि जो एक कमरमे सयुक्त उत्पन्न हुए थे उन के मस्तिष्क भी देखे गये तो एक दूसरे के समान न थे यद्यपि उन के शरीर में एक ही रुधिर भ्रमता था जिस का शिर बहुत ही छोटा हो उसमें बिल्कुल बुद्धि नही होती क्यो कि उस मे मस्तिष्क की शक्ति नहीं होती ।

१-अगरेजी जानने वाले, फारसी जानने वाले,साहूकार, जमींदार रंडीबाज, जेंटिलमेन प्रायः प्रत्येक स्वभाव और प्रत्येक जातिके मनुष्य अपना पृथक २ वस्त्रो का ढग रखते है जिन को प्रत्येक मनुष्य पहिचान सकता है । स्त्रियों के वस्त्र मे भी बड़ा भारी अन्तर है ।

और प्रेमी समझो जो कि खग जैसे हो हो हो हंसे तो चंचल स्वभाव वाला और बुरा जानो इत्यादि।

(१०१) चित्र को देखकर स्वभाव बतलाना कुछ कठिन नहीं है, क्योंकि प्रथम तो प्रतिबिंब और प्रतिबिंबी में अंतर नहीं होता जैसे किसी का यथार्थ चिहरा देखा ऐसे ही उसका चित्र देखा, फिर चित्र लेते समय स्वभाव की जो मुख्य दशा होती है वह बिलकुल प्रगट हो जाती तथा स्थिर रहती है जिस से कुछ काल तक चारों ओर से उस पर बुद्धि के घोड़े दौड़ाने के अतिरिक्त इसके लम्बाई चौड़ाई नापनेका सुगम है इसी हेतु फ्रीनालोजिस्ट विद्वान परदेशियो के चित्र मंगाते है।

(१०२) Pathonomy उस विद्या को कहते है जिस में केवल चिहरा को देखकर हृदय के जानने की रीते हों क्यो कि क्रोध में, प्रसन्नता में, भय के समय, आशा या निराशा में हमारे चेहरे पर एक मुख्य भांति की रेखा पड जाती है होंठ और आंखें एक मुख्य गति से चलने लगते है।

अंगरेजी भाषा में ऐसे नियमो की पुस्तकें भी है कि किसी के सन्तान का स्वरूप मिला कर किस भांति पहिचाने और जो अन्तर पडे उसका कारण बतलावे परंतु गुण ग्राही होवे तो उन के वास्ते यह कुछ लिखा जावे देखिए इसही श्रम का क्या फल मिलता है।

अध्याय ३

स्वप्न विचार Dream Reading

(१०३) रात्रि को सोते समय जो कुछ स्वप्न देखते हैं वह निष्प्रयोजन नहीं होता, वरन हमको होनहार घटनाओं की सूचना प्रथम ही कर देता है, परन्तु उसका अभिप्राय जानना कठिन कार्य है आत्मा को सर्वज्ञता है, यदि मनुष्य का मन स्वच्छ हो तो उसकी आत्मा निश्चिंताई में स्वप्न के समय उसको होनहार बातों को भली भांति देखा करती है।

(१०४) ऐसे वृत्तान्त प्रत्येक देश और जाति की पुस्तकों में पाये जाते हैं जिन से स्वप्न का अर्थ एवं भविष्य ठहराव करना सिद्ध होता है हजरत युसुफ व हजरत दानियाल की कहानियां प्रसिद्ध हैं, बाइबल में कई स्थानों पर इस का वर्णन है रामायण और महाभारत के

(१०५) स्वप्न सब देखते हैं और आपही आप कुछ न कुछ उस के अर्थ भी समझने लगते हैं परन्तु जब तक उस के नियमों से भली भाँति जानकारी न हो तब तक ठीक नहीं बन सकते, अतएव हम अब उन अर्थों का पूरा पूरा वर्णन करते हैं कि जो बड़े २ विद्वानों ने भली भाँति खोज कर और परीक्षा करके इस प्रकार से लिए नियत किये हैं हमारे आर्य्य पुरुषों ने इस को वर्णन किया भी एक प्रकार बड़ाई है और महर्षि धनवन्तर पाराशर, बृहस्पति, मार्कंडेय, वराहमिहर ने इस विषय पर भली भाँति लिखा है।

(१०६) स्वप्न देखने के कारण यह हैं किसी प्रकार का रोग, बुरे भोजन करना, किसी बात का हृदय पर विचार बैठ जाना, दिन में कोई अद्भुत बात देखना या सुनना, कोई बात विचारते सो जाना सोते समय छाती पर हाथ आजाना और हृदय का दबजाना, आत्म शक्ति और मन की स्वच्छता और अतिरिक्त इस के किसी समय में एक मुख्य प्रकार की हवा भी रात को ऐसी चलती है कि जिस सोने वाले के ऊपर हो कर निकले वही डराने लगे।

(१०७) विचार और रोग आदि के कारण जो स्वप्न देखे जाते हैं वह कुछ प्रभाव नहीं रखते, दिन का देखा हुआ स्वप्न असत्य होता है और जो देखा हुआ याद न रहे अथवा बहुत बड़ा होकर भी सत्य नहीं होता परंतु जो स्वप्न बिना किसी कारण के केवल आत्म शक्ति से देख पड़ता है वह अवश्य ही अपना फल दिखाता है पहले बुरा स्वप्न देखे तदनन्तर अच्छा तो फल भी अच्छा ही होता है।

(१०८) रात के प्रथम प्रहर का देखा हुआ स्वप्न एक वर्ष के उपरांत अपना फल दिखलाता है दूसरे प्रहर का देखा हुआ आठ महीने के भीतर अपना प्रभाव दिखाता है तीसरे प्रहर का तीन महीने तक चौथे प्रहर का एकमास तक प्रातःकाल का दस दिन तक और जागने से कुछ देर पूर्व जो स्वप्न देखा जाता है वह उसी रोज अपना काम करता है। मनुष्य को उचित है कि यदि कोई बुरा स्वप्न देखकर जाग

पड़े तो कुछ देर के लिये फिर सोजावे तो इस भांति उस का प्रभाव कुछ कम हो जाता है क्योंकि जिस स्वप्न को देखकर मनुष्य जाग पड़े और फिर निद्रा न आवे तो वह शीघ्र ही अपना फल दिखाती है

(१०९) यह कहावत प्रसिद्ध है कि "बिल्ली को स्वप्न में छीछड़े ही देख पड़ते है,, अर्थात् स्वभाव और व्योपार के कारण से भी बहुत से स्वप्न दीख जाते है। कफ प्रकृति वाला मनुष्य सर्दव किसी एक प्रकार का स्वप्न देखता है तो पित्त प्रकृति वाला किसी दूसरे प्रकार का और वात वाला तीसरे प्रकार का फिर जिन को कोई रोग उत्पन्न होने वाला होता है वह उस के अनुसार किसी और ही ढग का स्वप्न देखते है॥

(११०) प्रथम हम प्रसिद्ध और सत्य स्वप्नों को व्यौरेवार वर्णन प्रारम्भ करते है इन में भी शकुन और सामुद्रक के समान यह बात विचारना चाहिये कि जो जानवर वस्तु अथवा कार्य भला समझा जाता है उस को स्वप्न में देखना भी अच्छा फल देता है और जो बुरा समझा जाता है वह बुरा इस के कुछ उदाहरण हम समझावेंगे परन्तु थोड़े से स्वप्न ऐसे भी है कि अपने से विरुद्ध फल रखते है उन का वर्णन भली भांति से करेंगे फिर रोगों के कुछ स्वप्न लिखेंगे।

कुछ मांगना अशुभ, प्रत्येक स्थान पर वर्षा देखना शुभ किसी मुख्य स्थान पर अशुभ, वस्त्र प्राप्त होना शुभ परन्तु पैसा अशुभ सुइयां अधिकता [illegible] शुभ, [illegible] तो भय दबावे आधीन से आधीन [illegible] प्रतिष्ठा क्रोधित होतो अप्रतिष्ठा,थोड़ा ना मेघ शुभ अधिक [illegible] अशुभ, बर्फ ओला देखना अशुभ खाना शुभ रहे उपवन से प्रसन्नता सूखे से दु:ख, घर बने तो आयुदीर्घ हो यदि गिरे तो दुःख भुगतना पड़े, अग्नि की लपट शुभ धुवां अशुभ, तैरने से कठिन कार्य सफल होवे डूबने से मुकदमा लगे, माखन काटे तो छुटकारा हो यदि टूट जाय तो दु:ख हो, घर कोठे का तो शान्ति सुवर्ण का हो तो भय प्राप्त होवे ॥

जल बहता हुआ और स्वच्छ होवे तो उन्नति, रुका तथा खारी होवे तो दुःख, चन्द्र सूर्य प्रकाशित होवे तो प्रतिष्ठा, धुंदले होवे तो चिंता, ईंट पक्की अशुभ, कच्ची शुभ ।

(११३) **अंग इत्यादि**--नेत्र हीन तो यात्रा मे असफलता, लिंग कटे तो अवनित, दो नाक हो तो दु:ख, डाढी बड़ी हो तो प्रतिष्ठा, शिर छोटा हो तो अवनिति, बहुत बड़ा हो तो मूर्खता दांत गिरना अशुभ दांत खोनइले, अशुभ अंगुलियां अधिक अथवा अन्तर पर हो तो दुःख, बाल गिरना तथा कटना अशुभ, स्त्री अपने को लिंग युक्त देखे तो गर्भ हो, अथवा गर्भवती होवे तो पुत्र उत्पन्न होवे बड़े नाखूनों से जीत, ग्रीवा कटने से आरोग्यता हाथ पैर कटने से भय, गाड़ने से रोग, घाव से आरोग्यता, छींकने से इच्छा क्षीर्णता, चिल्लाने से चिन्ता,स्त्री दुग्धपान करेतो दुःखसे छुटे,रोना शुभ हसना अशुभ

(११४) **जानवर**--जैसे विच्छू जोंक काटे तो आरोग्यता तथा लोभ, यदि सांप को अपने वश मे देखे तो शत्रु वशमें हो, कुत्ता आक्रमण करे तो निर्बल शत्रु उत्पन्न हो परन्तु कुछ कर न सके, टिड्डी देखे तो प्रधानता मिले खच्चर, कबूतर, गाय, हाथी आदि देखे तो लाभ हो शुभ जानवर अपने को सवार देखे तो प्रतिष्ठा मिले, यदि अशुभ पशु पर आरूढ़ देखे तो अप्रतिष्ठा प्राप्त हो सूअर पर सवार हो तो मृत्यु, हाथी पर आरूढ़ हो तो यश की वृद्धि होवे ।

(११५) **फल फूल**--सुंदर शुभ बहुत से देखे तो द्रव्य को

प्राप्ति हो फल देखे तो त्याग हो, खट्टाफल कुछ की औरपीत वर्णका फल रोग को प्रगट करता है, खरबूजा तथा मेवे से धन की प्राप्ति हो लाल फूल अशुभ श्वेत शुभ, चमक, नीम, ढाक, कचनार, कपास के वृक्ष और खर तिल, नमक आदि रोग उत्पन्न करे, हरी घास शुभ

(११६) इन कोरोगी देखेतो मरै आरोग्य देखेतो रोगीहो

रक्त वर्ण के वस्त्र पहिनना, देह से तेल मलना, गध या भैंसे पर सवार होना, नाचना, गाना, बाल खुले हुए, स्त्री घसीटे शिरया छाती में बांस का वृक्ष निकले, पर्वत से गिरना, किसी का छील जाना, पूरी जाना. चिता में भस्म होना, अपने वस्त्रों को रंगा हुआ देखना।

कपास का वृक्ष, तेल मलना या पीना, मृतक का कुछ मांगना, फिरना, कूदना, चढ़जाना, जानवर आक्रमण करें, नग्न हो पृथ्वी पर लोटे, खिल खिला कर हंसना, गुफा में प्रवेश करना, घर के बग राक्षस को देखना, दलदल मे फसना, ॥

दुःख--मैथुन करना,अशोक कावृक्ष देखना, चन्द्रसूर्य को बुदका देखना हारना, वदी होना, झगड़ना, प्रसन्न होना दांत गिरना, पहाड़ या मकान गिरना, अगधारी पशू अथवा हिंसक जंतु आक्रमण करें तो राज दरबार से भय, कोई वस्तु काली देखना ॥

(११७) आरोग्यता तथाछुटकारा प्रगट करनेवाले स्वप्न

किसी को मारना, तीर चलाना, तैर कर नदी के पार होना दहीभात खाना, देह में श्वेत चन्दन या रक्त या विष्टा का लेपन करना, वृक्ष पर चढ़ना, सूर्य को उदय होते देखना, मरना प्रीवा कटना, रोना; मांस भक्षण करना, श्वेत वस्त्र. दंडिया पहनना अग्नि भक्षणकरना, युद्ध में युद्ध, लड़ाई या दाव जीतना।

देखना निकले, स्त्री अपना श्रृंगार अवलोकन करे तो पति प्यार करे, टोपी तथा पगड़ी का पतित होना मानभंग, उत्तम टोपी पहिनना तो प्रतिष्ठा व लाभ, अस्वच्छ वस्तु दुःख वस्त्र फाड़ना लाभ दायक, रेशमी वस्त्र धारण करे तो उच्च पदवी पावे ।

मनुष्य--राजा वा पदाधिकारी को कृपालु देखे तो प्रतिष्ठा बढ़े अप्रसन्न देखे तो दुर्दशा पण्डित वा सन्यासी को देखना उत्तम लाभ. अपनी स्त्री को दूसरे से वार्ता करते देखे वा दूसरी स्त्री से स्वयं मलाप करे वा अपनी स्त्री को परित्याग करदे तो हानि हो अपने नातेदारों को मरा हुआ देखे तो लाभ, अपने बच्चों को आपत्ति में देखे तो लाभ हो अपने मित्र से लड़ाई देखे तो हानि मित्र से विछोह हो तो आपत्ति किसी को मार डाले तो दुर्दशा में पड़े, चोर देखे तो धन हानि किसी को कुछ मांगता देखे तो हानि, धाई को देखे तो कठिन रोग हो जाय, वैद्य देखे तो कार्य सिद्ध हो पुरुषों से बातचीत हो चिन्ता बढ़े, मृतक मनुष्य सब कुछ मांगे वा गले से लिपटे तो रोग वा मृत्यु हो, देवता को देखे तो सब कार्य बने ।

पशु--गधा पर सवार होना निकृष्ट लादना उत्तम ऊंट पर भ्रमण करे तो शत्रु उत्पन्न हो सांड का देखना लाभ दायक बिल्ली को देखे तो धोखा खावे गाय हत होवे दुग्ध देखे तो अत्यन्त अशुभ कुत्ता अपना और भुके तो मित्र शत्रु होजाय, कुत्ता देखना लाभदायक भेड़ों का गल्ला देखना लाभदायक सिंह का देखना अशुभ घोड़ा उत्तम भेड़िया देखे तो चोर और शत्रु का भय हो पक्षियों का उड़ना दशा में गड़बड़ पिंजड़े से छोड़ना दुख से छूटे, मैना देखना लाभ व विवाह कोयल देखना वियोग काक का शब्द सुनना अशुभ, गिद्ध को छप्पर पर बैठते वा उड़ते देखे तो, प्रतिष्ठा मिले बतख का दिखना अत्यन्त लाभदायक उल्लू अत्यन्त अशुभ तोता देखे तो भ्रमण में लाभ हो चील बाज से शत्रु उत्पन्न हों मोर देखे तो अत्यन्त दुःख हो बगुला का देखना शुभ गाने वाले पक्षी देखे तो भ्रमण में लाभ मरा हुआ देखे तो घर को लौटे बहुत मछली देखना विवाह मछली पकड़ना मनोर्थ सिद्ध मछली जल से बाहर देखना अशुभ मेंढक देखे तो विवाह हो परन्तु मच्छ और कच्छ देखना अशुभ ।
सर्प बिच्छू खटमलादि देखना शत्रु से हानि ॥

वृक्ष--हरा बेलि युक्त देखे तो लाभ सूखा वा कटा देखे तो अशुभ वृक्ष पर चढ़ जाना प्रतिष्ठा मिले वाटिका में विचरना सुख व पढती नाज रहित कृषि क्षेत्र देखना कंगालता खेत जोतना तो परिश्रम से जंगल में अकेले फिरना दुःख कांटा लगे तो रो दुख शाखा टूटते देखे तो नातेदारकी मृत्यु खजूर देखै तो उत्तम स्त्री मिले फल तोड़कर खावे तो लाभहो लकड़ी काटना वा छिद्र करना लाभदायक कोमलफल खावे

शोक—मेरी कांक्षा थी कि इस एडीशन में बहुत कुछ विषय प्रत्येक प्रकार का नियुक्त करता और अति उत्तम पुस्तक छपवाता परन्तु अवकाश न होने के कारणमन की बातें मनही मे रहगईं और इसको भी ज्यों त्यों पूर्ण किया ।

से लाभ कठोर फल से दुःख विकसित पुष्प देखने से लाभ मुर्झित पुष्प अशुभ पुष्पमाला रचना वा धारण करना अत्यन्त शुभ ॥

गृह--खजाना देखे तो व्योपार से लाभ विचित्र द्वार तथा मनोहर गृह अवलोकन करे तो प्रतिष्ठा मिले पुत्र उत्पन्न हो महल देखे तो धन मिले अद्भुत भवन देखे तो उलट फेर घर से निकाल जावे तो हानि हो बहुत से गृह देखे तो ठिकाना बदले अपना घर जलता वा गिरता देखे तो आपत्यागमन दोनों ओर दीवाल देखे तो चिन्तित हो फर कार्य करे कचहरी देखे तो प्रतिष्ठा मिले मेला तथा हाट देखे तो उत्तम अपने मित्रों को रेशमी वस्त्र धारण किये हुए देखे तो अपनी अप्रतिष्ठा हो दुशाला देखे तो प्रतिष्ठा हो मणि, सुवर्ण, भूषण तथा द्रव्य देखे तो शुभ परन्तु पैसा, लोहा, पीतल, तांबा इत्यादि अशुभ कोई आभूषण छुटका माला इत्यादि मिलना प्रतिष्ठा और हिराय जाना अशुभ प्रगट करता है ॥

सवारी--गाड़ी में बैठना अशुभ हाथीपर बैठना प्रतिष्ठा मिले छिहक पशु गाड़ी पर आरूढ़ हो तो रोग वा शत्रु वश जहाज में सवार होकर पार उतरे तो बेड़ा पार, जहाज पार न लगे तो दुख, रेल में सवार हो आपत्ति पैदल चलना अशुभ ।

शस्त्र--कोई अपने ऊपर चलावे तो हानि, किसी पर स्वयं चलावे तो जय, तीर चलाना तो अभिलाषा पूर्ण, शतरंज इत्यादि की बाजी जीतना तो जय दीवार पर कूदना अशुभ दंगल इत्यादि खेलना तो भ्रमण से लाभ, कुश्ती लड़ते देखे तो किसी से मुठभेड़ हो घोड़ दौड़ देखे तो जय, आखेट करना लाभ अपने को घायल देखे तो लाभ ।

आकाश--यदि वह दूर देखे तो ज्ञान से अहंकार प्राप्त गर-जना बिजली चमकना तो उत्तम अवसर, अपने ऊपर बिजली गिरते देखना उत्तम इन्द्र धनुष का देखना शुभ है, वायु में उड़ता देखे तो लाभ, सूर्योदय देख आनन्द, सूर्य का प्रकाश प्रतिबिम्बता, प्रतिष्ठा, सूर्य वा चन्द्र धुंधला तो दुःख वा ... सूर्य ग्रहण देखे तो मित्र मरे वा मित्रता भंग, सूर्य को भक्षण कर ले तो राजा हो जावे, पूर्ण चन्द्र देखे तो रोग नाश. पुच्छल तारा देखे तो मृत्यु, हो उल्का पात देखे तो दुःख केवल बादल बिना तारों के देखे तो रोग वा हानि, तूफान में घिर जावे तो आपत्ति, अग्नि, आकाश से बर्षती देखे तो कारागार वास हो वा मरे. अपने को जला हुआ देखे तो लाभ उठावे, अपना घर जलता देखे तो अशुभ, घर के ऊपर का भाग जले तो मालिक मरे पलंग, बि-छौना, इत्यादि जलता देखे तो बच्चे मरें, बिना धूआँ के बहुतसी अग्नि प्रज्वलित देखे तो प्रतिष्ठा मिले दीपक बुझा दे तो रोग वा गरीबी, दी-पक प्रकाशमान देखे तो पुत्र उत्पन्न हो स्त्री मिले ।

अनियमित वस्तुएं--घण्टा बजाना वा सुनना लोभ पुल से पार उतरना तो प्रसिद्ध पुल टूट पड़े तो मृत्यु, नये सामान अपने घर में देखे तो आनन्द, चित्र देखे तो धोखा उठावे, हसीसे झण्डा उठावे, वा देखे तो प्रतिष्ठा बढ़े, नाला वा नाली देखे तो व्यापार वृद्धि, श्याम धब्बा देखे तोप्रसिद्धता हानि वाधोखा, जूता खोया हुआ देखे तो रोगी, सीढ़ी पर चढ़े तो वृद्धि हो ॥

WEATHER WISDOM

वायु परीक्षा

(१२०) वायु परीक्षा वह विद्या है जिस का ज्ञाता पवन की गति देखकर बतला सकता है कि आने वाले किस महीने में वर्षा होगी अन्न आदि की उपज और भाव कैसा होगा आदि ।

(१२१) मेरे मत में यह विद्या संसार में सब से अधिक आवश्यकीय और लाभ कारक है, समस्त सृष्टि के कार बार का भार कृषी पर है, और कृषी करने में हम को दैवी घटनाओं का भय सदैव लगा रहता है, और सब कठिनता ऐसे है कि जिन की रोक हमारे वश में है परंतु वर्षा, आंधी, बर्फ, ओला सूखा आदि का हम कोई प्रबंध नहीं कर सकते है, खेतो पर छप्पर नहीं छा सकते और न छत के भीतर खेत बो सकते हैं प्रत्येक वर्ष में बहुधा देखा जाता है कि अन्न बड़ी सावधानी से बोया जाता और उस की भली भांति रक्षा की जाती है परन्तु, वह ठीक पकने के समय अकाल की वर्षा से नष्ट हो जाता है जमींदार विवश हो हाथ मलकर बैठ रहता है ।

(१२२) हम विवश होकर भांति २ के अन्न बोया करते हैं कि यदि ऋतु एक अन्न के हेतु हानि कारक हो जावे तो दूसरा तो भली भांति हो बच रहे और हमारे हाथ लगे, यदि हम को ऋतु की दशा प्रथम ही से ज्ञात हो जावे तो हम उसी के अनुसार अन्न क्यों न बोवें और अच्छी फसल सुगमता पूर्वक काटें, इसी भांति समझना चाहिये कि हम को यह नहीं ज्ञात है कि इस वर्ष में किस अनाज के व्योपार में लाभ रहेगा अतएव सहस्रों अन्न भरते हैं जब वर्ष के अन्त में जाकर एक पदार्थ में बड़ा लाभ होता है तब रोते हैं कि हाय ! यदि हमें ज्ञात होता तो इसी को बहुतसा भरते इत्यादि ।

(१२५) जिस भांति अंगरेज अपना Meteorological लिख रहे है वैसेही कदाचित हमारे पुरुषों ने लक्षों वर्ष की खोज और परीक्षाओं से यह विद्या प्रगट की होगी फिर बड़े लाज तथा शोच की बात है कि एक बने बनाये घर को काम में न लाना वरन गिराना और दूसरे घर के बनाने में व्यर्थ व्यय और श्रम करना जिस की यह आशा नहीं कि कितने सहस्र वर्ष के पश्चात यह परिपूर्ण होगी, और होगी भी या नहीं हां यह भी सम्भव है कि हमारी विद्या असत्य हो परंतु जो कार्यालय इसके विरुद्ध दूसरी विद्या की खोज करता है वह प्रथम इस को तो असत्य सिद्ध करदे हम तो यह जानते है कि दिन प्रति दिन इस की परीक्षा की जाती है और यह सत्य हो उतरती है

(१२६) वर्ष भर की ऋतु सम्बन्धी होन हार बातों को प्रथमही कहने में इतनी बाते देखी जाती है।

(१२७)वर्त्तमान तथाभूतवर्ष कीशीत औरउष्णताऋतु सम्बन्धीदशायें ग्रहों की चाल और मुख्य समयों में उन के स्थानोंका सम्बन्ध प्रत्येक मास में तिथि, योग और बार की संख्या तथा उनकी न्यूनाधिकता, संक्रांति व ग्रहण आदि का विचार, जानवरों की चालढाल तथा कर्म

बिना किसी दूसरे मुख्य कारण के कि मत्येक मास की ऋतु तथा जानवरों की बोलियाँ।

(१२८) और यह साईंस (पदार्थ विद्या) के विरुद्ध या असंभव भी नहीं जब ईश्वरीय सृष्टि का प्रत्येक काम नियमानुसार तथा क्रमानुसार है तो वायु या वर्षा इस नियम से क्यों बाहिर होंगे, ग्रहों की चाल भी एक नियत समय में पूरी होती और इन का प्रभाव ऋतु पर पड़ता है नक्षत्र और ग्रहण आदि का प्रभाव भी कुछ बुद्धि लड़ाने से समझ में आजावेगा और जानवरों की तो एक साधारण बात है उन को ऋतु का बदलना पूर्व ही से ज्ञात होजाता है, खञ्जन पक्षी जाड़े के प्रारम्भ से पहाड़ के ऊपर पार मैदान में आजाता है और गरमी के प्रारम्भ से पहिले ही लौट जाता है आदि (मेरा मेटर यन्त्र भी तो इन्हीं नियमों से बनाया गया है)

(१२९) अब हम प्रथम जानवरों के कर्मों को देखकर आनेवाली ऋतुकी दशा जानने के उदाहरणों का वर्णन करते हैं, जब कि और कोई मुख्य कारण नहो तो बिलकुल ही यथार्थ निकलते हैं और शीघ्र ही ऋतु में कुछ उलट पलट हो जाती है जैसे

बिल्ली--छींके या सिर धोवे तो शीघ्रही वर्षा हो, कलोल करे, पूंछ हिलावे, या लिपटकर बैठती फिरे तो वर्षा नहो, मुंह धोवे तो उस के मुंह के सामने वाली दिशा से प्रचंड वायु चले, शिर झुकजाये या टूटे तो आंधी आवे।

चूहा--अधिक शोर करे तो वर्षा हो।

कुत्ता--प्रातः काल में मांस खावे तो सन्ध्या कालमें पानी बरसे मांस न खावे या घर से निकलने वाले को भौंके घर में गढ़ा खोदे तो वर्षा होवे, छत पर चढ़े या नाभि को चाटे, जमाई ले, आसू डाले तो अधिक वर्षा हो यदि कुत्ता घर में रोवे तो वर्षा हो या आगलगे॥

(१३०) बकरी वर्षा होने के पूर्व ही एक मुख्य भांति का शब्द निकालती है भेड़ मिमयावे और शरण ढूंढे तो वर्षा गिरे, गायोंसे प्रथम भेड़ चरने को चले तो वर्षा होय।

गाय--दूध कम देवे तो तीन अधिक पड़े, सन्ध्या को गौरे ही प्रातःकाल वर्षा गिरे, सन्ध्या को सींग खोलावे तो वर्षा हो, ठहर

सूअर--अधिक व्याकुल होकर शोर करे तो आंधी, मुंह में विष्टा ले तो जोर पड़े, लोमड़ी, गीदड़ी भौंके तो आंधी आवे।

(१३१) मुर्गा रोके कि सवेरे बांग (प्रातः) दे तो प्रातःकाल उठते समय वर्षा हो, और उच्चस्वर से बोले तो वर्षा हो।

कौआ--ऊंचे पेड़ में खेल करे तो आंधी, घोंसला वृक्ष के ऊपर पर बनावे तो सूखा पड़े, वृक्ष के पश्चिम ओर घोंसला बनावे तो अधिक वर्षा हो और दक्षिण की ओर बनावे तो न्यून वर्षा हो।

आकाशी चिन्ह--चारक मेंढ अर्थात् चन्द्र मण्डल बड़ा बने तो वर्षा हो, सूर्य के उदय अस्त के समय बादल लाल रंग का होतो आंधी आवे॥

अब बारह मासों ऋतुओं की दशा से आनेवाली ऋतु की दशा जानने के कुछ नियम लिखते हैं।

(१३२) कार्तिक--अमावस्या के दिन स्वाती नक्षत्र हो और उसी दिन मंगल, या इतवार या शनिवार होतो सूखा पड़े।

५७ अर्थात् द्वादशी को मेघ गर्जे तो भविष्य वर्ष के चतुर, मास भर वर्षा हो।

३० अर्थात् पूर्णमासी को बादल हो और कृत्तिका नक्षत्र होतो चतुर्मास भर भली भांति बरसे।

अगहन ८ को बादल होतो श्रावण में भली प्रकार वर्षा २५ को बादल गरजे तो भविष्य वर्ष के चतुर्मास के अन्त में अधिक वर्षा हो

---

१ ग्रहण के प्रभाव से गर्भके बच्चों के आकार पलट जाते हैं पृथ्वी के जीव जंतु सब मये २ चिन्ह जान लेते हैं कुत्ता भूकने लगते हैं आदि— और शुक्र के तारेका जब उदय अस्त होता है तब अवश्यही बादल घिरा रहता है, इसकी परीक्षा जब चाहे तब कोई कर ले इसी भांति जब कोई पर्व का दिन होता है तबभी बादल अवश्य होता या बरसता है॥

पूस-बदी दशमी में बादल गरजै तो सावनकी दशमी को अधिक वर्षा हो, २० अर्थात् पूस सुदी ५ को बादल गरजे तो चतुर्मास में अ-त्यन्त वर्षा हो, ७ को बादल होतो सावनकी पूर्णिमाशोको परखे, १०को बादल गरजे या बिजली कड़केतो भादो में अधिक वर्षा हो १३ को बादल हो तो सावन की अमावस व पूर्णिमाशी परखे, १५ को चौपायु चले तो भली वर्षा हो १५ अर्थात् अमावस को शनिवार, इतवार या मंगल होतो अन्नतेज, सोमवार, शुक्रवा बृहस्पति होतो अन्न सस्ता रहे १२, २४, बादल रहे तो शुभ, पांच शनिवार पड़े तो आगे की ऋतु में दुर्भिक्ष पड़े।

उत्तम वर्षा हो, १८ अर्थात अक्षय तीज कि दिन वृहस्पति का दिन और रोहिणी नक्षत्र हो तो उत्तम सम्वत होवे (इसी दिन पवन परीक्षा करते हैं अर्थात पवन की दशा देखते हैं) जेठ १६ को इतवार हो तो आंधियां चलें, मंगल हो तो रोग फैले बुद्ध हो तो अन्न महंगा, सनिवार निकृष्ट सोमवार, शुक्रवार, वा बृहस्पति हो तो उत्तम, १८ को शनिवार हो तो सूखा, इस महीने में अधिक गर्मी पड़े तो अधिक वर्षा हो

आषाढ़—की परिवा को बादल गरजे तो लड़ाई व दुर्भिक्ष ५ को स्वच्छ हो तो दुर्भिक्ष, ७ चन्द्र निर्मल तो दुर्भिक्ष, ९ बादल गरजे तो निकृष्ट १० को रोहिणी नक्षत्र हो तो धान सस्ता, २ को अधिक गरजे तो उत्तम वर्षा, २४ को चन्द्रमा धुंधला अर्थात बादल हो तो उत्तम वर्षा, ३० को चन्द्रमा धुंधला तो शुभ सम्वत, निर्मल सोमवार शुक्रवार, वृहस्पतिवार को बिजली चमके तो उत्तम वर्षा हो।

श्रावण--४ को बरसे तो शुभ सम्वत, १० को रोहिणी नक्षत्र हो तो दुर्भिक्ष, ११ गरजे तोभी दुर्भिक्ष केवल प्रातःकाल बादल हो तो शुभ चिन्ह, और स्वाति विशाखा नक्षत्रमें यदि न बरसे तो अन्न दूना तेज होजावे

भादों--की २० को स्वाति नक्षत्र हो तो शुभ सम्वत।

क्वार--१५ को शनिवार हो तो बुरा सम्वत होवे।

(१३६) श्रावणके महीने मे और भी निम्न लिखित बातें देखीजाती हैं

शुक्र कि आई बादरी रहै शनीचर छाय।
ठ्याव पवन वेखे कहे बिन बरसे नहि जाय।
हसा उत्तर दे गई हरत सुख मोर।
आई चित्रारी चित्तरा परजा लेय बहोर।
भोर समय जो बादरा रात उजाली होय।
दुपहर को सूरज तपे तो वर्षा नहि होय।
पवन थके तीतर दुबा, चिड़िया चहके जाय।
कह सहदेव अवश्यही तादिन वर्षा होय।

! आप कहेंगे तो सही कि क्या व्यर्थ बक वाद है परन्तु कुछ बुद्धि को श्रम दीजिये इस का अभिप्राय यह है कि उस दिन बादल घिरा रहेगा तो खेतों में सरसों की इल्लु मारी जायगी अतएव सरसों महंगा होगा इसीसे तेलभी महंगा होगा कृषक लोग इसको भली भांति जानते है।

स्वरोदयका वर्णन

(१३९) यह एक बड़ी पवित्र विद्या है, जो भारत वर्ष में प्राचीन काल से प्रचलित है। योगी, महात्मा सब ही इस के अभ्यासी होते हैं और इस के द्वारा बड़े बड़े गुप्त भेदों को सुगमता पूर्वक जान सकते हैं और बहुत से रोगों की औषधि कर सकते हैं (स्वरोदय का शब्दार्थ स्वांस का निकालना) इस में निकलते सांस की पहिचानकी जाती है। और नाक पर हाथ रखते ही गुप्त बातों का चित्र सा सन्मुख आजाता है।

(१४०) इस से भी अधिक लाभकारी और सहज विद्या संसार में क्या हो सकती है फिर शोच है कि यूरोपिय विद्वान आजतक भी इस से जानकार नहीं हैं इस लिये उन की भाषा में इस विद्या के लिये कोई नाम ही नहीं मिल सकता। हमारे देश में इस को प्रायः अपढ़ जोशी लोग सीखते हैं जो इस के द्वारा रोटी उत्पन्न करते हैं यद्यपि उन की मूर्खता इस के गुणों को प्रगट नहीं होने देती परन्तु तो भी वह परीक्षा में सदैव ठीक ही निकलते हैं, और नेत्र बन्द कर के सब बात ऐसी ठीक बतला देते हैं कि अवश्य ही उन की करामात या जादू मानना पड़ती है।

(१४१) इस के अभ्यास की क्रिया का हम बहुत ही सहज रीति से वर्णन करते हैं, देखो प्रत्येक मनुष्य श्वास लेता है तो उस के दो नथनों में से किसी एक से प्रचण्ड श्वास निकलती है और दूसरे से धीमी। जिस से अधिक निकले उसी स्वर को चलता समझो, दहिने नथने से वेग से श्वास निकले उसे सूर्य्य स्वर कहते हैं। बाएं नथने से अधिक निकले उसे चन्द्र स्वर कहते हैं। या दोनों नथनों से समान निकले या कभी एक से अधिक कभी दूसरे से तो उसे सुषमना स्वर कहते हैं और ऐसा उस समय होता है जबकि स्वर बदलना चाहता है

(१४२) यह एक दैवी नियम है (इस का कारण ज्ञात नहीं है और यही इस विद्या की सत्यता का प्रमाण है) कि प्रत्येक मास के प्रारम्भ अर्थात् कृष्ण पक्ष की परिवा के प्रातःकाल को प्रत्येक मनुष्य

का प्रथम सूर्य स्वर चलता है फिर ५ घड़ी के पश्चात आप ही आप चन्द्र स्वर चलने लगता है इसी भांति पलटता रहता है और शुक्ल-पक्ष की परिवा के प्रातःकाल में प्रथम चन्द्र स्वर चलता है फिर ५ घड़ी के पश्चात् सूर्य स्वर, इसीभांति लौटफेर होता रहता है (और फिर इसी भांति से पक्ष और परिवर्तन प्रतिदिन हुआ करता है कि तीन दिन तक एक स्वर प्रातः से आरम्भ होता है फिर तीन दिन तक दूसरा। इसी भांति क्रमानुसार पलट २ कर अपने चक्र पूर्ण करते है ॥

(१४३) पांच घड़ी तक जो एक स्वर चलता है उस में एक एक घड़ी तक एक एक तत्त्व का अधिकार रहता है अर्थात तत्त्व पांच है, वायु, अग्नि, पृथ्वी, जल, आकाश, इन में से प्रथम घड़ी में वायु तत्त्व चलता है, दूसरी में अग्नि, तीसरी में पृथ्वी, चौथी में जल, पांचवीं में आकाश, आना चाहिये परन्तु कभी २ नियम के प्रतिकूल आता रहता है तो भी अपना समय पूर्ण करलेता है ॥ यद्यपि गणित करने से किसी समय के स्वर का तत्त्व ज्ञात कर सकते है परन्तु अभ्यास हो जाने पर विचारना भी नहीं पड़ता स्वय ही दृष्ट में आजाता है ॥

(१४४) उपरोक्त चक्र को अभिप्राय इस भांति समझो, और भली भांति स्मरण रक्खो कि नाक पर अंगुली धरने से यदि श्वास एक अंगुल के अन्तर से ज्ञात हो तो आकाश तत्त्व जानो, यदि चार अंगुल तक ज्ञात पड़े तो अग्नि, इसी भांति १६ अंगुलतक चले तो जल तत्त्व जानो, फिर यदि तुम उसी समय नेत्र बंद करलोगे तो उसके सन्मुख काला रंग देख पड़ेगा, जैसे आकाश तत्त्व के समय में काला रंग,

थोड़ा सा दरातक मटमैला होजावेगा फिर यदि उस मटमैले स्थान का आकार कान के समान हो तो आकाश तत्व समझना और त्रिकुणाकार हो तो अग्नि आदि ऐसे ही और भी जानो इस के अतिरिक्त और भी इस की एक पहिचान यह कि श्वास निकल कर ऊपर को जावे अग्नि नीचे को जावे तो जल फिर प्रत्येक तत्व के स्वभाव और दिशा का स्मरण रक्खो कि जो कोठे ७ और ८ में लिखे हैं, पहिचान हो जाने के पश्चात् दोहरी रेखा है जो कोठे ६ यह इस विद्या को कार्य में लाना प्रगट करते हैं।

(१७४) अब काम में लाने के योग्य थोड़े से नियमों का वर्णन करते हैं।। जैसे—यदि कोई पूछे कि बतलाओ मेरे मन में कौन का प्रश्न है—इस समय तुम्हारा आकाश तत्व चलता है तो कह दो कि तुम्हारा कुछ भी प्रश्न नहीं है और यदि है तो कुछ हंसी (दिल्लगी) का प्रश्न है यदि अग्नि तत्व चलता हो तो प्रश्न सोने, चांदी किसी धातु के सम्बन्ध में है अभिप्राय यह कि १२ वे कोठेके अनुसार उत्तर दो॥ फिर यदि कोई पूछे कि मेरी जेब में किस रंग और का पदार्थ है उस समय जिस तत्व का स्वर चलता हो उसी के अनुसार उत्तर दो, जब तुम किसी कार्य के करने का आरम्भ करना चाहो जिस में शक्ति की आवश्यकता हो तो इस का उस समय में आरम्भ करो कि तुम्हारा अग्नि तत्व चल निकले।

(विघ्न) और आकाश तत्व में अग्नि से हानि होती है, चन्द्र स्वर के संग पृथ्वी या जल तत्व का चलना श्रेष्ठ है ।

(१७९) अब हम थोड़े से चुटकुलों का वर्णन करते हैं कि जिनको लोग साधुओं के पास देखकर आश्चर्य किया करते हैं ॥

यदि बहुत से मनुष्य बैठे हों और वायु तत्व चल निकले तो जानलो कि कोई उठना चाहता है, यदि किसी का चन्द्र स्वर और जल तत्व चल रहा हो तो उसको विष खाने से भी कुछ असर न होगा ।

यदि किसी दिन प्रातःकाल को सूर्य्य स्वर चले और सन्ध्या को चन्द्र स्वर, तो जानो कि कुछ कार्य बिगड़ेगा, जब यात्रा को चले तो प्रथम उस पैर को उठावे कि जिस ओर का स्वर चलता है अवश्य तो कार्य सिद्ध होगा ॥
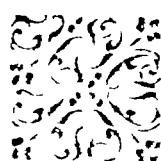
शीघ्र दुःख भोगनेवाला फिर यदि नासिका में तीन रेखाएं हों तो वृद्ध-इच्छा यदि अधिक हो तो व्यर्थ भागी।

(५२) भृकुटी मिली हुई हो तो कामी व विरोगी, आंख के निकट हो तो बुद्धिमान, कोमल चित्त नहीं तो मर्म, कठोर हृदय यादि न हो तो मूर्ख, दुर्बल कोमल बाल हों तो कोमल चित्त और कड़े बाल हो तो कठोर हृदय, मोटी तथा काली भृकुटी श्रेष्ठ, प्रारम्भ में मोटी हों तो प्रत्येक काम में शीघ्रता करनेवाला, तीव्र बुद्धि, दु गी की ऊंची नीची झुकी हुई नहीं, मोटी हो तो बुद्धिमान, पतली उत्तम प्रकृत, यदि ऊपर से उठी तथा भारी हो तो बुद्धिमान॥

स्त्री—अधिक बड़ी व कम बाल युक्त तथा मिली हुई हो तो अशुभ

(५२) नेत्र—श्याम हों तो स्नेही, व सरलचित अत्यंत श्याम हो तो प्रेमी नीली स्वभाव, नीली पीली हो तो अधीर, स्वार्थी, नीली लाल हो तो परम प्रेम नीली हरी हो तो बुद्धि व साहस, पीली हो तो अधीर हरी से धोखा, सफेद से बुद्धिमान, भूरी से कवि. व कारीगर स्वच्छ और बड़ी हों तो सौन्दर्य ग्राही छोटी हो तो मूर्ख बड़ी हो तो बड़ी आयुवाली, गोल हो तो सूरमा तथा चोर, भली भांति खुली हुई हो तो निष्कपट फिरनेवाली दुर्जन, लम्बी आंख तथा मोटी पलक हो तो बुद्धिमान, छोटी बड़ी हो तो दुःखी कोप लाल हों तो श्रेष्ठ, बाहर को और घनी काली और छोटी हो तो श्रेष्ठ, पलक शीघ्र २ लगे तो शुभ, अंधे की अपेक्षा काना और काना की आपेक्षा भेंड़ा खोटा होता है

स्त्री—की आंख पीत रंग की हो तो व्यभिचारिणी, लाल हो तो कामातुर, काली हो तो वन्ध्या वा व्यभिचारिणी।

(५३) नासिका—बहुत लम्बी हो तो विद्वान् और प्रबंधी, तोते की सी हो तो सूरमा तथा शासन कर्त्ता, पतली हो तो विद्वान् नथने चौड़े हों तो कवि, बहुत ऊंचे हों तो हठी, और प्रबन्ध शक्ति अधिक चौड़े खुले नकुए हों तो भोगी, ऊंचे हों तो साहसी, नकुए गोल तथा कम चौड़े हो तो श्रेष्ठ नाक न बहुत पतली न मोटी हो तो शुभ, टेढ़ी चपटी सिकुड़ी और बैठी होतो अशुभ,नाकसे होठ समीपे हो तो सुकुमार होता है।

स्त्री—की नाक बड़ी हो तो अशुभ छोटी हो तो शुभ॥

(५४) मुख, चौड़ा हो तो घमंडी मंदभागी, यदि छोटा हो तो लोभी, गोल और समान हो तो श्रेष्ठ चौकोर हो तो छली लंबा, टेढ़ा,

(१८३) स्मरण रख शिक्षित कि जो मेस्मेरेजम के न्यून ज्ञाता होते है वह तमाशे (कौतुक खेल) की भांति मेज को चलाकर उस से बातें पूछा करते हैं जिस से दर्शकों को आश्चर्य होता है उस की रीति हम लिखते है एक गोल, छोटी एक पाये की मेज हो, परन्तु नीचे उस पाये के तीन शाखाएं हों । उस के चारों ओर चार मनुष्य बिठाकर मेज पर दोनों हाथ सब से रखवावे, और वह मनुष्य ध्यान पूर्वक बराबर मेज की ओर देखते रहें, प्रयोगी भी उन के संग बैठकर ऐसा ही करे, किञ्चित विलम्ब में मेजमें आत्मशक्ति उत्पन्न होजायगी

(१८४) फिर उस मेज से कहा जावै कि तू अमुक पाया उठा तो वह तत्कालही आज्ञा पालन करेगी, इस भांति प्रथम दस पांच बेर पाया उठवाकर उसकी शक्ति की परीक्षा करे फिर कहे कि अच्छा दो पाया एक संग उठा और देर तक उठाये रख, तो जब तक आज्ञा न होगी तब तक वह दोपन देठेगें ॥

लों ने इस में नमक मिर्च मिलाकर और भी प्रकाशित करदिया।

(१३) यूरोप और अमेरिका में इस के जानने वाले बड़े २ विद्वान तथा प्रोफ़ेसर हैं परन्तु हमारे देश में मूर्ख ज्योतिषी और भड्डरी लोग जो घर २ में हाथ देखते फिरते हैं, इसके ठेकेदार रह गये हैं, यह लोग एक पैसा ले कर समस्त जीवन का हाल सत्य, असत्य कह सुनाते हैं और लोगों को ठगते हैं इनकी मूर्खता और असत्य भाषण यद्यपि हानिकारक हैं किंतु इसकी असत्यता के हेतु कोई तर्क नहीं हो सकती, नव शिक्षक लोग सदैव इन चालाक पेशेवरों की उपमा देकर कहा करते हैं कि यह सब बातें असत्य हैं, परन्तु यह उन का आक्षेप न्यून बुद्धि के कारण है विद्वान की अपूर्णता से विद्या असत्य नहीं हो सकती, यह कहावत प्रसिद्ध है कि "वैद सच्चा वक्ता झूठा"

(१४) समय की प्राचीनता तथा उलट पुलट से यह सब बातें प्रतिशोधन योग्य तथा अर्थहीन हो जाती हैं परन्तु यह भी स्मरण रहे कि जिसका मूल पुष्ट है वही इतने दिनों तक स्थिर रह सकती है,*

वही बात सबको स्वीकृत होकर उन्नति पा सकती है कि जो सदैव परीक्षा में सत्य उतरती हो, और प्रत्येक तार्किक के सन्मुख सत्य ठहरी हो फिर उसी सत्य बात का नाम लेकर कोई चालाक किसी को भ्रम दे सकता है उस की ओट के बिना कौन ध्यान दे सकता है

(१५) सामुद्रिक शब्द का अर्थ है "छिपा हुआ" इस विद्या के तीन विभाग हैं। Chiromancy हस्त सामुद्रिक अर्थात् केवल हाथ की लकीरें और अँगुलियों की बनावट आदिक देखकर भूत और भविष्य बातों का वर्णन करना।

Physiognomy. अर्थात् अङ्ग, तिल, आकार तथा शरीर की लम्बाई, चौड़ाई और बोझ आदिक देख कर सब हाल बतलाना Phrenology अर्थात् कपाल का विचार जिसमें खोपड़ी के पृथक२ स्थानों की ऊंचाई निचाई देखकर किसी मनुष्य का केवल स्वभाव बतलाना यह विद्या एक जर्मनी के डाक्टर ने अभी प्रकाशित की है।

(१६) प्रथम तो हम करोमसी का वर्णन करते हैं इसके भी

---

* यह आक्षेप ऐसा है कि जैसे कोई नादान हिंदू कहे कि आर्य्य समाजी बड़े झगड़ालू होते हैं वह ईश्वर देवता और मा बाप को नहीं मानते, केवल नमस्ते जानते हैं और कंजूस हैं" या ऐसा कि कोई नया आया हुआ विलायती साहब कहने लगे कि "हिंदुस्तानी कुली" होता है

इसीलिये तो यह इसी भाषा में लिखता है कि जिस को हाथ रखने वाला जानता हो और उसी प्रश्न का उत्तर देता है जिस को वह जानता है

(१८९) मेस्मरेज्म का प्रयोग किसी मनुष्य की ओर बल पूर्वक देखकर उस को अचेत कर सकता है या यदि प्रयोगी पूरासिद्ध होतो बीमार कर सकता या मारसकता है छोटे या बड़े जानवर को खड़ा कर सकता है और स्थिर तो चला बान कर सकता है। इस रीति के अनुसार बच्चों को नजर लगा करती है अजगर के सन्मुख से कोई जीव भाग नहीं सकता वरन खड़ा रह जाता है॥

इस की रीति यह है कि छोटे २ कीड़े या जीवों को सन्मुख रख कर उन पर ध्यान जमाकर अभ्यास करें कुछ ही दिनों में क्रमशः शक्ति बढ़ कर पशुओं पर प्रभाव करने लगेगी इस का भी कोई मन्त्र नहीं केवल ध्यान का जमाना और अभ्यास का बढ़ना।

(१९१) इसी भांति गुप्त भेद दर्शी होने की यह रीति है कि अंधेरे मकान में बैठ कर यह ध्यान दिया करे कि मेरे सामने एक लोटा रक्खा है थोड़े ही दिवस के पश्चात विचार के बल से उस को लोटा दीखने लगेगा फिर उसको देखता रहे जिस से दृढ़ता पूर्वक स्थिर हो जावे फिर एक दिन इस कल्पित लोटे में कंकरी मारे तो वह टन टन का शब्द करेगा इसी भांति विचार को प्रत्येक वस्तु पर दृढ़ करके अभ्यास बढ़ावे तो एक दिन अन देखे पदार्थों को देख सकेगा। राग सुनेगा, सुगंधि सूंघेगा, आदि विचार से रोग बढ़ता है, इसी वास्ते बदनामी से डरते हैं।
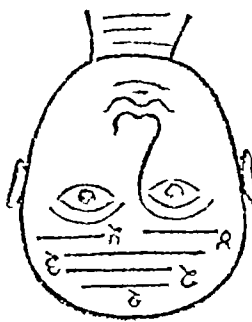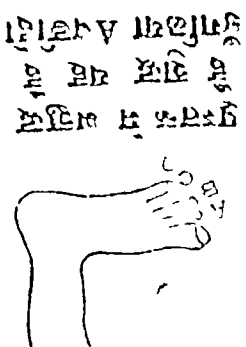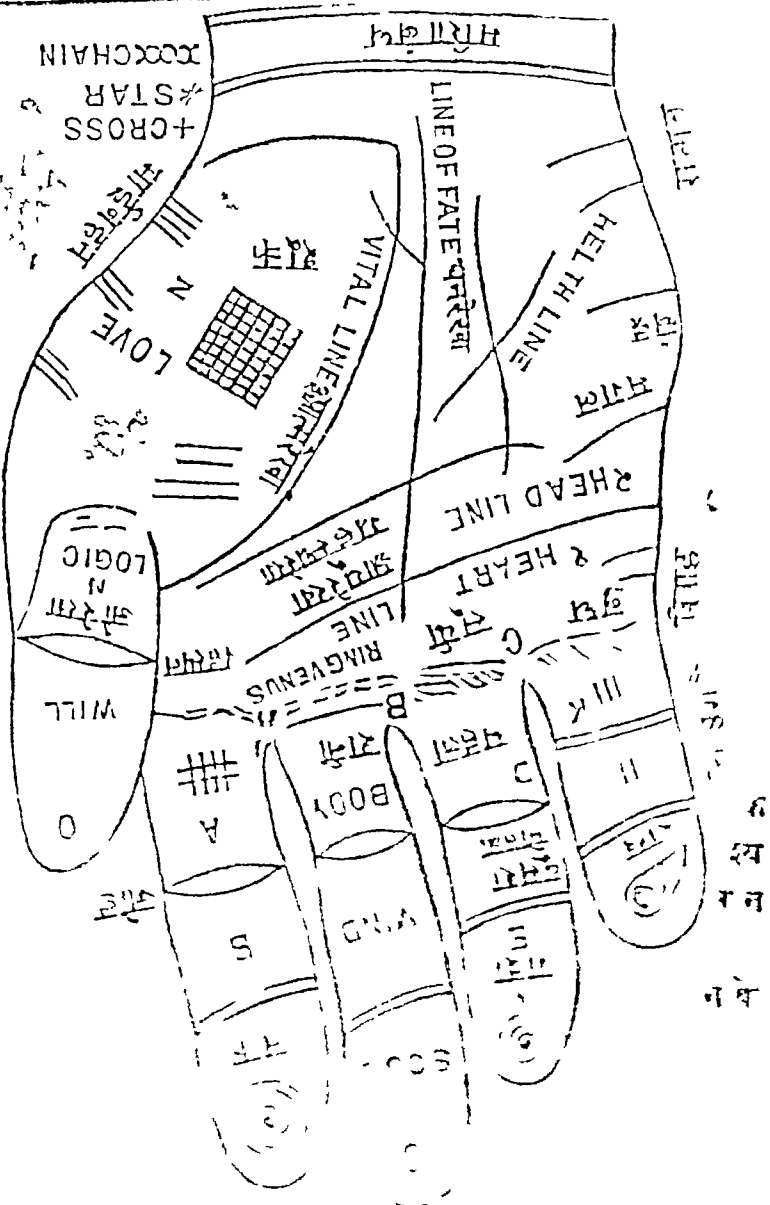
अरण्यवासिनी सीता ।

कैकेयी ने दशरथ से दो वर मांग लिये थे। एक वर यह था की भरत को राज्य दिया जाय और दूसरा यह था कि राम वनवास के लिए भेजे जायँ। इसके अनुसार श्रीरामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण ने चौदह वर्ष वन वास किया प्रस्तुत चित्र में यह दृश्य दिखलाया है कि सीता अकेली एक शिला पर बैठ कर आसपास का सृष्टि-सौंदर्य देख रही है।

करे तो सफलता न होगी ।

(३) इस प्रयोग में संदेह करने या उसको बेईमान या अनुचित प्रश्न करने से भी प्रयुक्त घृणा करने लगता है ।

(४) प्रयुक्त से केवल आवश्यकीय प्रश्न करें । गुरू के विद्यमान न रहते हुए अधिक प्रयोग न करे जब तक कि आपही गुरू (सिद्धि) न हो जाव । प्रयागी धीर्यवान हो, निराशन हो सिद्धि प्राप्त हुए तक पीछा न छोड़े ।

(१९६) नीचे की शिक्षाओं के अनुसार करना चाहिये । प्रयुक्त सदैव किसी स्त्री को बनाए या बच्चे को, अभिप्राय यह कि अपने से निबल हो जिस से हमारी आकर्षण शक्ति उस पर प्रवेश कर सके घरमें पूरा अंधेरा हो, उसमें प्रयुक्त दो घंटे तक बिठलाया जावे, जिससे कि उसकी आंख की पुतली भली भांति फैल जावे । आवागमन बंद रहे, भीड़ और भब्बर न होने पावे । दर्शक, प्रयुक्त और शीशों से अंतर पर रहें । शीशा या चुम्बक या बिल्लौर कुछ ऊंचा प्रयुक्त से एक गज के अंतर पर रक्खा हो ।

प्रयोगी का हाथ प्रयुक्त का शरीर न छूवे परन्तु बहुत ही निकट रहे । कोई २ प्रयुक्त तो बहुत ही शीघ्र मेस्मरेजम का प्रभाव ग्रहण करते हैं और कोई २ विलम्ब में अतः प्रथम दो चार मनुष्यों में से प्रयुक्त को छांटलें, फिर बहुधा उसी पर प्रयोग किया करे ।

(१९७) चुम्बक विलायत से बने हुए आते हैं जिन के द्वारा प्रयोग किया जाता है । और एक प्रकार का बिल्लौर ऐसा बनता है जिसकी ओर देखने से किंचित विलम्ब में ही नींद आजाती है । वर्तमान में एक शीशा Magic crystal ऐसा बनने लगा है जिसकी ओर ध्यान से देखने से थोड़ी ही देर के पश्चात् उन लोगो के चित्र उस में दिखाई देने लगते हैं जिन को कि हम देखना चाहते हैं । अभिप्राय यह है कि समस्त बातें ध्यान (विचार) ही दृढ़ता से देख पड़ती हैं । अवश्य ही संसार के समस्त कारदार विचार के ही आधीन हैं यदि विचार न कर तो जगतही कुछ नहीं है ।

लिया है। संसार में नित्य नई [illegible] ज्ञान [illegible] और बड़ों [illegible] कथन है कि ईश्वर की सृष्टि का पार नहीं पाया जाता।

(प्रश्न) यह दुर्बल मनुष्य पर अंधेरे में किया जाता है इस से विश्वास योग्य नहीं?

(उत्तर) क्या हम एक दुर्बल घोड़े पर [illegible] प्रयोग करें तो वह सत्य न होगा। यह तो अपनी शक्ति के आधीन है अभ्यास होने पर इस निषेध की भी आवश्यकता नहीं रहता॥

(प्रश्न) तर्क करनेवाले के सामने सफलता क्यों नहीं होता?

(उत्तर) यह प्रयोग ही ध्यान से होता यदि तर्क करनेवाला अपनी हठ न छोड़े और विपरीत ध्यान जमाये तो वही फल होगा, जैसे कि एक रस्सी को हम अपनी ओर खींचें और तुम अपनी ओर, या हम फोटो लें और तुम अपना शिर हिलाओ॥

(प्रश्न) जब ऐसी दुर्बल विद्या है तो व्यर्थ खिलौना है।

(उत्तर) ऐसी कौनसी विद्या या प्रयोग है जिस का टूटना असम्भव नहीं॥

योगाभ्यास

(१९९) जिस भांति आज कल तीन तरह की फिलास्फी (तत्वज्ञान) प्रसिद्ध है (आस्तिक, नास्तिक, अज्ञास्तिक) इसी भांति आर्य महर्षियों ने ६ प्रकार की फिलास्फी ठहराई है (पूरा २ जौहर तहकीकात में देखो) जिन में से एक योग फिलास्फी है जिस का वाक्य है कि मनुष्य में ईश्वरीय नियम से ऐसी शक्ति स्थित है कि यदि वह अभ्यास कर के काममें लावे तो असंभव से असंभव कार्य कर के दिखा सकता है।

(२००) अर्थात् एक योगी को किसी प्रकार की अभिलाषा नहीं रहती, और जो कभी अभिलाषा उत्पन्न भी हो आती है तो वह तत्काल ही पूर्ण हो जाती है, उसको क्षुधा तृषा नहीं लगती कभी रोगी नहीं होता, सहस्रों वर्ष तक जीवित रह सकता है अपने देह को न्यूनाधिक अथवा उलट पलट सकता है एक क्षण मात्र में सहस्रों कोस चल सकता है और भूत भविष्य के गुप्त भेदों का जानकार होजाता है, फिर केवल अपनी इच्छा मात्र से रोगियों को आरोग्य, मृतक

को जीवित, और प्राण रोहित प्राण युक्त करसक्ता है और प्रति स्थान में नवीन पदार्थ क्षण मात्र में उत्पन्न कर सक्ता है इत्यादि ॥

(२०१) योग दो भांति का है एक राजयोग दूसरा हठ योग इन में से प्रथम तो बड़ी २ शक्तियें प्राप्त कर लेता है और दूसरा साधारण रीति से केवल इतना कर सक्ता है कि चिरकाल तक प्राण रहित पड़ा रहे और फिर जीवित हो सके आदि ।

हम अब दोनों के नियमों का क्रमानुसार सविस्तार वर्णन करते हैं

(२०२) राज योग के हेतु क्रमानुसार इतनी बातों का अभ्यास करना पड़ता है—यम जिस में सत्यता, निश्चितता, ब्रह्मचर्य, त्याग और चोरी से घृणा संयुक्त है—नियम जिसमें स्वच्छता, संतोष, विद्या और परमेश्वर का भजन यह संयुक्त है इस के पश्चात फिर आसन बांधकर बैठना जो कई प्रकार का होता है ।

तदनन्तर प्राणायाम करना अर्थात् वायु को भीतर भर कर फिर श्वास रोक लेना, जिससे देह हलकी रहे फिर—प्रत्य हार अर्थात इंद्रियों का रोकना तदपश्चात—धारण अर्थात् हृदय का रोकना, इस के उपरांत ध्यान कि जिस में मनुष्य का हृदय प्रकाशित हो जाता है और अंत में समाधि है जिस में योगी को अग्नि व घाव तक की सुधि नहीं होती ।

(२०३) हठयोग जिस को बहुधा योगी दिखलाने के हेतु किया करते हैं इस में प्रथम तो देह के भीतर मल (नेती, धोती, वस्ती, गजकर्म) नोली आदि के द्वारा रस्सी या कपड़ा, नाक या मुंह के मार्ग से भक्षण कर के पुन: बाहर निकालना आदि से स्वच्छ की जाती है फिर खेचरी मुद्रा अर्थात् जिह्वा को लील जाते हैं जिससे अचेत होजावे और श्वास न चले फिर ध्यान एक ओर जमाना आदि ।

(२०४) योगाभ्यास करने से जो आठ सिद्धियां प्राप्त होती हैं वह यह है । अणिमा—अर्थात् शरीर को छोटा करना, महिमा शरीर का बढ़ाना, लघिमा शरीर का हलका करना, गरिमा शरीर को भारी करना, प्राप्ति अर्थात् इच्छा पूर्ण होना प्राकाम्य अर्थात् एक देह छोड़कर दूसरे में प्रवेश करना वशित्व जीवों को वश में करना, ईशत्व अर्थात् जो चाहना कर दिखाना ।

(२०६) इस प्रकार क्षुधा लगना तो कम हो गई परन्तु जीवन स्थिर रखने के हेतु थोड़ासा खाना अत्यंत आवश्यकीय है, वह भोजन शीघ्र पचने वाला और स्वादिष्ट होना चाहिये जिससे शारीरिक बल स्थिर रहे और रोग न उत्पन्न हो और आत्म शक्ति बढ़े, इसी हेतु दूध, चावल, घी, शहद, गेहूं, मूंग और ज्वार इत्यादिक योगियों का भोजन नियत हुआ, *मांस इस हेतु अनुचित माना गया कि वह कठोर शारीरिक श्रम के बिना पच नहीं सकता, नमक खाने का भी निषेध इस हेतु है कि इस के खाने से क्षुधा अधिक लगती है और निद्रा कम आती है

(२०७) फिर श्वास कम लेना यह आवश्यकीय बात है क्योंकि श्वास के विलंब में लेने से आयु बढ़ती है, इसके हेतु अतिरिक्त हलका भोजन और मस्तिष्क श्रम के एक और यत्न यह है कि मनुष्य बहुत काल तक अचेत रहे फिर देखा कि सांप कछुवे आदिक जीव जंतु जो वर्ष में पांच महीने जाड़े की ऋतु भर अचेत सोते हैं वह धरती के भीतर घुस रहते हैं इस हेतु योगी को भी उचित हुआ कि पृथ्वी के भीतर खोद कर अँधेरी गुफा में रहे। और नीचे कुशा का आसन या बालदार चमड़ा बिछावे॥

(२०८) इस के अतिरिक्त वहां बैठकर ऐसे शब्दों का जाप करे कि जिन से श्वांस विलंब में लिया जाता हो जैसे ओम् सोहं, राम, यम, हम, आदि, और माला को भी हाथ में लेकर भजता रहे—क्योंकि ऐसी क्रिया करने से अपच हो जाता है क्षुधा जाती रहती है, और निद्रा आने लगती है कुछ न खाने से भी निद्रा आती है, और आयु की वृद्धि होती है फिर एकाग्र चित होने के हेतु आसन बांधे जिस से शरीर न हिले और ऐसे धीर्य से बैठा रहे कि अपनी देह तक को भूल जाय फिर सावधानी पूर्वक ध्यान जमाकर अचेत हो जावे।

---

*देखो चीता जो मांस खाता है भूखा हुआ भी घूमा करता है। बहुतसे जीव जँतु जो बिना खाए महीनों जीवित रह सकते हे वह नामक खाते ही मर जाते हैं ऐसे ही फल मिलाकर प्राचीन विद्वानों ने यह नियम नियत किये॥

(२०९) यद्यपि यह बातें सर्व साधारण को असत्य ज्ञात होता है परन्तु इनके उदाहरण यदि लाखों सुन गये हैं तो सहस्रों इस वर्तमान काल में विद्यमान है, और दो चार को बड़े २ योग्य मनुष्यों ने देखा है, फिर इस के मानने वाले पूर्व के मनुष्य सबसे बड़े विद्वान और फिलास्फर हुए हैं, हकीम फीसागोरस इस का बड़ा प्रयोगी था। चीन में भी इस का प्रचार था, भारतवर्ष में इस विद्या के आविष्कारक शिव जी और पतांजलि ऋषि थे और इस के प्रयोगी तो अन गिनत हुए, इसी हेतु यह एक सर्व साधारण को निश्चय हो गया कि प्रत्येक योगी करामात रखता है।

(२१०) गुरू गोरखनाथ, कबीर, आदि की कहानियां प्रसिद्ध हैं, हाल में एक बंगाली महाशय ने हिमालय पहाड़ पर सिद्धाश्रम नामक एक गुप्त स्थान का पता लगाया, कि जहां महाभारत के समय के योगी दीर्घाकार अब तक जीते हुए तप कर रहे हैं। और जिस का वर्णन बड़ी धूम धाम से सन् १८९६ के बहुत से अँगरेजी और उर्दू समाचार पत्रों में छपा किया। परन्तु ऐसे उदाहरणों के अतिरिक्त हम बुद्धि के प्रमाणों से भी इस का सम्भव, और साइंस के अनुसार होना सिद्ध करेंगे॥

केरल CARTOMANCY

(२११) प्रश्न उसको कहते हैं कि कोई मनुष्य ज्योतिषी से आकर पूछे कि मेरा अमुक कार्य्य सिद्ध होगा या नहीं या मेरा धन किस ने चुराया है अथवा अमुक गर्भवती स्त्री के पुत्र होगा या पुत्री, या अभियोग जीतेंगे या हारेंगे या यात्री कब लौटेगा आदि। इनके उत्तर देने की रीति अत्यन्त ही सहज है, जिसको प्रत्येक मनुष्य विना किसी दूसरे की सहायता के स्वयं परीक्षा कर सकता है। हम नहीं जानते कि इसका साइंटिफिक कारण क्या है परन्तु इसका प्रभाव विचार शक्ति से भी अधिक विना किसी संबंध के आप ही आप ज्ञात होता है।

ज्योतिष

ASTROLOGY

(२१९) इस का शब्दार्थ है ग्रहों की विद्या, इस में ग्रहों की गति और परस्पर के सम्बन्ध को देखकर भविष्य घटनाओं के जानने के नियम होते हैं। क्योंकि विद्वानों ने यह विचार किया है कि शिशुमार चक्र आदि के बड़े २ गोले को एक अति छोटे जीव तथा परमाणु तक से एक मुख्य सम्बन्ध होता है अतएव उन की गति और स्थिरता का भी प्रभाव पड़ता है॥

(२२०) इस सम्बन्ध का हम को इस प्रकार विश्वास आता है कि चन्द्रमा और सूर्य के निकलने से दिन रात आदि बनते हैं, ऋतुएं उत्पन्न होती हैं, आंधी, मेह और हिम बरफ आदिक पड़ते हैं, वनस्पति होती है उन को जीव जंतु खाते हैं जीवधारी पवन के आधार जीते हैं मौसम के फर्क से उन का आदत और किसमत बदलती है आदि, इस से बड़े २ अन्तर संसारिक दशाओं में पड़ते हैं।

इस विद्या का भारत वर्ष में बड़ा चरचा है, पंडितों का एक बड़ा समूह प्रत्येक शहर और कस्बा तथा ग्राम में होता है जिनका व्यापार इस के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। प्रत्येक मनुष्य उन से बड़ी मुहूर्त पूछता है, जन्म पत्र बनवाता है और भांति २ के प्रश्न कर के अपने हृदय को संतुष्ट करता है, व्याह, शादी, और मकान आदि सब इसी के भरोसे पर रहते हैं। इसका प्रचार इस देशों प्राचीन समय से है और अबभी प्रचलित है, वर्त्तमान समय में भी कोई २ पंडित बड़ा प्रतिज्ञा के साथ फल बतलाते हैं जो बहुधा सत्य निकलते हैं।

(५२१) इस विद्या का चरचा यूरोप में भी कुछ कम न था केवल थोड़े काल से कुछेक कम हो गया है चीन में वैसाही प्रचार है मुसलमानो की जाति में भी यह प्रचलित है, हमने बहुत मुसलमान ज्योतिषियों को देखा है बरन प्रत्येक वर्ष की जंत्री में मुसलमानी ढंग पर और फारसी नियमों के संग ज्योतिष की बातें छपा करती हैं। और एक कैसे आश्चर्य की बात है कि संसार के सम्पूर्ण देशों में सप्ताह के दिनों के नाम ग्रहों के नाम से रक्खे गये गये हैं यद्यपि महीनों और वर्षों में बड़ा अंतर है॥

(२२२) इस में इतनी बातें संयुक्त हैं। किसी मनुष्य की आयुभर का वृत्तांत बतलाना, देश की दुर्घटना आदि बतलाना, ऋतु की वृष्टि शोचिता आदि, चोर का पता देना, सफलता आदि के प्रश्नों का उत्तर देना मुहूर्त्त आदि बतलाना, सामुद्रिक शकुन, स्वप्न का फल, धातु परीक्षा आदि, यों तो समस्त विद्याएँ इसी ज्योतिष के भंडार से निकली हैं परन्तु यहां हमारा मुख्य अभिप्राय फलित ज्योतिष से है। गणित ज्योतिष जिस को कहते हैं उससे भी कुछ सम्बन्ध नहीं।

(२२३) इसका पूरा वर्णन भला एक अध्याय में क्या एक पुस्तक में भी तो नहीं हो सकता। जब कि इस एक विद्या की उत्तमोत्तम सहस्रों पुस्तकें संस्कृत में हैं तो भी संक्षेप से केवल इस का वर्णन हमको यहां करना पड़ा। क्योंकि इसको बिल्कुल छोड़देते तो अयोग्यता होती है यहां हम संक्षेप रीति से केवल जन्मपत्र बनाने का चित्र दिखाए देते हैं। यदि भली भांति देखना और सीखना हो तो हमारी पुस्तक जौहर नजूम, देखो, उसमें मुहूर्त्त और प्रश्न बतलाने की भी रीतें होंगी। कालज्ञान जो इस की एक शाखा है उस का वर्णन हमारी पुस्तक जौहर नजूम देखो।

(२२४) जब कोई बालक उत्पन्न होता है तो उस समय आकाश के ग्रहों के स्थानीय सम्बन्ध और गति को देखकर एक जन्म पत्र बनाते हैं जिस से ज्ञात हो जाता है कि इस बालक का स्वभाव ऐसा होगा भाग्य तथा देह ऐसी होगी आयु इतनी होगी आदि। उसके माता पिता की दशा और जन्म होने का स्थान तक ज्ञात हो जाता है वरन उसके तीन जन्म तक की दशा ज्ञात करने का प्रण करते हैं।

ऐसे जन्म पत्रों के मिलाने से ही हिन्दुओं के यहां लड़के लड़कियों के व्याह हुआ करते हैं।

हजारों वर्ष के परिश्रम से ऐसी ज्ञान नहीं जाता जो समझ हमारे भाईयों को भी पसन्द है कि जो कुण्डली से सब का बताते हैं।

जनम कुंडली के स्थानों के अर्थ
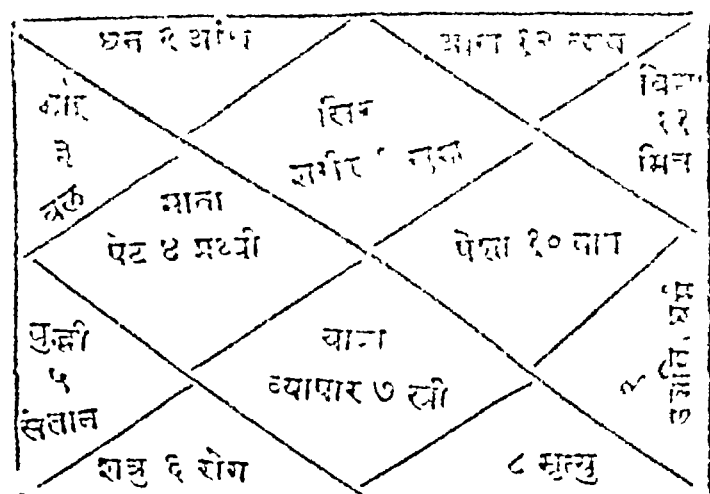
(२२६) ग्रह—सूर्य्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र शनैश्चर, राहू केतु, (इनके अंगरेजी फारसी नाम हमने सामुद्रिक के वर्णन में लिख दिये हैं देखलो। नक्षत्र और योगों के नाम अंगरेजी और फारसी में नहीं होते राहुको Dragons-tail केतुको Dragons-head कहतेहैं

नक्षत्र २७ अश्विनी, भरणी, कृतिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, श्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुणी, उत्तराफाल्गुणी, हस्त, चित्रा, स्वांती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती॥

योग २८ विष्कुम्भ, प्रीति, आयुष्यमान, सौभाग्य, शोभन, अतिगंड, सुकर्मा धृति, शूल, गंड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वर्याण, परिघ, शिव, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, ऐंद्र, वैधृत, सिद्ध॥

प्रत्येक राशि में ग्रहोंके समूह देखने में जिस आकार के ज्ञात होते हैं वही उसका नाम पड़ा। आश्चर्य की बात है कि प्रत्येक भाषा में ज्योतिष के सब नियम एकही अर्थ वाले और एकही काम तथा एकही ढंगके हैं। अंगरेजी का जन्म पत्र भी इसी भांति बनता है। केवल थोड़ासा अन्तर है॥

शकुन शास्त्र

OMENS

परमेश्वर का कोई काम निष्प्रयोजन नहीं, एक पत्ता भी किसी मुख्य प्रयोजन से हिलता है, सम्पूर्ण प्राणी और वे प्राण धारी एक अद्भुत परस्परी सम्बन्ध के तागे में बंधे हुए काम करते हैं और दूसरों पर प्रभाव डालते हैं इसका पढ़ना और समझना ही यह पवित्र गुप्त दैवी विद्या है ॥

(२२८) शकुन शास्त्र वह विद्या है कि जिसका ज्ञाता केवल पक्षीओं के उड़ने या चलने फिरने को ही देखकर होनहार गुप्त भेदों को बतला सकता है, मानो प्रत्येक पदार्थ के प्रत्येक कार्य्य को वह मुख्य अर्थों में पढ़ता है ॥

...... होता है तब शीघ्र ही लौट आता है इस बात को कौन भली भांति नहीं जानता ॥

(२३१) कुछ इसी देश पर नहीं वरन यूरोप के समस्त देशों में भी इसके मानने वाले लोग हैं चीन के निवासी भी इसका ध्यान रखते हैं ॥ अमेरिका के प्राचीन निवासी भी इसको जानते थे और बड़े २ विद्वान साइंस के प्रोफेसर भी यदि इस को हमारी नाईं नहीं मानते तो किसी दूसरी भांति से अवश्य मानते हैं। अन्य देशों के विद्वान यदि इसको भलीभांति न भी माने तो उसका एक कारण भी है कि उनके पास हमारे सदृश नियमानुसार और विश्वास के योग्य शास्त्र नहीं हैं।

(२३२) मैं प्रार्थना करता हूं कि आप इसको अवश्य परीक्षा करें धैर्य के साथ पचास सौ बार देखें फिर अपना मत प्रकाश करें मेंटल साइंस मेटीरीयल की अपेक्षा अधिक ध्यान देने के योग्य है। फिर देखिये कि वैद्यक विद्या आदि में कि जिस को सर्वदा सत्य मानते हैं, परीक्षा करने पर ६० प्रति सैकड़ा फल सत्य मिलते हैं पुनः यदि इसमें ५० प्रति सैकड़ा भी सत्य निकले तो क्या यह मानने योग्य नहीं है। मैं भी प्रथम बड़ा कट्टर फ्रीथिंकर था और प्रत्येक भांति से प्रत्येक बातको काटता था परन्तु मैंने तो अन्त में इसकी परीक्षा करके सत्य मान लिया है ॥

(२३३) इस विद्या के जानने से इतने लाभ है कि हम पहिले ही से प्रबन्ध करके दैवी दुर्घटनाओं से बच सकते हैं। जिस मनुष्य के समीप जाने या जिस मार्गके चलने से हम को भय मालूम हो उसको त्याग कर सकते हैं क्योंकि शकुन का अभिप्राय यह है कि इस कार्य को करोगे तो ऐसा फल होगा यह अभिप्राय कदापि नहीं कि यह अवश्यही होनहार है चाहे तुम कुछ ही करो।

(२३४) "जान दुखी अजान सुखी,, की कहावत यद्यपि सत्य है परंतु यह हमको किसी विद्या के सीखने से नहीं रोक सकती, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ का ज्ञान मूर्खता से श्रेष्ठ माना जाता है। जिस भांति शकुन के जानने से एक बाधा पीछे पड़ जाती है और न जानने वाले निश्चिंत रह जो चाहते हैं करते हैं इसी भांति वैद्यक विद्या और न्याय शास्त्र के भी विरुद्ध आक्षेप हो सकता है परन्तु कोई बुद्धिवान इसको स्वीकार न करेगा प्रथम तो हमको अग्रशोची और प्रबन्ध का समय मिल जाना यह हमारी अहो भाग्य है, दूसरे यदि शकुन का

फल अवश्य होनहारही हो तो भी प्रत्येक मनुष्य अपने भाग्य का वृत्तांत समय से प्रथम ही जानने को बड़े हित चित से चाहेगा ।

(२२५) शकुन दो प्रकार का होता है, प्रथम तो जब कोई मनुष्य कहीं को चले तब उसके सामने जो मनुष्य या पशु आवे या कोई कर्म करे, तो उस के मुख्य अर्थ होते हैं। दूसरे जब कोई मनुष्य बैठा हुआ किसी बात को सोचे और उस समय शकुन चाहे तो उसके नेत्रों के सन्मुख जो मनुष्य या पशु किसी मुख्य कर्म को करता हुआ देख पड़े उसके भी मुख्य अर्थ होते हैं, बिना इस चाहना के किसी कर्म का कुछ भी फल नहीं होता सब अपने अपने संसारिक काम में लगे ही रहते हैं, मानों शकुन एक नियम वा विद्या है कि यदि मनुष्य चाहे तो अपने आस पास की दशा देखकर कुछ भविष्य की वार्ता जान लेवे और यदि न चाहे तो उसकी इच्छा, शकुन का यह प्रयोजन नहीं कि उसका कार्य्य बिगाड़ या बनावे ।

(२२६) शकुन देखने के हेतु मुख्य अवसर की आवश्यकता है ऐ वह स्थान ऐसा हो कि जहां कोई भीड़ न हो, बहुत से सजातीय जानवर इकट्ठे न हों, घना वन न हो, वहां फल फूल के हरे पेड़ हों, सूखा और जला हुआ मकान न हो वहां मनुष्य अच्छे हों, जहां भय न लगे, प्रचंड वायु, या भूडोल बिजली वर्षा न चन्द्रमा आधा या क्षीण तिथि न हो ।

(२२७) बाजार या मेला के भीतर शकुन नहीं देखा जाता, बनाया हुआ शकुन बुरा या भला कैसा ही प्रभाव नहीं रखता, जहां भांति २ के शकुन एक दूसरे के विपरीत होते हों तो समझना चाहिये कि यह स्थान योग्य नहीं और शकुन का फल कुछ न होगा । किसी कारण एक बात पुन: २ हो वह भी शकुन न समझी जायगी ।

पदार्थों के शकुन

धन, सरसों, दांत, संख, मछली, मांस, गोबर, मधु मक्खि, नील सर्प।
शत्रु रस, हाल, पान, राई, छत्र, पुष्प, प्रज्वलित अग्नि बाजे, अंकुश
चवर, रत्न धातु, उत्तम औषधि मदिरा, पका शाक हाथी पशु, बकरी।

[२३९] यात्रा को घर से निकलकर सन्मुख निम्न लिखित वस्तुऐं आवें तो जानना चाहिये कि शकुन अशुभ है कार्य में विघ्न पड़ेगा, उस को उचित है कि लौट आवे या अत्यंत आवश्यकता हो तो इन पदार्थों को बांये हाथ की ओर लेकर चला जावे।

अंगारा, ईंधन, राख, रस्सी कीचड़, तिलकुट कपास, हड्डी झाड़, खुले हुए शिर के केश, काली वस्तु लोहा, छाल, पत्थर, विष्टा, बुरी औषधि तेल, गुड़, चमड़ा खाली या फूटा बर्तन नमक, मोटा [illegible], प्रचंड वायु॥

[२४०] दाहिनी ओर पवन चल रही हो और बाईं ओर को पलट जावे तो सब कार्य सिद्ध हो जावें। मोर, घोड़ा, बैल, राजा राजहंस मिले तो शुभ शकुन, मृतक घर से निकलते समय शुभ परन्तु घर में प्रवेश करते समय अशुभ, अपना संगी आवे तो शुभ शकुन, चिड़ियों की लड़ाई या अपने कुटुम्ब की लड़ाई बुरा शकुन, पांव का हिलना, वस्त्र उलझना, टोपी गिरना, ठोकर खाना, शिर में कुछ लगना, भागते का छूटजाना यह शकुन अशुभ है।

मनुष्य के शकुन

[२४१] यदि कोई पीछे से कहे कि जावो भाई, सन्मुख से स्वरूपवान श्वेत वस्त्र धारी फल फूल लिये हुए आवे, राजा, ब्राह्मण पुस्तक लिये और तिलक लगाये, प्रसन्न ब्राह्मण, रंडी, कन्या, जोड़ा, गोद में बच्चा लिये हुए, घोड़े या बैल पर सवार मिले तो यह शुभ शकुन है।

(२४२) और यह अशुभ शकुन है कि यदि पीछे से कोई कहे कि कहां जाते हो ठहरो मत जावो, या सन्मुख मुंडा हुआ या नंगा शूद्र आवे अंग भंग-वाला, काना, रोगी तेल मलता हुआ, वमन करता हुआ गर्भवती, विधवा, रंजस्वला स्त्री, नपुंसक, हिजड़ा, या नृत्य करने वाला, अधिक रोता हुआ, सन्यासी, काला मनुष्य कुरूप काले वस्त्र पहिने हुए, क्रोधित हाल हुए, लड़ता हुआ, कुछ मांगने वाला, ऊंट गधा या भैंसा पर सवार, मदिरा पान किये हुए, बहुत बाल वाला हारा हुआ।

(२४३) **छींक के अर्थ**-यह शकुन बहुत अशुभ है इस से यदादि हट न करे यह और शुभ शकुनों पर भी बल डालकर अशुभ प्रभाव दिखाते हैं। दाहिनी ओर से या सन्मुख छींक हो, स्वयं ही छींक आय होते समय या खाते समय ऊपर की ओर से छींक हो किसी कार्य के सोचने या आरंभ करते समय-गांव में प्रवेश करने के समय बाई ओर छींक हो।

इनके अतिरिक्त और भी थोड़ीसी छींकें हैं जो शुभभी होती हैं वह यह हैं बाईं ओर से, नीचे की ओर से दो छींक एक संग, घर आए वस्त को छींक हो।

(२४४) **अंग फड़कना**-मनुष्य के शरीर का—यदि मस्तक फड़के तो पृथ्वी लाभ, नाक के ऊपर मित्र का मिलाप, आंख से विजय व प्रसन्नता, होंठ और गाल से मित्र का लाभ कान से प्रसन्नता के समाचार, नाक से सुगंधित पदार्थ हथेली खुजावे तो रुपया मिले पैर का तरवा खुजाय तो यात्रा करनी पड़े, चूची फड़के तो शत्रु भय, बगल (कांख) से विजय, पीठ से हार हो, कमर और पसली से प्रसन्नता, जांघ और नाभि से हानि, हाथ और पांव का ऊपरी भाग फड़के तो लाभ हो, गुदा से सवारी, लिंग से स्त्री और कोश से पुत्र, पेट फड़के तो स्त्री की उन्नति, पुरुष का दाहिना और स्त्री का बायां अंग फड़कना शुभ, और दूसरा अशुभ होता है।

(२४९) भैंस--का शकुन गाय की समान जानना चाहिये, दो भैंस एक संग दाहिनी ओर से बाईं ओर को आजाय तो फौजदारी [लड़ाई] हो ॥ भैंस पर मनुष्य चढ़ा हुआ सन्मुख आजावे तो मानो मृत्यु आगई, उन को बांय हाथ लेवे ।

(२५०) बकरी और बकरा-इनका दर्शन और शब्द सदैव शुभ चलते समय बोले या आधी रात को बोलें तो अत्यंत शुभ, सन्मुख कोई कान पकड़े लाता है तो कार्य सिद्ध हो, भेड़े और बकरे का दाहिना शुभ कार्य में शुभ और बांयां बुरे कार्य्य में शुभ ॥

(२५१) बिल्ली--मुंह में मांस लिये हुए बोले तो शुभ खाली मुंह बोले तो अशुभ, बिल्लियां लड़ें तो अशुभ, पाव सूंघे चाटे, उछाल मार जावे, ऊपर गिरे, तो रोग और मृत्यु, विद्यार्थी और गुरू के मध्य से निकल जावे तो विद्या प्राप्त में विघ्न, घर से निकल जावे तो शत्रु अथवा रोगी का विनाश ।

[२५२] हिरण—दाहिनी ओर शुभ, बाईं ओर अशुभ, मलमूत्र त्यागता हो, मस्तक खुजाता हो तो अशुभ, हिरण चारों ओर घूम जावे या लड़ते हो तो भी अशुभ आंख फाड़ कर देखे या मैथुन करते हों तो अत्यंत ही शुभ, समूह बाईं ओर से दाईं ओर आवे तो प्रतिष्ठा मिलै, रास्ता काटना अशुभ आगे २ चले तो दूर जाना पडे दो पहर के उपरांत यदि झुंड दाहिनी ओर से बाईं ओर आवे तो अशुभ,

(२५३) शुकर—घरैला हो या बनैला—कीचड़ में लिपटा हो तो शुभ सूखा अशुभ, चलते समय दाईं ओर बोलें या चले तो शुभ आगे पीछे अशुभ, घुसते समय इस के विरुद्ध फल होता है ।

(२५४) गीदड—मोन बैठा हो या जोड़ा सन्मुख आवे तो अशुभ, बाईं ओर आवे या बोले तो शुभ, गांव में प्रवेश करते समय दाहिना शुभ, बोलने में प्रथम [illegible] फिर हा हा शुभ ।

(२५५) खरगोश--घर बनाते समय देख पड़े तो शुभ सदैव दाहिनी ओर शुभ' मार्ग काटे तो अशुभ, गांव में प्रवेश करते समय प्रथम शुभ शकुन हों फिर बांई ओर खरगोश आवे तो काम पूरा हो नहीं तो नहीं, सन्मुख बोले तो शुभ पीछे बोले तो यात्रा न करे बांई ओर बोले तो जीविका मिले शेर चलते समय बोले तो अत्यत उत्तम शकुन है।

[२५६] बन्दर—दाहिनी ओर हों या दाहिना अंग खुजावे तो शुभ परंतु मैथुन करता हो तो अत्यंत अशुभ।

(२५७) ऊंट_दाहिओर बैठा बोले तो शुभ घोर शब्द करे तो अशुभ

[२५८] गिरगिट—ऊंचा चढ़ता हुआ मिले तो रोगी हो रोज रात को बांई ओर बोले तो शुभ।

सामुद्रिक का कोड़पत्र ।

धर्मावलंबी मनुष्य प्राय दुबले गोल मस्तकवाले, छोटी आं
और नोकदार नाक वाले होते हैं वार्त्ता करने के समय जिस
मुख का [illegible] बदले वह या तो बड़ा ही बुद्धिमान होता है य
बड़ा ही मूर्ख । कुयोगि पुरुषों के माथेपर खड़ी रखाएं होती हैं थे स
देने वाले वक्र दृष्टि से देखते हैं । सामुद्रिक शास्त्र नियमोंके प्रतिकू
जो बड़े २ फिलास्फर कुरूप हुए हैं उसका कारण यह है कि
स्वरूपवान मनुष्य इच्छित प्रतिष्ठा आदि पाकर अहंकारी तथा निश्चं
हो जाते हैं और कुरूप का कोई ग्राहक नहीं होता अतएव वह ब
श्रम करते हैं और स्वयं योग्यता को प्राप्त कर लेते हैं ॥ आंख—भू
दयावान की काली प्रत्येक काम शीघ्र करने वाले और क्रोधी
नीली दृढ़ प्रतिज्ञ की, तिर्छी कपटी की बड़ी स्वच्छ और नीली पा
की परन्तु वह डाही तथा संशयी होवे । होंठ—ऊपर का नोकद
डरपोक का, मोटा इन्द्री पालक का, ऊपर का बाहर को निकला लो
व क्रोधी का ॥ नाक छोटी वाला, अप्रतिष्ठा नोकदार विघ्न का
और बड़ी नाक वाला साहसी ॥

———

कुछ सत्य घटनायें

आर्य्य दर्पण जून सं० १८९२ ई० इस समाचार पत्र में एक लेख छपा था कि दक्षण के एक प्रसिद्ध पंडित ज्योतिषी गोविंद चेटी जी से एक अंगरेजी अफसर C L Peacock Lieut R, A ने परीक्षा के अर्थ कुछ प्रश्न किये और बिलकुल यथार्थ उत्तर पाया- साहब ने अपने मन में एक पक्षी का नाम सोचा ज्योतिषी ने ठीक वही नाम बतला दिया।

TIT BITS इस नाम के अंगरेजी पत्र ३० सितम्बर १९०५ ई० में छपा था कि महारानी विक्टोरिया को एक Gipsy बन्जारी Mother Maden नामीने बचपन में बताया था कि प्रिंस एलबर्ट से विवाह होगा और तुम्हारी संतान से एक लड़का उस देश का राजा होगा जिस देश का वर्तमान में कुछ नाम नहीं है मतलब जर्मनी देशसे था जो पीछे प्रशीया से अलग होकर प्रथक राज्य बनगया॥

फ्रांस के प्रेसीडेंट करनट साहब जो मारे गये हैं उन की स्त्री के पास एक अद्भुत मूर्त्ती है जो उन के पति को एक अफसर ने बचपन में दीथी जो उसे भारतवर्ष से ले गया था उसने यह कह दिया था कि यह सदूजराद के घराने से मिली है इस का यह प्रभाव है कि जिस के पास यह हो वह राज्य पदवी को पाता है परंतु फिर मारा भी जाता है इस घराने के सब राजे इसी प्रकार मारे गये हैं यह भी उसी पत्र में छपा था।

राजा रविवर्मा

के

प्रसिद्ध चित्र ।

प्रकाशक और मुद्रक

शंकर नरहर जोशी ।

चित्रशाला स्टीम-प्रेस,

घर नंबर ८१८ सदाशिव पेठ,

पूना सिटी ।

आवृत्ति दूसरी

सन् १९१३

मूल्य एक रुपया ।

प्रास्ताविक दो शब्द।

राजा रविवर्मा के चित्र सारे भारतवर्ष में और परदेश में भी अत्यन्त लोकप्रिय हुए हैं, तथापि उनकी कीमत, सर्वसाधारण लोगों के सामर्थ्यानुसार न होने के कारण सब चित्रों का संग्रह करना सब लोगों के लिए सुलभ नहीं है। ऐसी दशा में, यह विचार हुआ कि यदि ये चित्र हाफटोन प्रोसेस की पद्धति से छोटे आकार में छापकर, उनकी एक पुस्तक तैयार की जाय तो उनका संग्रह करना लोगों के लिए अधिक सुलभ होगा अतएव यह पुस्तक प्रकाशित की गई। इस पुस्तक में राजा रविवर्मा के प्रायः बहुत से प्रसिद्ध चित्रों का समावेश हुआ है। सब के सुभीते के लिए मूल्य भी बहुत थोड़ा रखा है। प्रत्येक चित्र के साथ तत्सम्बन्धी पौराणिक अथवा ऐतिहासिक कथानक भी दिया है। पुस्तक के आदि में राजा रविवर्मा का सचित्र संक्षिप्त चरित्र भी दिया है। प्रस्तुत पुस्तक का कथाभाग, तथा राजा रविवर्मा का चरित्र, पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी ने मराठी पुस्तक के आधार पर लिखा है। आशा है कि हिन्दी-भाषा भाषी ललितकलाभिमानी रसिक जन इस पुस्तक का अच्छा आदर करेंगे।

प्रकाशक।

अनुक्रमणिका।

प्रसिद्ध भारतीय चित्रकार

राजा रविवर्मा।

—:o:—

त्रावनकोर के क्षत्रिय घराने से राजा रविवर्मा का निकट-सम्बन्ध था। २९ एप्रिल सन् १८४८ को किलिमनूर में उनका जन्म हुआ। राजा रविवर्मा के पूर्वजों ने, लड़ाई के समय, अपने सैनिक काम से त्रावनकोर के राजा को जो मदद की थी उसके बदले में उन्हें किलिमनूर गाँव इनाम मिला था। अपनी एक बहन और तीन भाईयों में राजा रविवर्मा सब से ज्येष्ठ थे। राजा रविवर्मा की माता उमा आम्बाबाई बड़ी सुशिक्षित स्त्री थीं और उस प्रान्त में कवयित्री के नाते से वह बहुत प्रसिद्ध थीं। इसी कारण इसकी चारों सन्तान अत्यन्त बुद्धिमान उपजीं। चित्रकला की ओर इन सब की पहले ही से प्रवृत्ति थी। उस समय, आज कल की तरह, अँगरेजी शिक्षा का प्रचार न था। अतएव रविवर्मा को पहले पहल संस्कृत भाषा का अध्ययन करना पड़ा। परन्तु खड़िया या कोयले से अपने मकान की दीवालों पर देवताओं के चित्र खींचने की ओर उनकी उसी समय से, विशेष प्रवृत्ति थी।

रविवर्मा की चित्रकला-सम्बन्धी यह प्रीति, उनके मामा राजा राजवर्मा को छोड़ कर, कुटुम्ब के अन्य मनुष्यों को कुछ पसन्द नहीं आती थी। राजा राजवर्मा अलौकिक बुद्धिशाली और सुसंस्कृत मन के पुरुष थे। चित्रकला पर उनकी भी बहुत प्रीति थी और अन्य कलाओं की तरह इस कला में भी उनकी अच्छी गति थी। उन्होंने राजा रविवर्मा को अच्छा उत्तेजन दिया। रविवर्मा तेरह वर्ष की उम्र में अपने मामा के साथ त्रिवेन्द्रम् को गये और अपनी चित्रकला के कुछ नमूने उन्होंने वहां के महाराज को दिखलाये। उन चित्रों को देखकर महाराज बहुत प्रसन्न हुए। उस समय चित्रकला का व्यवसाय कुछ कम दरजे का समझा जाता था, पर महाराज का मत इसके विरुद्ध था। रविवर्मा ने अल्पावस्था ही में जो चित्रकुशलता दिखलाई उससे महाराज ने समझ लिया कि यह लड़का, आगे चल कर, उत्तम चित्रकार होगा। अतएव महाराज ने उसे अच्छा आश्रय दिया। सन् १८६६ में त्रावनकोर की बड़ी बहन के साथ राजा रविवर्मा का विवाह हुआ। त्रावनकोर-राज्य के नियमानुसार बाप की मिलकियत लड़के को न मिल कर वह उसकी बहन के लड़कों को मिलती है। इस नियम के अनुसार राजा रविवर्मा की दो नातिनों का त्रावनकोर के राज्य से स्वामित्व-सम्बन्ध उत्पन्न हो गया है। भारतीय ...ने के पहले पदवीधर कुमार मार्तण्डवर्मा राजा रविवर्मा के भतीजे ... अस्तु।

स्वर्गीय राजा रविवर्मा।

सन् १८६८ में थियोडोर जान्सेन नामक एक आंग्ल चित्रकार त्रावनकोर के दरबार में आया। महाराज ने अपने राजकुटुम्ब के अन्य मनुष्यों के चित्र खींचने का कार्य उसको सौंपा। यह चित्रकार कुछ क्रोधी स्वभाव का था। इस कारण चित्र खींचते समय वह अन्य लोगों को अपने पास न बैठने देता था। परन्तु महाराज के कहने से थियोडोर जान्सेन ने रविवर्मा को अपनी चित्रलेखन-कुशलता देखने की आज्ञा दी। इस चित्रकार ने तैल-रंग (Oil colour) में जो चित्र निकाले उनका उभाड़ देखकर रविवर्मा को बड़ा आश्चर्य हुआ। और चित्रकला की उस शाखा में प्रवीणता प्राप्त करने का उन्होंने संकल्प किया। उन्होंने तुरंत ही रंग मँगाये और थियोडोर के निकाले हुए चित्र सामने रखकर वे उनकी प्रतिकृति करने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु रंग का प्रमाण शुद्ध रीति से मिलाने में सहायता करने वाला कोई मार्गदर्शक उस समय उनके पास न था, इस कारण उन्हें बहुत सी अड़चनें पड़ने लगीं। उस समय त्रावनकोर राज्य में केवल एक ही महाशय ऐसे थे जो तैलरंग के चित्रों के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान रखते थे। उनका नाम रामस्वामी नायक था। ये राजमहल ही में चित्रकला का अभ्यास किया करते थे। एक बार राजा रविवर्मा किसी शंका का निवारण करने के लिए रामस्वामी के पास गये। उस समय रामस्वामी के मन में, क्षुद्र विचारों के कारण, यह ईर्षा उत्पन्न हुई कि भविष्य में यह हमारा प्रतिस्पर्धी होगा अतएव उन्होंने रविवर्मा की शंका दूर करने से इन्कार किया। इस घटना से रविवर्मा को भी ईर्षा उत्पन्न हुई और उन्होंने निश्चय किया कि जब तक रामस्वामी पर अपनी छाप न बैठा लूँगा तब तक अपना प्रयत्न बराबर जारी रखूँगा। प्रतिस्पर्धी मनुष्य को पराजित करने के लिए ईर्षा के समान दूसरा कार्यकर्त्ता गुण नहीं है। रामस्वामी में कल्पना का अभाव था। उन्हें शीघ्र ही यह विश्वास हो गया कि इस गुण में रविवर्मा की बराबरी करने के लिए हम असमर्थ हैं। चित्रकला-सम्बन्धी प्रदर्शनियों में उपर्युक्त दोनों चित्रकारों के चित्र रक्खे जाते थे, पर रामस्वामी को कभी एक भी पारितोषिक नहीं मिला, किन्तु उनके छोटे प्रतिस्पर्धी रविवर्मा को ही बहुधा पारितोषिक मिलते रहे। राजा रविवर्मा को महाराज केरलवर्मा का अच्छा आश्रय मिला था। रविवर्मा ने महाराज और महारानी के चित्र तथा अन्य अनेक से चित्र बनाये थे। सन् १८७३ में मदरास में चित्रकला की बड़ी प्रदर्शिनी हुई। उसमें त्रावनकोर के महाराज ने, अपने दरबार के अंगरेज़ी रेज़ि-डेन्ट की सूचना से, राजा रविवर्मा के दो चित्र रक्खे थे। उनमें से एक चित्र के लिए उन्हें सोने का पदक मिला। यह चित्र नायर जाति की एक सुन्दर स्त्री का था। उसकी सब जगह उस समय बड़ी प्रशंसा हुई। मद-रास के गवर्नर लार्ड हावर्ट ने रविवर्मा की स्वयं मुलाकात की और उनकी कुशलता की प्रशंसा करके उन्हें अच्छी उत्तेजना दी। रविवर्मा जब [illegible] लौट गये तब महाराज ने उनका बड़ा आदर किया और उन्हें [illegible] पारितोषिक दिये। जिस चित्र पर रविवर्मा को सुवर्ण-पदक मिला वही चित्र फिर विएना की प्रदर्शिनी में भेजा गया। वहाँ की प्रदर्शिनी के [illegible] ने उस चित्र के लिए रविवर्मा को एक पदक और प्रशंसापत्र दिया।

अगले वर्ष राजा रविवर्मा ने मदरास की प्रदर्शिनी में एक उस दृश्य का चित्र रखा कि जिसमें "एक तामिल स्त्री 'सारबत' नामक वाद्य बजाती है।" इसके पारितोषिक में उन्हें फिर सुवर्ण-पदक मिला। सन् १८७४ ई० में जब महाराज सप्तम एडवर्ड (उस समय प्रिंस ऑफ वेल्स) भारतवर्ष में आये तब त्रावनकोर-महाराज ने यह चित्र, और दो चित्रों के साथ उन्हें अर्पण कर दिया।

उन चित्रों की बहुत प्रशंसा करते हुए महाराज ने कहा कि यूरोपियन चित्रकार की सहायता के बिना ऐसे चित्र बनाना सचमुच ही बड़ी कुशलता का काम है। सन् १८७६ में रविवर्मा ने "शकुन्तला-पत्र-लेखन" नामक अपना चित्र मदरास की प्रदर्शिनी में भेजा था। उसके लिए पहले दरजे का इनाम मिला और ड्यूक आफ बकिंगहम ने वह चित्र तुरत ही मोल ले लिया। रविवर्मा को बालपन में संस्कृत भाषा की शिक्षा मिल ही चुकी थी, इस कारण संस्कृत महाकाव्यों के भिन्न भिन्न प्रसंगों के चित्र बनाने की ओर उनकी सहज ही प्रवृत्ति हुई। सन् १८७८ में मदरास के सरकारी राजमहल में रखने के लिए ड्यूक आफ बकिंगहम की एक बड़ी तसवीर बनानी थी। यह काम रविवर्मा को ही दिया गया! यह चित्र बहुत ही ठीक और सुन्दर बना है। यह चित्र किसी यूरोपियन चित्रकार के बढिया से बढिया चित्र से भी किसी बात में कम नहीं है। ड्यूक आफ बकिंगहम तो इस चित्र को देख कर इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने राजा रविवर्मा की बहुत प्रशंसा की। वे बोले, "मैं अपना चित्र बनवाने के लिए एक प्रसिद्ध यूरोपियन चित्रकार के सामने अठारह बार बैठा, परन्तु राजा रविवर्मा ने अपने चित्र में मेरा जो सादृश्य दिखलाया है उसका आधा सादृश्य भी उस यूरोपियन चित्रकार से नहीं दिखलाते बना"। राजा रविवर्मा मदरास से त्रिवेन्द्रम गये। इसके दो महीने बाद उनके आश्रयदाता त्रावनकोर के महाराज का देहान्त हो गया और उनके भाई गद्दी पर बैठे। ये बड़े विद्वान् और चित्रकला के भोक्ता थे। इनकी इच्छा से रविवर्मा ने "सीताशपथ" नामक चित्र बनाया। बडोदा के दीवान राजा सर टी० माधवराव उस समय त्रिवेन्द्रम आये थे। उन्हें यह चित्र इतना प्रिय लगा कि उन्होंने वह बडोदा के महाराज के लिए तत्काल खरीद लिया और अपने लिए सारंगी बजानेवाली स्त्री का चित्र मोल लिया। यह दूसरा चित्र सन् १८८० में पूने की प्रदर्शिनी में रखा गया था। वहां उस पर गायकवाड सरकार का सुवर्ण-पदक मिला उस समय सर जेम्स फर्ग्युसन् बम्बई के गवर्नर थे। उन्हें तो यह चित्र इतना पसन्द आया कि उसकी दूसरी प्रति रविवर्मा से बनवाकर उन्होंने उसका संग्रह किया। उत्तेजना के लिए गवर्नर साहब ने इँगलैंड के राजघराने के मनुष्यों के चित्रों की एक पुस्तक रविवर्मा को भेंट की। सन् १८८१ के अन्त में जब बडोदा के महाराज श्रीमान् सयाजीराव को अधिकार मिला तब महाराज के आमन्त्रण से राजा रविवर्मा अपने भाइयों के साथ बडोदा गये और वहां वे चार मास तक रहे। इतने अवकाश में उन्होंने राजघराने के लोगों, सर टी० माधवराव और रेजिडेन्ट मि० मेलविल के चित्र बनाये। इसके बाद भावनगर के महाराज के आमंत्रण से रविवर्मा भावनगर गये और

हाराज के लिए उन्होंने कुछ चित्र बनाये। भावनगर से वे फिर त्रिवे-
म को गये। इसके थोड़े ही दिन बाद उनके मामा राजवर्मा का देहान्त
आ। राजवर्मा ने यदि उत्तेजना न दी होती तो रविवर्मा इतने बड़े
सिद्ध चित्रकार हुए होते या नहीं, इसमें सन्देह ही है।

मैसूर के महाराज सर रामराजेन्द्र वोडायर संगीत और चित्रकला
बड़े प्रेमी थे। उनके निमन्त्रण से राजा रविवर्मा सन् १८८५ में मैसूर
ये। वहां वे तीन मास रहे। इतने समय में उन्होंने महाराज और राज-
टुम्ब के अन्य लोगों के चित्र बनाये। मैसूर के महाराज ने रविवर्मा को
ड़ बड़े पारितोषिक दिये। उनमें दो मैसूरी हाथी भी थे। इसके बाद कल-
त्ते और लंडन में जो प्रदर्शिनियां हुई उनमें रविवर्मा को रौप्यपदक और
शंसापत्र मिले। कुछ दिन बाद उनकी वृद्ध माता का स्वर्गवास हुआ,
स कारण उनके मन को बड़ा धक्का पहुंचा। यह पूरा वर्ष उन्होंने घर में
ी बैठ कर व्यतीत किया। सन् १८८८ ई० में श्रीमान् सयाजीराव महा-
राज गायकवाड़ नीलगिरी पर्वत पर गये थे। उस समय उन्होंने अपने
ड़ोदा के नवीन राजमहल में लगाने के लिए रामायण और महाभारत
के प्रसंगों पर १४ चित्र बनाने के लिए रविवर्मा से कहा। इस लिए पौरा
णिक काल के राजघरानों के स्त्रीपुरुषों का पहनावा निश्चित करने के
लिये रविवर्मा उत्तर भारत के राजाओं की ओर आये। मालवा, दिल्ली,
राजपूताना, आगरा, लाहौर, काशी, प्रयाग, कलकत्ता इत्यादि अनेक
स्थलों में प्रवास किया, पर उनका उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ।

घर लौट आने पर महाराज गायकवाड के बतलाये हुए चौदह चित्रों
का काम उन्होंने हाथ में लिया और १८९० के अन्त में वे चित्र लेकर राजा
रविवर्मा बड़ोदा को गये। पहले कुछ दिन तक उन चित्रों की प्रदर्शिनी की
गई थी, जिसमें सब लोग उनको देख सकें। उन्हें देखने के लिए बम्बई
प्रान्त के भिन्न भिन्न स्थानों के सैकड़ों दर्शक बड़ोदा को गये थे। इन चित्रों
की लाखों प्रतियां सारे भारत भर में छप गई। इस लोकप्रियता के बल
पर रविवर्मा ने बम्बई में एक शिलायन्त्रालय खोला। राजा रविवर्मा ने
समझ लिया कि पौराणिक और धार्मिक कथाओं की व्यक्तियों के चित्रों
पर हम लोगों का बड़ा प्रेम है। अतएव वे इसी उद्योग में लगे और उसमें
कल्पनातीत सफलता प्राप्त की। हिमालय से कन्याकुमारी तक शायद ही
कोई सुखी कुटुम्ब ऐसा निकलेगा जिसके घर में राजा रविवर्मा का एक
भी चित्र न हो। शिकागो की बड़ी प्रदर्शिनी में रविवर्मा ने दस चित्र भेजे
थे। उनमें यहां की चालढाल और पोशाक आदि की रीति दिखलाई थी।
उनके लिए रविवर्मा को पदवियां और पदक मिले और अमेरिकन पत्रों
ने उनकी बड़ी प्रशंसा की। राजा रविवर्मा को उनकी उम्र भर में जो
पदक और पारितोषिक मिले उनकी सूची यदि दी जाय तो वह बहुत
बड़ी हो जायगी। इस विषय में इतना ही कहना बस होगा कि ऐसा अव-
सर कभी नहीं आया कि उन्होंने प्रदर्शिनी में अपने चित्र भेजे हों और
उन्हें उन चित्रों के लिए पारितोषिक या पदक न मिले हों!

सन् १८९४ में, त्रावणकोर के महाराज, रविवर्मा को

पालनकर्ता के नाते से, उनके साथ, उत्तर भारत का प्रवास करने के लिए ले गये। सन् १९०० में लार्ड कर्जन अपनी पत्नीसहित त्रिवेन्द्रम गये थे। उस समय रविवर्मा से मिलकर उन्होंने उनके कुछ चित्र अवलोकन किये। उन चित्रों को देख कर लार्ड कर्जन को बड़ा आनन्द हुआ और राजा रविवर्मा को सम्बोधन करके उन्होंने ये वचन कहे, "पाश्चात्य कल्पना पाश्चात्य रीति से चित्ररूप में प्रगट करने की आपकी सिद्धहस्तता प्रशंसनीय है।"

छापाखाना खोलकर राजा रविवर्मा बम्बई और त्रिवेन्द्रम में बारी बारी से रहने लगे। बम्बई और मदरास के प्रसिद्ध पुरुषों के चित्र उन्होंने बनाये हैं। उदयपुर के महाराना का निमंत्रण पाकर रविवर्मा वहां गये। राजपुताने के प्रसिद्ध शूर महाराना प्रतापसिंह का चित्र वहां उन्हें देखने को मिला। उदयपुर का सृष्टिसौंदर्य देखकर रविवर्मा को बड़ा आनन्द हुआ। रविवर्मा के भाई राजा राजवर्मा भी उत्कृष्ट चित्रकार थे। अस्तु।

योद्धा, कवि, नाटककार, वक्ता, साधु, राजनीतिज्ञ, तत्ववेत्ता, भिषग्वर्य, वैयाकरणी, ज्योतिषी और शिल्पशास्त्रज्ञ जिस भारतवर्ष में निर्माण हुए उसी भारतवर्ष में रविवर्मा के समान जगत्प्रसिद्ध चित्रकार उत्पन्न करने की भी शक्ति है। यह बात उपर्युक्त अल्प चरित्रलेख से भली भांति सिद्ध होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि चित्रकार के नाते से राजा रविवर्मा का नाम भारतवर्ष के इतिहास में सदा चमकता रहेगा। चित्रकला के विषय में हमारे देश के बहुत से होनहार पुरुषों के प्रयत्न दिन पर दिन बराबर हो रहे हैं, ऐसी दशा में यह आशा करना बिलकुल ही अयोग्य न होगा कि अब शीघ्र ही कोई दूसरा रविवर्मा उत्पन्न होगा।

राजा रविवर्मा का स्वभाव बहुत ही शान्त था और वे उदार मन के सभ्य पुरुष थे। गरीबों को यथाशक्ति मदद देने में वे सदा आनन्दपूर्वक आगे रहते थे। इसमें कुछ सन्देह नहीं की उनकी शान्त और रसिक वृत्ति का, चित्रकला-सम्पादन में, उन्हें बहुत उपयोग हुआ होगा। चित्रलेखन से जो समय बचता था उसे वे अँगरेजी भाषा का ज्ञान बढ़ाने में अथवा कोई संस्कृत कविता पढ़ने में खर्च करते थे। उन्हें अपने गुण-गौरव का बिलकुल ही गर्व न था। इसके विरुद्ध वे सदा कहते रहते थे कि ज्यों ज्यों मेरा ज्ञान बढ़ता है त्यों त्यों मुझे अपनी पूर्वकृतियों की भूलें मालूम होती जाती हैं।

गरुड़वाहन विष्णु ।

इस चित्र में यह सुन्दर दृश्य दिखलाया गया है कि भगवान विष्णु गरुड़ पर बैठ कर आकाश-मार्ग से जा रहे हैं और दो सुन्दर देवकन्याएं हाथ में चामर लिये हुए दोनों ओर बैठी हैं ।

लक्ष्मी।

ये श्रीविष्णु की पत्नी हैं, इनका जन्म क्षीरसागर में हुआ। ये कमल से उत्पन्न हुई हैं, अतएव इन्हें "कमला" और "कमलजा" भी कहते हैं। देव और दैत्यों ने जब समुद्र-मंथन किया तब उससे चौदह रत्न निकले। उनमें प्रथम लक्ष्मी ही की गणना है। "लक्ष्मी कौस्तुभ पारिजातक सुरा०" इत्यादि श्लोक प्रसिद्ध ही है। लक्ष्मी को हम लोग सम्पत्ति का देवता मानते हैं।

सरस्वती ।

ये ब्रह्माजी की पुत्री हैं। ये विद्या की अधिष्ठात्री देवता हैं। प्रस्तुत चित्र में चित्रकार ने यह रमणीय और अत्यन्त उदात्त दृश्य दिखलाया है कि देवी सरस्वती पर्वतशिखर के एक शिला-खण्ड पर बैठकर गान कर रही हैं और उनका वाहन मयूर गान सुनता हुआ उनके पास खड़ा है।

कूर्मावतार ।

यह श्रीविष्णु का दूसरा अवतार है। कूर्म पुराण और श्रीमद्भागवत [illegible] इस अवतार की विस्तृत कथा लिखी है। उसका सार यह है कि जब [पृ]थ्वी पर पातकों का भार बहुत बढ़ गया तब वह रसातल को जाने लगी; [प]रन्तु श्रीविष्णु ने कछुए का रूप धर कर उसे अपनी पीठ पर धारण [किया] और उसकी रक्षा की ।

शंकर ।

श्रीशंकर कैलास में आसन पर बैठे हैं और पार्वती तथा गणपति उनकी गोद में बैठे हैं पास ही नन्दी बैठा है यही सुन्दर दृश्य इस चित्र में दिखलाया है ।

हरिहर-भेट।

इस चित्र में श्रीविष्णु-पत्नीसहित, हाथी पर बैठकर, और श्रीशंकर, पत्नी-पुत्रसहित, नन्दी पर बैठकर, परस्पर भेट कर रहे हैं। चित्रकार ने हाथी और नन्दी के मस्तक-भाग, अलग अलग न दिखा कर, एक ही भाग में दोनों प्राणियों के मस्तक दिखाते हुए जो कौशल प्रकट किया है वह प्रशंसनीय है।

विश्वामित्र-मेनका ।

श्रीदत्तात्रेय ।

अत्रि ऋषि की भार्या अनुसूया महा पतिव्रता थी। उसकी परीक्षा लेने के लिए, ब्रह्मा-विष्णु-महेश उसके आश्रम में गये और उसकी नग्नावस्था में, उसके पास जाकर, उन्होंने भिक्षा माँगी। परन्तु उसने, पातिव्रत्य के बलपर, उन तीनों देवताओं को बालक बना डाला! फिर सावित्री, लक्ष्मी और पार्वती के प्रार्थना करने पर उसने उन बालकों को पूर्वस्वरूप देकर उनकी स्त्रियों को सौंप दिया। इसके बाद उन त्रिदेवों ने अपने अपने एक त्रिमूर्ति निर्माण की और उसका नाम दत्तात्रेय रखा।

ध्या के
ज दश-
पिता थे। उनको इन्दुमती नामक पत्नी अ-त्यन्त सुस्वरूप थी। एक दिन इन्दुमती राजम-हल की छत पर बैठी हुई थी और उधर आ-काशमार्ग से ना-रद मुनि की स-वारी जा रही थी, उनकी वीणा में लगी हुई पुष्प-माला, वायु के वेग से टूट कर, नीचे बैठी हुई इन्दुमती पर आ गिरी! कोम-लता के कारण

अजविलाप।

इन्दुमती को ए-कदम मूर्च्छा आ-गई और अन्त में उसीसे उस-का प्राणोत्क्रमण हुआ। राजा अज ने जब देखा कि इस छोटी सी पु-ष्पमाला के आ-घात से हमारी पत्नी के प्राण गये तब वह अ-त्यन्त शोकाकुल हुआ। रघुवंश के आठवें सर्ग में कालिदास ने इस कथा का वर्णन किया है। उसमें उन्होंने करुणारस दर्शा-ने में कमाल कर दिया है।

मोहिनी।

देवों और दैत्यों के समुद्रमथन करने पर चौदह रत्न निकले। उनमें अमृत भी था। अमृत लेने के लिए देवों और दैत्यों में बड़ा वाद-विवाद हुआ। देवों की अपेक्षा दैत्य विशेष बलवान् थे। उन्होंने अमृत का कलश देवों से छीन लिया। अब देवता लोग डरे कि यदि अमृत दैत्यों ने पान कर लिया तो ये अवश्य अमर हो जायँगे। उन्होंने श्रीविष्णु की शरण ली। विष्णु ने "मोहिनी" का सुन्दर रूप धर कर देवताओं और दैत्यों की पंक्तियाँ बैठाईं और उस कलश का सारा अमृत देवताओं को परोस दिया। मोहिनी की सुन्दरता से मोहित हो जाने के कारण दैत्य, विष्णु के, इस कपट को नहीं समझ सके। इस चित्र में मोहिनी, वन में एक वृक्ष में ए, झूले पर बैठी हुई झूल रही है।

राम—धनुर्विद्या—शिक्षण ।

विश्वामित्र ने अपने यज्ञयागादि की, राक्षसों से, रक्षा करने के लिए राजा दशरथ से रामलक्ष्मण को माग लिया। फिर उन्होंने दोनों भाइयों को धनुर्विद्या की उत्तम शिक्षा दी। इस चित्र में विश्वामित्र श्रीरामचन्द्र को यह सिखला रहे हैं कि लक्ष्य पदार्थ पर अचल दृष्टि रख कर अचूक बाण कैसे छोडा जाता है।

अहल्या।

यह गौतम ऋषि की पत्नी है। इसके बाप ने प्रण किया था कि जो कोई सब से पहले पृथ्वी-प्रदक्षिणा कर आवेगा उसे हम अहल्या देंगे। अहल्या के लोभ से इन्द्र आदि ने पृथ्वी-प्रदक्षिणा की, पर उनके आने के पहले ही गौतम ऋषि ने एक प्रसूतावस्थ वाली धेनु की प्रदक्षिणा करके पृथ्वी-प्रदक्षिणा का पुण्य प्राप्त किया और अहल्या को पाया। बाद को जब इन्द्र ने गौतम ऋषि का कपटरूप बनाकर अहल्या का पातिव्रत्य भग किया तब गौतम ने अहल्या को यह शाप दिया कि "तू शिला होकर रह"। और इन्द्र को यह शाप दिया कि "तेरे शरीर में सहस्र भग हो जायँ"। आगे [illegible]युग में राम के पादस्पर्श से अहल्या का उद्धार हुआ। पंच महा[illegible]ओं में अहल्या का नाम पहले आता है।

सीताविवाह।

जनकदुहिता सीता के विवाह के लिए यह प्रण किया गया था कि " जो कोई शिव के इस धनुप को तोडेगा उसीको सीता जयमाल पहनावेगी। " यह धनुप इतना भारी था कि उसके उठाने में शिव के तीन सौ गण लगते थे, लंकापति रावण ने धनुप उठाने का प्रयत्न करके अपने को किस प्रकार हास्यास्पद बनाया सो वाल्मीकीय रामायण में बतलाया ही है। परन्तु श्रीरामचन्द्र ने वह धनुप तोड डाला और सीता ने उन्हें जयमाला पहना दी। इसी मंगल अवसर का सुन्दर दृश्य यहां दिखलाया है।

अरण्यवासिनी सीता ।

कैकेयी ने दशरथ से दो वर मांग लिये थे। एक वर यह था की भरत को राज्य दिया जाय और दूसरा यह था कि राम वनवास के लिए भेजे जायँ। इसके अनुसार श्रीरामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण ने चौदह वर्ष वन घास किया प्रस्तुत चित्र में यह दृश्य दिखलाया है कि सीता अकेली एक शिला पर बैठ कर आसपास का सृष्टि-सौंदर्य देख रही है।

सागर–गर्वापहार ।

रावण ने कपट-वेष से सीता का हरण करके उसे लंका में ला रखा। हनुमान ने उसका पता लगाया। इसके बाद वानर-सेना उतरने के लिए, श्रीरामचन्द्र समुद्र में पुल बांधने लगे। परन्तु समुद्र वह पुल टिकने नहीं देता था, बार बार वह उसे तोड डालता था। इस कारण रामचन्द्र ने कोप करके समुद्र को दण्ड देने के लिए हाथ में धनुष-बाण लिया। समुद्र ने जब देखा कि अब श्रीराम बाण छोड़ने ही वाले हैं तब वह स्वयं प्रकट हुआ और राम से क्षमा मांगी। इसी रामायण की कथा के अनुसार चित्र बनाया गया है।

भरत-मिलाप ।

कैकेयी के आग्रह से दशरथ ने जब राम को वनवास दे दिया तब कैकेयी के सत्वशील पुत्र भरत ने श्रीराम की पादुका सिंहासन पर स्थापित करके राम के नाम से राज्य करना प्रारम्भ किया और स्वयं नन्दि ग्राम में रह कर श्रीरामस्मरण में काल व्यतीत किया। श्रीरामचन्द्र चौदह वर्ष अरण्यवास करके और रावण को मार कर अयोध्या को लौट आये और अत्यन्त प्रेम के साथ वे भरत से मिले । इस अवसर का नाम "भरतमिलाप" है। भरत के समान भ्रातृप्रेम का उदाहरण दूसरा शायद मिलेगा ।

सीताशपथ ।

सामन्त मालु का यह दुष्ट आरोप सुन कर सीता को अत्यन्त विषाद हुआ और उसने अपनी माता पृथ्वी को पुकारा, "हे माता, यदि मैंने काया, वाचा और मन से श्री रघुनाथ की ही आराधना की हो तो तू मुझे अपने हृदयकमल में वास करने लिए स्थान दे!" यह शपथ करते ही पृथ्वी विदीर्ण होगई और उसने अपनी पुत्री सीता को फिर अपने पेट में धारण कर लिया !

ह बड़ा धर्मात्मा विष्णुभक्त था । एकादशी व्रत करने का इसका अटल निश्चय था । यमराज इस डर से ब्रह्माजी के पास गये कि मृत्युलोक में विष्णुभक्ति का प्रचार हो रहा है, इस कारण हमारा यमलोक अब उजड जायगा । यम की प्रार्थना से ब्रह्माजी ने, राजा रुक्मांगद का सत्व हरण करने के लिए मोहना नामक एक सुन्दर स्त्री भेजी । उसने राजा को इतना मोहित कर डाला कि वह उसके वश हो गया। एकबार एकादशी का दिन आते ही उसने राजा से अन्नग्रहण करने को आग्रह किया । अन्त में राजा पुत्र का शिर देने के लिए तो राजी हो गया, पर एकादशीव्रत भंग करने के लिए तैयार नहीं हुआ । इस चित्र में राजा रुक्मांगद अपने पुत्र का शिरच्छेद करने के लिए तैयार हुआ है, उसका पुत्र अपने पिता के वचन की रक्षा करने के लिए अपना शिर कटवाने को निर्भयता से खडा है और उसकी माता पुत्रवध का प्रसंग देखकर बेहोश होकर गिर पडी है ।

राजा रुक्मांगद अपने पुत्र का शिरच्छेद करते हैं ।

था तब उस राक्षस के भाई ने कपटमुनि के वेष में आकर उसका कंठभूषण माँग लिया और अलग ही अलग ऋतुध्वज की राजधानी में जाकर राजपुत्र के मरने की मिथ्या वार्ता राजा से बतलाई। सारी नगरी में शोक छा गया और मदालसा ने तत्काल अपने प्राण दे दिये। जब राजकुमार ऋतुध्वज लौटा तब उसे राक्षस का कपट मालूम हुआ। मदालसा के लिए उसने बहुत शोक किया और उसको छोड़ कर अन्य स्त्री के साथ विवाह न करने का निश्चय करके वह वैराग्यशील बन गया। ऋतुध्वज के कई मित्र थे। उनमें नागराज के दो पुत्र उसके परम स्नेही थे। उन्होंने नागलोक में जाकर यह समाचार अपने पिता से बतलाया। नागराज ने शिवाराधना करके कन्या मदालसा शिव से प्राप्त की और ऋतुध्वज को अपने घर बुला कर उससे कहा कि, "वर माँग।" ऋतुध्वज ने कहा, "मेरा राज्य धनधान्य आदि से समृद्ध है, मुझे आपकी कृपा से किसी बात की कमी नहीं है।" पर उसके अन्तःकरण का दुःख जान कर नागराज ने मदालसा को ऋतुध्वज के सामने खड़ा किया। उसे देखते ही ऋतुध्वज मोह-व्याप्त होगया। नागराज ने सच बात बतला कर मदालसा उसे अर्पण की। अपनी पुनर्लब्ध भार्या के साथ ऋतुध्वज अपने नगर को आया और सुख से राज्य करने लगा। उसके चार लड़के हुए। परन्तु प्रत्येक पुत्र के जन्मते ही मदालसा वैराग्योपदेश करके ब्रह्मपरायण करने लगी। इस प्रकार तीन पुत्र विदेही बन गये। चौथा पुत्र अलर्क ज्योंही उत्पन्न हुआ त्योंही राजा ने क्रोधपूर्वक मदालसा से कहा कि इसे वेदान्त बतला कर प्रवृत्तिमार्ग से च्युत मत करना। मदालसा ने पति की आज्ञा के अनुसार अलर्क को व्यवहार और राजनीति में दक्ष कर दिया। अलर्क ने बहुत वर्ष राज्य किया और अन्त में अपनी माता के प्रसाद से, अपने अन्य भाइयों की तरह, वह भी ब्रह्मपरायण हुआ। यह मदालसोपाख्यान बहुत सुन्दर है।

इस चित्र में उस समय का दृश्य दिखलाया गया है जब कि ऋतुध्वज, राक्षस को मार कर, उद्यान में गया है और वहां मदालसा की तथा उसकी चार आँखें हुई हैं, और जब वे दोनों परस्पर एक दूसरे पर अनुरक्त हुए हैं।

हस–दमयती ।

विदर्भ देश के भीष्मक नामक राजा के दमयंती नामक एक अत्यन्त सुन्दर कन्या थी । उसके सुन्दर रूप का वर्णन सुन कर इन्द्रादि देव भी उस पर लुब्ध हो रहे थे । परन्तु दमयंती निषध देश के राजा नल पर आसक्त थी । परन्तु नल को इस बात की खबर नहीं थी; अतएव उसने दमयंती की इच्छा जानने के लिए उसके पास अपना हंस भेजा था । उपर्युक्त चित्र में यह दृश्य दिखलाया है कि नल का भेजा हुआ हंस दमयंती के बाग में उतरा है और दोनों का कुछ संवाद होने के बाद दमयंती, नल के लिए, कोई सन्देशा हंस को बतला रही है ।

हंस-दमयंती ।

विदर्भ देश के भीष्मक नामक राजा के दमयंती नामक एक अत्यन्त सुन्दर कन्या थी। उसके सुन्दर रूप का वर्णन सुन कर इन्द्रादि देव भी उस पर लुब्ध हो रहे थे। परन्तु दमयंती निषध देश के राजा नल पर आसक्त थी। परन्तु नल को इस बात की खबर नहीं थी; अतएव उसने दमयंती की इच्छा जानने के लिए उसके पास अपना हंस भेजा था। उपर्युक्त चित्र में यह दृश्य दिखलाया है कि नल का भेजा हुआ हंस दमयंती के बाग में उतरा है और दोनों का कुछ संवाद होने के बाद दमयंती, नल के प्, कोई सन्देशा हंस को बतला रही है।

दमयती ।

यह राजा भीष्मक की कन्या दमयन्ती अपने प्रेमी राजा नल के विरह में चिंतित हो कर छत पर खडी है और उसकी दासी पखा से उस पर हवा कर रही है।

नल-दमयंती ।

इस चित्र में दमयंती को वन में अकेली सोती हुई छोड़ कर राजा नल चुपके से उठ जाना चाहता है ।

दमयंती ।

यह राजा भीमक की कन्या और पुण्यश्लोक राजा नल की पत्नी है। यह महा पतिव्रता थी। राजा नल जब द्यूत में अपना राज्य गवाँ कर वन-वासी हुआ तब दमयती ने भी उसके साथ वनवास स्वीकार किया। बाद को जब राजा उसे अकेला ही वन में छोड कर चला गया तब वह अत्यन्त दुःखी हुई। इस चित्र में वही दुःखित दमयती बैठी हुई विचार कर रही है।

शकुतला और उसकी सखियां।

शकुन्तला विश्वामित्र ऋषि और मैनका अप्सरा की कन्या है। कण्व ऋषि ने इसका पालन किया। महाभारत में जो शकुन्तला की मूल कथा लिखी है। उसमें और कालिदास के शकुन्तला नाटक की कथा में कुछ अन्तर है। यह चित्र शाकुन्तल नाटक की शकुन्तला का है। इस चित्र में यह दृश्य दिखलाया है कि एक सखी शकुन्तला से कुछ बातचीत कर रही दूसरी सखी उसकी चोटी बाँध रही है।

शकुन्तला–पत्र–लेखन ।

कण्व ऋषि की कन्या शकुन्तला जब कि आश्रम में अपनी सखियों के साथ घूम रही थी तब वहां राजा दुष्यन्त आया। राजा और शकुन्तला परस्पर एक दूसरे को देख कर मोहित हो गये। बाद को अपनी सखियों की सूचना से शकुन्तला ने "आपकी क्या अभिलाषा है?" इत्यादि पत्र लिखा। इस चित्र में शकुन्तला विचार करके पत्र लिख रही है और प्रियम्वदा तथा अनुसूया कुतूहलपूर्वक उसकी ओर देखती हुई बैठी हैं।

रंभा ।

रंभा भी इन्द्र की अप्सराओं में से एक सुन्दर अप्सरा है। शुकाचार्य का तप भंग करने के लिए इन्द्र ने इसीको भेजा था, पर उनकी वैराग्यशील वृत्ति के सामने इसकी एक भी नहीं चली।

भरत।

भरत, राजा दुष्यन्त का पुत्र, शकुन्तला से उत्पन्न हुआ। यह आर्यावर्त में महा पराक्रमी चक्रवर्ती राजा हो गया। बालपन में, जब कि यह कण्व ऋषि के आश्रम में रहता था, सिंह के छौनों के साथ खेलता था। वही दृश्य इस चित्र में दिखलाया है। हमारे देश को "भरतखंड" या "भारतवर्ष" इसीके नाम से कहते हैं।

तिलोत्तमा ।

तिलोत्तमा इन्द्र की अप्सराओं मे से एक प्रसिद्ध अप्सरा है। पुराणों में कई जगह इसका नाम आया है। इन्द्रसभा नाटक की तिलोत्तमा और इस तिलोत्तमा से कोई सम्बन्ध नहीं। राजा रविवर्मा का प्रस्तुत चित्र अत्यन्त मनोहर है।

शाकुन्तल–पत्र–लेखक ।

प्रस्तुत चित्र में शकुन्तला, अपनी सखियों के कहने से, राजा दुष्यन्त को विचारपूर्वक पत्र लिख रही है और उसकी सखियां उस पत्र का लिखा हुआ भाग पढ रही हैं ।

उर्वशी-पुरुरवा ।

उर्वशी सारी अप्सराओं से सुन्दरता में श्रेष्ठ है। नारायण नामक ऋषि ने अपने उरु से उसे उत्पन्न किया, इस लिए इसका नाम "उर्वशी" पडा। पुरुरवा नामक राजा के साथ बहुत वर्षो तक रही थी "विक्रमोर्वशी" नाटक में इसकी विस्तृत कथा है।

गगा-शान्तनु ।

राजा शान्तनु से गंगा ने इस शर्त पर विवाह किया कि " मैं इच्छानुसार बर्ताव करूंगी, तुम मेरी इच्छा के विरुद्ध कोई काम न करना। " अपने आठ पुत्रों में से सात उसने गंगा मे डुबो दिये। वचन दे चुकने के कारण राजा शान्तनु कुछ नहीं कर सका। अन्त में आठवें पुत्र भीष्म को लेकर वह गगा नदी पर जाने लगी। तब राजा यह विनती करते हुए उसके पीछे लगा कि, " यह पुत्र तो मुझे दे दे ! " यही दृश्य इस चित्र में दिखलाया है। राजा की विनती से गगा ने वह पुत्र उसे दे दिया और स्वयं नदी में अन्तर्धान होगई। इसीसे भीष्माचार्य को " गांगेय " भी कहते हैं।

गंगा-भीष्म ।

गंगा ने अपने सात पुत्र गंगा नदी मे डाल दिये। वचन-बद्ध हो जाने के कारण राजा शान्तनु लाचार बैठा रहा। कुछ दिन बाद आठवाँ पुत्र भीष्म उत्पन्न हुआ। गंगा उसे भी डालने के लिए ले चली। शान्तनु भी उसके पीछे पीछे गया और पुत्र को गंगा मे डालते समय उसने गंगा से विनती की कि, "यह पुत्र तो मुझे दे दे।" अतएव गंगा राजा पर वचनभंग का लगा कर छोड जाने लगी।" जाते समय यह कहने लगी कि "यह होने पर मैं तुझे ला दूगी।" जाते समय वह पीछे घूम कर राजा को जाती थी, उसी समय का दृश्य इस चित्र में दिखलाया गया है।

शान्तनु–मत्स्यगंधा ।

शान्तनु हस्तिनापुर का राजा और कौरव-पांडवों का परदादा था। वह एक बार जब कि नौका में बैठ कर नदी-पार जाता था तब नौका चलानेवाली " मत्स्यगंधा " नामक मल्लाह की सुन्दर लड़की को देख कर मोहित होगया। मत्स्यगंधा भी इस शर्त पर राजा के साथ विवाह करने के लिए राजी हुई कि " मुझसे जो पुत्र उत्पन्न हो वही राज्याधिकारी बनाया जाय। " इसके बाद भीष्म की अनुमति से उन दोनों का विवाह होगया। इस चित्र में जो दृश्य दिखाया है उसमें बल्ली लिये हुए मत्स्यगंधा राजा के पास खड़ी है और राजा शान्तनु उससे ढिठाई कर रहा है।

भीष्मप्रतिज्ञा ।

मत्स्यगंधा नामक एक मछुवाहे की लडको पर मोहित होकर राजा शान्तनु ने उससे विवाह करना चाहा । पर मछुवाहे ने यह कह कर राजा की बात स्वीकार की कि, "आपका बड़ा लड़का भीष्म राज्यका अधिकारी होने के कारण उसके पुत्र को राज्य न मिलेगा ।" राजा दुःखित हो कर लौट आया । बाद को भीष्म एक वृद्ध मंत्री को साथ लेकर मछुवाहे के पास गये और यह प्रतिज्ञा की कि "मैं तो गद्दी पर बैठूंगा ही नहीं, किन्तु मेरी संतति के विषय में यदि कुछ शंका हो तो मैं आजन्म ब्रह्मचारी रहूंगा।" इस चित्र में जो गभीर दृश्य दिखलाया है उसमें एक ओर मछुवाहा और कुटुम्ब के लोग खडे हैं और आगे भीष्म हाथ उठाये प्रतिज्ञा कर पास ही वृद्ध मंत्री खड़ा है ।

कंस-माया।

एक पुत्र के द्वारा अपनी मृत्यु होने के भय से कंस ने देवकी के सात पुत्र मार डाले। आठवें पुत्र श्रीकृष्ण के जन्मते ही वसुदेव उसे रात ही रात मथुरा से गोकुल को ले गये और उसे नन्द के घर में रख कर, नन्द की हाल ही में जन्मी हुई कन्या लेकर लौट आये। कन्या का रुदनस्वर सुनते ही दूतों ने कंस को खबर दी। कंस दौड़ता हुआ वहां आया और उस कन्या को शिला पर पटकने के लिए, उसके पैर पकड़ कर ज्योंही उसे ऊपर उठाया त्योंही वह आदि-माया प्रणवरूपिणी कन्या कंस के हाथ से निकल कर आकाश को चली गयी और कंस से कहने लगी, "तेरा शत्रु इस पृथ्वीतल पर सुखपूर्वक है।"

कृष्ण का राई-नोन।

इस चित्र में जो दृश्य दिखलाया गया है उसमें माता यशोदा श्रीकृष्ण को गोद में लिये हुए बैठी है, पास ही दो ग्वालिनें बैठी हैं और एक वृद्ध ग्वालिन श्री कृष्ण पर राईनोन उतार रही है।

यशोदा, कृष्ण और राधा ।

नन्द की स्त्री यशोदा अपने पुत्र भगवान् कृष्ण को अंक में लेकर विनोद-पूर्वक उसके गुणानुवाद वर्णन करती है। यशोदा के मुख पर वत्सलरस की छटा इस चित्र में स्पष्ट दिख रही है। श्रीकृष्ण के मुख पर सस्मित गंभीरता और पास ही बैठी हुई तरुण राधा का सकौतुकावलोकन स्पष्टरूप से दिखलाने में चित्रकार राजा रविवर्मा ने कमाल कर दिया है!

गोदोहन ।

इस चित्र में यह वत्सलरसप्रधान दृश्य दिखलाया है कि माता यशोदा गौ का दूध दुह रही है और भगवान् श्रीकृष्ण उसकी पीठ में लिपट कर उससे दूध मांग रहे हैं ।

मृत्तिका-भक्षण ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने बालपन में एक बार मिट्टी खाई। इस पर यशोदा ने उनके हाथ बाँध कर उनके चपत लगाई। श्रीकृष्ण ने कहा, "मैंने मिट्टी नहीं खाई है!" यशोदा बोली, "अच्छा, अपना मुँह तो दिखला।" श्रीकृष्ण ने ज्योंही अपना मुँह खोला त्योंही उसमें यशोदा को अनन्त ब्रह्मांड देख पड़ने लगे! यह विलक्षण हाल देख कर यशोदा आश्चर्य से बिलकुल चकित हो गई।

कुंजवन मे राधा ।

भगवान् श्रीकृष्ण बालपन में गोकुल की जिन गोपियों के साथ क्रीड़ा करते थे उनमें राधा मुख्य थी। इस चित्र के दृश्य में राधा, कुंजवन में बैठी हुई, उत्सुकता के साथ, श्रीकृष्ण की बाट जोह रही है।

राधा–माधव ।

राधा कुंजवन मे श्रीकृष्ण की मार्गप्रतीक्षा करते हुए बैठी थी, इतने ही में पीछे से आकर श्रीकृष्ण ने उसके मस्तक में धीरे से अपनी ठोढ़ी लगा दी। उस समय रोमांचित होकर राधा ने, श्रीकृष्ण को आलिंगन देने के लिये अपनी भुजाएं उठाई हैं, यही दृश्य इस चित्र में दिखलाया है।

राधा और उसकी सखी ।

गोकुल के वृषभानु नामक ग्वाला की लड़की राधा बहुत सुन्दर थी। अग्निपुराण में लिखा है कि इसने पूर्वजन्म मे इस हेतु से तपस्या की थी कि श्रीकृष्ण के साथ हमारी प्रीति हो, इसी लिए कृष्णावतार में श्रीकृष्ण ने उसके साथ रमण किया। राधा के पति का नाम अनया था। इस चित्र मे राधा अपनी एक सहेली के साथ कुछ बात चीत कर रही है।

वसुदेव-देवकी-बन्ध-मोचन ।

कंस ने जब यह आकाशवाणी सुनी कि "वसुदेवदेवकी के आठवें पुत्र से मेरी मृत्यु होगी" तब भयभीत होकर उसने उन्हें कैद कर रखा। फिर नारद के कहने से उसने देवकी के पेट से जन्मे हुए सात बालक मार डाले। इसके बाद अपने मुख्य शत्रु आठवें पुत्र श्रीकृष्ण को भी वह मार डालता, परन्तु वसुदेव ने युक्तिपूर्वक उसे गोकुल पहुँचा दिया। जब यह कंस को मालूम हुआ तब उसने पूतना, बकासुर इत्यादि दुष्टों को श्रीकृष्ण के मारने के लिए भेजा, पर उन्होंने इन सब दुष्टों को नाश कर डाला। इसके बाद एक दिन, जब कि कंस चिन्ताक्रान्त बैठा था, उसे एक युक्ति सूझ पड़ी। वह यह कि अक्रूर के हाथ उसने श्रीकृष्ण बलराम को मथुरा में बुलवाया और अनेक दैत्य, मतवाला हाथी आदि उनके ऊपर लगवाये। श्रीकृष्ण ने कंस सहित सब दुष्टों को मार डाला और वसुदेव देवकी को बन्ध-मुक्त किया। उपर्युक्त चित्र में देवकी आनन्दित होकर कृष्ण का चुम्बन लेती है, वसुदेव ने बलराम को छाती से लगा लिया है, लोहार लोग बन्ध खोल रहे हैं, और एक ओर श्रीकृष्ण के नाना राजा उग्रसेन एक सरदार के साथ खड़े हैं।

अर्जुन-सुभद्रा ।

सुभद्रा को हरण करने के लिए अर्जुन यतिवेष से उसके नैहर में जाकर रहे थे। अवसर पाकर वे सुभद्रा को रैवतक पर्वत की गुहा में ले आये और वहां उन्होंने उसे अपनी पहचान कराई। इस घटना के बाद का कुछ शृंगाररस इस चित्र मे दिखलाया है।

द्रौपदी–वस्त्र–हरण ।

यह महाभारत के सभापर्व की कथा प्रायः बहुत लोग जानते हैं। राजा युधिष्ठिर ने दुर्योधन के साथ द्यूत खेलकर स्त्रीसहित अपना सारा वैभव गवाँ दिया। इसके बाद दुष्ट दुर्योधन ने भरी सभा में अपने छोटे भाई दुःशासन से द्रौपदी की जो विटम्बना करवाई उसी अवसर का दृश्य प्रस्तुत चित्र में दिखलाया है। दुःशासन द्रौपदी का वस्त्रहरण करता है; द्रौपदी असहाय होकर आवेशयुक्त, परन्तु करुणाजनक, चेष्टा से भीष्म आदि सभाजनों की ओर देख रही है, उसकी यह दशा देख कर दुष्ट कौरव वहा आनन्द मानते हैं, परन्तु विदुर, विकर्ण आदि के समान पुरुषों ने अपनी गर्दन नीची कर ली है, इत्यादि मनोहर दृश्य इस चित्र में स्पष्ट दिखलाये हैं।

सुदेष्णा—द्रौपदी ।

पांडव जब राजा विराट के घर में अज्ञातवास कर रहे थे तब विराट के साले कीचक की द्रौपदी पर दृष्टि पड़ी । उसने द्रौपदी को वश करने के लिए बहुत से प्रयत्न किये, पर सब व्यर्थ हुए । अन्त में उसने अपनी बहन सुदेष्णा से विनती की कि तुम मांस-पात्र देकर द्रौपदी को मेरे महल में भेजो । इस चित्र में उस समय का दृश्य दिखलाया है जब कि सुदेष्णा, द्रौपदी से, कीचक के पास मांस-पात्र ले जाने के लिए कह रही है और
री, दीनता के साथ, हाथ जोड़ कर सुदेष्णा से विनती कर रही
" कृपा कर ऐसा बुरा काम मुझे न बतलाइये । "

सैरध्री (न० १)

सैरध्री जब मद्यपात्र लेकर कीचक-मन्दिर के पास आई और उसने जब कीचक को देखा तब तिरस्कार और भय के कारण उसकी जो चेष्टा हो गई, उसीका दृश्य इस चित्र में दिखलाया गया है।

सैरन्ध्री (नं० २)

मद्यपात्र लेकर कीचक के यहां जाते समय सैरन्ध्री के मन की जो दशा हुई थी वही इस चित्र में दिखलाई है।

सैरध्री (न० ३)

पांचो पांडव और द्रौपदी जब विराट के यहां आज्ञातवास में थे तब द्रौपदी ने वहां "सैरंध्री" का नाम धारण किया था। विराट का साला कीचक उसे देख कर मोहित हो गया और अपनी बहन सुदेष्णा से उसने आग्रह-पूर्वक कहा कि, "सैरध्री के हाथ मुझे मद्यमांस भेज देना।" सुदेष्णा ने सैरंध्री को मद्यपात्र देकर कीचक के पास जाने की आज्ञा दी, उस समय उस पतिव्रता के मन की जो दशा हुई वही इस चित्र में दर्शाई गई है।

कीचक-सैरंध्री ।

सैरंध्री को एकान्त में घेर कर दुष्ट कीचक उससे प्रेम-भिक्षा माँग रहा है और वह विचारी डर गई है, यही दृश्य इस चित्र में दिखाया है ।

कृष्ण शिष्टाई ।

महाभारत के उद्योग पर्व में यह कथा आरम्भ ही में दी है। पांडव जब वनवास से लौट आये तब धृतराष्ट्र से, अपना राज्य मॉंगने के लिए, उन्होंने श्रीकृष्ण को कौरवों के दरबार में भेजा। विदुर और भीष्म के समान गम्भीर सज्जनों ने श्रीकृष्ण का बडा सन्मान किया। उन्होंने धृतराष्ट्र को यह सम्मति भी दी कि श्रीकृष्ण की मध्यस्थी को मान करके पाडवों का राज्य उन्हें लौटा दिया जाय। धृतराष्ट्र का भी यही विचार था कि पाडवों का राज्य दे दिया जाय और उसने अपना यह विचार प्रकट भी कर दिया। पर दुष्ट दुर्योधन बीच ही मे कूद पडा और श्रीकृष्ण का अपमान करके पाडवों का राज्य देने से इन्कार किया। श्रीकृष्ण ने प्रार्थना की कि पाच पाडवों को कम से कम पाच गॉंव तो दिये जायें। इस पर दुर्योधन ने उत्तर दिया, "पाच गॉंव तो क्या, सुई के अग्रभाग पर जितनी मिट्टी ठहर सकती है उतनी मिट्टी भी मैं पाडवों को नहीं दे सकता!" दुर्योधन के इसी उद्दण्डपन के कारण महाभारत का युद्ध हुआ और उसमें सौ कौरव तथा उनके साथ लाखों वीरों का जो विध्वस हुआ उसकी कथा प्रसिद्ध ही है।

बाणासुर की लड़की है। इसने पार्वती के वरदान के अनुसार एक रात को क्या स्वप्न देखा कि मानों एक सुन्दर तरुण राजपुत्र हमारा चुम्बन ले रहा है। दूसरे दिन से वह उसी राजपुत्र के पीछे पागल सी हो गई और उस के लिए उसने उदासीन वृत्ति धारण कर ली। अन्त में उसकी चित्रलेखा नामक सखी ने पृथ्वी भर के सब राजपुत्रों के चित्र खींच कर उसे दिखलाए, ताकि उसे अपने प्रेमी की पहचान मिले। उन चित्रों में श्रीकृष्ण के नाती 'अनिरुद्ध' को देख कर उषा ने बतलाया कि हमने स्वप्न में जिस राजपुत्र को देखा है वह यही है। इस चित्र में उषा स्वप्नावस्था में पड़ी है और अनिरुद्ध उसका चुम्बन लेने के लिए उत्सुक हो रहा है।

उपास्वप्न ।

उषा और चित्रलेखा।

बाणासुर नामक एक दैत्य शोणितपुर नामक नगर में राज्य करता था। उसकी कन्या उषा एक दिन कैलास को गई। वहां उसने महादेव और पार्वती को पासा खेलते हुए देखा। इस लिए उसे इच्छा हुई कि मेरा भी विवाह हो और मैं भी अपने पति के साथ इसी प्रकार बैठ कर पासा खेलूं। कुछ दिन बाद पार्वती के वर के अनुसार राजकुमार अनिरुद्ध उसे स्वप्न में देख पड़ा। उषा ने उसीको अपना पति समझ कर उसका पता लगाने का प्रयत्न किया। उसकी दासी चित्रलेखा चित्रकला में बड़ी कुशल थी। उसने पृथ्वीतल के अनेक राजपुत्रों के चित्र बनाये। अन्त में अनिरुद्ध को देख कर उषा समझ गई कि यही राजकुमार है, जिसने स्वप्न में मेरा चुम्बन लिया था। उसके बाद चित्रलेखा योगमार्ग से द्वारका को गई और अनिरुद्ध को लाकर उषा से मिला दिया। दोनों का गांधर्वविवाह होगया। कालांतर से यह बात बाणासुर को मालूम हुई। उसने अनिरुद्ध पर अनेक दैत्य भेजे, द्वारका से श्रीकृष्ण और सारे यादव अनिरुद्ध की सहायता को आये। कैलास से शंकर और स्वामिकार्तिक बाणासुर की मदद में आये। बड़ा भारी युद्ध हुआ, पर अन्त में सुलह हो गई और उषा के साथ अनिरुद्ध का विवाह हुआ।

शुक-रंभा ।

वेदव्यास के पुत्र श्रीशुकाचार्य बडे भगवद्भक्त और आजन्म ब्रह्मचारी थे। उनका तपोबल देख कर इन्द्र डरा कि कहीं ये हमारा इन्द्रासन न ले लें। अतएव उसने शुक को तपोभ्रष्ट करने के लिए रम्भा नाम की अप्सरा भेजी। उसने अपने नेत्र-कटाक्षों से और अन्य हावभावों से शुकाचार्य की चित्त-वृत्ति चचल करने का वडा प्रयत्न किया, पर अन्त में हताश होकर वह अपने भवन को चली गई। "रम्भा-शुक-सम्वाद" नामक सस्कृत ग्रन्थ बहुत ही मनोहर और शिक्षाप्रद है।

कल्कि ।

यह विष्णु का दसवाँ अवतार है। द्वापर युग में जो कलियुग कैद था वह आजकल स्वेच्छाचार विचर रहा है। पुराणों के कथनानुसार आजकल यहाँ उसीका राज्य है। उसके राज्य में जब इतने पाप बढ जायँगे कि लोग धर्मभ्रष्ट हो जायँगे तब पृथ्वी कपायमान होगी और अन्त में परमात्मा विष्णु कल्कि-अवतार धारण करके म्लेच्छों का नाश करेंगे। यह भविष्य कल्कि-पुराण में कहा गया है।

तारादेवी ।

तारा ।
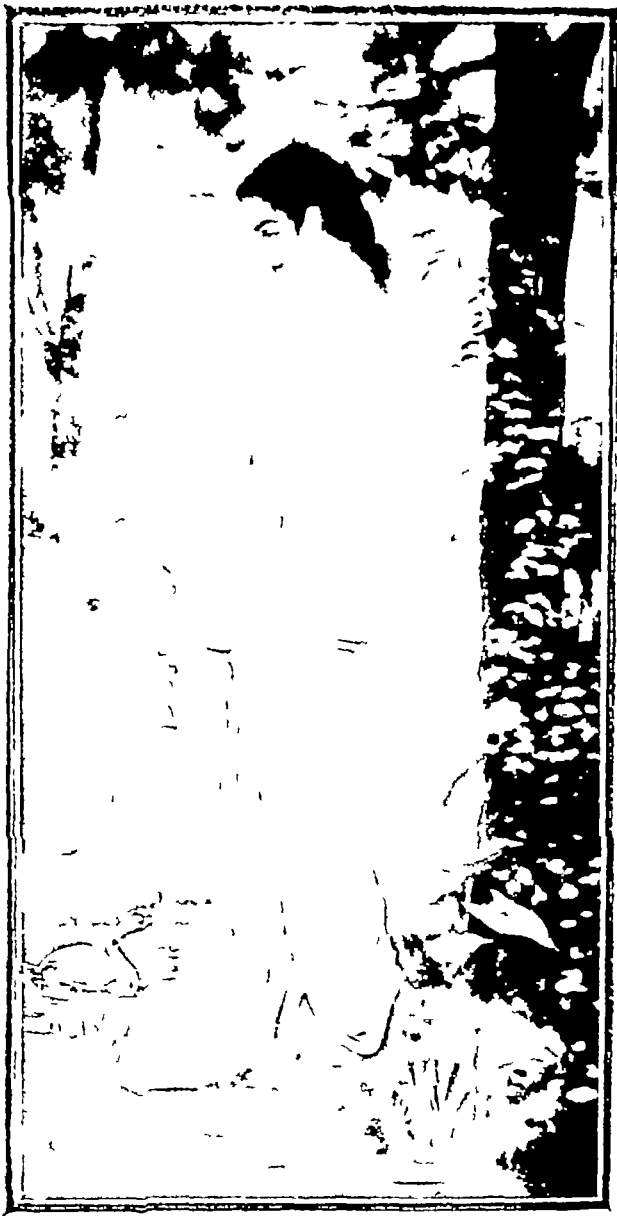
वारिणी ।

पद्मिनी ।

चार जाति की स्त्रियां होती हैं:—पद्मिनी, चित्रिणी, हस्तिनी और शंखिनी । सामुद्रिक-शास्त्र कारों ने जिन स्त्रियों का वर्णन किया है उनमें से यह पद्मिनी जाति की स्त्री का चित्र है । इसके विषय में कहा है कि इसके शरीर से कमल के समान सुवास आती है, इसका आहार बहुत थोड़ा होता है और चाल इसकी हंसिनी के सदृश होती है । उदयपुर के महाराना भीमसिंह की स्त्री पद्मिनी बहुत सुन्दर थी, क्या यह उसीका चित्र तो नहीं है ?

वासतिका ।

यह एक कल्पित स्त्री का चित्र है। इस चित्र में जो दृश्य दिखलाया है उसमें वसन्त ऋतु की देवी, एक सुन्दर तरुणी, वसन्त ऋतु में, गले में और हाथों में पुष्पमाला धारण किये हुए, एक वृक्ष के सहारे खड़ी है।

मानिनी ।

यह एक सुन्दर मानिनी स्त्री का चित्र है। अपने रूप और गुणों का अभिमान रखनेवाली तथा पति से मान पाने की अपेक्षा रखनेवाली रमणी को मानिनी कहते हैं।

वसन्तसेना ।

यह शूद्रक–कवि–कृत मृच्छकटिक नाटक की नायिका है । यह बहुत सुन्दर और सद्गुणी स्त्री वेश्या जाति की थी । उज्जयिनी नगरी के चारुदत्त नामक उदार सद्गुणी साहूकार पर यह मोहित हो गई थी । उज्जयिनी के राजा पालक के दुष्ट साले शकार ने जब देखा कि यह वेश्या हमारे वश नहीं होती तब उसने इसे जान से मार डालने का प्रयत्न किया और इसका आरोप विचारे चारुदत्त पर लाद दिया । न्यायाधीश ने चारुदत्त को सूली पर चढाने की आज्ञा दे दी । राजदूत चारुदत्त को वधस्थान की ओर लिए जा रहे थे, इतने ही में वसन्तसेना वहा आ गई और चारुदत्त भी छूट गया । इसके बाद आर्यक नामक ग्वाला ने राजा पालक को मार डाला ... पर अपना अधिकार कर लिया । यह चारुदत्त का मित्र था, उसने चारुदत्त को भी ...कार दिया । वसन्तसेना और चारुदत्त दोनो आनन्द से रहने लगे ।

प्रियदर्शिका ।

बृहत्कथासागर और प्रियदर्शिका नाम के दो ग्रन्थों में इसकी कथा है। प्रियदर्शिका दृढ़वर्मा नामक राजा की कन्या है। कौशाम्बी के पराक्रमी राजा वत्सपति के महल में यह कन्या कुछ दिन के लिए गई। वहां वत्सपति और प्रियदर्शिका दोनों एक दूसरे पर अनुरक्त हो गये; परन्तु राजा की पत्नी वासवदत्ता बड़े तामसी स्वभाव की थी। उसने ज्योंही यह बात जान पाई त्योंही उसने उन दोनों को अलग अलग कर दिया कालान्तर मे प्रियदर्शिका सर्प के काटने से व्यथित हुई, राजा ने अपने मंत्र-बल से उसे बचाया। इस लिए वासवदत्ता ने प्रसन्न हो कर, अपनी यह मौसेरी बहन, प्रियदर्शिका राजा को अर्पण की। प्रस्तुत चित्र में प्रियदर्शिका कुछ सोचती हुई बैठी है।

मालती ।

मालती महाकवि भवभूतिकृत मालतीमाधव नाटक की नायका है। यह माधव नामक एक सुन्दर तरुण पर मोहित हो गयी थी। अघोरघंट और कपालकुंडल नामक दुष्ट शाक्त, देवी को वलि देने के लिए इसे भगा ले गये। माधव ने उस संकट से इसकी रक्षा की। अन्त में, अनेक विघ्नों से पार हो कर, मालती और माधव का विवाह हो गया। मालती बहुत कुलीन और सुशील थी। प्रस्तुत चित्र में उसके गुणों की छाप स्पष्टतया हुई देख पड़ती है।

मनोरमा।

यह मनोरमा (मन को रमानेवाली) नामक सुन्दर स्त्री का चित्र है।

इस चित्र में एक ऐतिहासिक प्रसंग दर्शाया है। विजयनगर के राजा ने मालवा के राजा मुंज को अपने महल में कैद कर रखा। वहां विजयनगर के राजा की बहन राजा मुंज पर आसक्त होगई और वे दोनों साथ-ही भग चलने का विचार करने लगे। यह बात कुसुमावती के एक नोकर ने उसके भाई से बतला दी। तब वह बड़े क्रोध से कुसुमावती के महल में घुसा। वहां जाकर देखता है तो दोनों, प्रेमी और प्रेमिका, उपस्थित थे। क्रोध से बेहोश होकर और तलवार खींच कर वह मुंज की ओर दौडा। वीर्यशालिनी कुसुमावती अपने प्यारे की रक्षा करने के लिए अपने भाई का हाथ पकड कर बोली, "खबरदार! मुंज का यदि बाल भी बाँका हुआ तो मैं अपने हाथ का खंजर तेरे हृदय में भोंक दूंगी।" यही विलक्षण दृश्य, बड़े कौशल से राजा रविवर्मा ने यहां दिखलाया है।

कुसुमावती।

—❀o❀—

लालारुख ।

औरगजेब की बादशाहत के ग्यारहवें वर्ष में बुखारा के बादशाह ने अपना राज्य अपने लड़के के सिपुर्द किया और आप मक्के की यात्रा को चला गया। वहां से घूमते घूमते वह हिन्दुस्थान को आया । कुछ दिन काश्मीर में रह कर फिर वह दिल्ली आया और वहां भी कुछ समय रहा। औरगजेब ने इस बड़े पाहुने को आदर-सत्कार-पूर्वक रखा । औरंगजेब और बुखारे के बादशाह में बहुत प्रेम हो गया और दोनों ने विचार किया कि औरंगजेब की अत्यन्त रूपवती कन्या लालारुख के साथ बुखारे के राजकुमार फज़लुद्दीन का विवाह किया जाय। अन्त में दोनों ने निश्चित किया कि फ़ज़लुद्दीन काश्मीर आवे और औरगजेब भी अपनी

कन्या वहां भेज दे। इस प्रस्ताव के अनुसार फजलुद्दीन काश्मीर में आया और इधर से औरंगजेब ने भी अपनी कन्या को भेज दिया। फ़जलुद्दीन बड़ा विद्वान्, रसिक और मनुष्यस्वभाव का अच्छा परीक्षक था। जब कि लालारुख काश्मीर की ओर जा रही थी तब फजलुद्दीन गवैये के वेष से, 'फ़िर-अमरोज' नाम धारण करके, उसका मनोरंजन करने के लिए, उनके पास नौकर हो गया। लालारुख अपने भावी पति का दर्शन करने के लिए उत्सुक हो रही थी अतएव उसका समय मार्ग में नहीं कटता था। काश्मीर की वनश्री से भी उसका चित्त आल्हादित नहीं हुआ। ऐसे समय मे गायक-वेष-धारी फजलुद्दीन ने, नाना प्रकार के गीत गा कर और कहानियां कह कर, राजकन्या का अच्छा मनोरंजन किया। उसकी विद्वत्ता, सुन्दरता और चतुरता इत्यादि गुणों का परिचय पाकर राजकन्या बहुत कुछ उस पर मोहित हो गई। वह विचारी तरुण बाला क्या जाने कि हमारा पति फजलुद्दीन यही है। इस प्रकार सफर करते करते लालारुख अपने पति के डेरे के समीप पहुँच गई। इतने ही में गायक-वेषधारी फ़जलुद्दीन उसे छोड कर चला गया। राजकुमार ने अपनी भावी पत्नी के लिए सब प्रकार का उत्तम प्रबन्ध कर रखा था और उसके मन को आनन्दित करने के लिए सारे साज-सामान वहां एकत्र कर रखे थे। तथापि राजकन्या को, जो गवैये के रूप और गुणों पर लुब्ध हो रही थी, बाह्योपचारों से कुछ विशेष आनन्द नहीं हुआ। हां, इतना अवश्य हुआ कि वह समझ गयी कि हमारा पति हमारी बहुत चिन्ता रखता है। उसका मन फिर-अमरोज पर इतना मोहित हो गया था कि फ़ज़लुद्दीन के विषय मे प्रेम उत्पन्न होने के लिए उसमें स्थान ही न था। अतएव उसके ठहरने आदि के लिए जो अच्छा प्रबन्ध शाहजादे ने किया था उसके लिए राजकन्या के मन मे, फ़जलुद्दीन के विषय में, सिर्फ कृतज्ञता मात्र उत्पन्न हुई। अस्तु। फ़ज़लुद्दीन ने अपनी पत्नी के पाणिग्रहण के उपलक्ष में बड़ा दरबार किया। पति के पास सिंहासन पर जा बैठने के लिए, पूर्व-प्रेमी के विरह से दुःखी, शाहजादी दरबार में आई; उसके पाणिग्रहण के लिए फ़ज़लुद्दीन ने अपना हाथ बढाया। इतने में लाला-रुख ने ज्योंही देखा कि हमारे सामने सिंहासन पर खडा हुआ पुरुष वही पूर्व-परिचित गवैया है त्योंही वह आश्चर्य से चकित होकर जोर से चिल्लाई और बेहोश होकर गिर पडी। फ़ज़लुद्दीन ने उठा कर उसे सन्तुष्ट किया और फिर वह युगलजोडी, जो पहले ही से परस्परानुरक्त थी, बड़े सुख से रहने लगी। इस रमणीय कथा पर आंग्लकवि मूर की एक बड़ी कविता है, उसे रसिक पाठक अवश्य पढ़ें।

बेगम की स्नानविधि ।

मुसलमान राजा की रानी को बेगम कहते हैं । प्रस्तुत चित्र में जो दृश्य दिखलाया है उसमें एक बेगम स्नान करने लिए हम्माम (स्नानागार) में आई है और उसकी दासियां कपड़े इत्यादि निकाल रही हैं ।

भारत की सब जातियों की स्त्रियां।

इस चित्र में मलया, राजपूत, बंगाली, पारसी, मुसलमान, गुजराती, मारवाड़ी, महाराष्ट्र, सिन्धी, इत्यादि, नव हिन्दुस्तानी स्त्रियां दिखलाई गई हैं।

महाराष्ट्र-सुन्दरी ।

यह महाराष्ट्र की एक साधारण सुन्दर स्त्री का चित्र है ।

वैष्णवकन्या ।

द्वैतमत-प्रतिपादक श्रीमध्वाचार्य के अनुयायियों को वैष्णव समझना चाहिए। यह कर्नाटक की एक वैष्णव-कन्या का चित्र है ।

मदरासी सुन्दर स्त्री।

यह मदरास की ओर की–द्राविड देश की–एक सुन्दर और अलङ्कृत स्त्री का चित्र है।

मदरासी लड़की ।

यह एक मदरासी लड़की का चित्र है ।

मलयाली स्त्री।

दक्षिण की ओर के मलाबार प्रान्त को मलय-प्रदेश कहते हैं। यहां के लोग मलयाली भाषा बोलते हैं। प्रस्तुत चित्र में एक सुन्दर मलयाली स्त्री अपने छोटे बच्चे को कनियाँ में लिए हुए खड़ी है और उसे कोई वस्तु दिखला कर उसका मनोरंजन कर रही है।

मलया स्त्री ।

इस दृश्य में मलाबार प्रान्त की एक सुन्दर स्त्री सितार बजा रही है ।

मलय–सुन्दरी ।

यह एक मलाबारी सुन्दर स्त्री का निद्रितावस्था का चित्र है ।

मलयाल–सुन्दरी ।

त्रावनकोर के एक ओर के प्रदेश को मलयाल देश कहते हैं, वहां की एक सुन्दर स्त्री का यह चित्र है ।

गोवा वासिनी।

गोवा-प्रान्त की वेश्याएं गान और सुन्दरता आदि गुणों में प्रसिद्ध हैं, उनमें से एक सुन्दर और तरुण वेश्या का यह चित्र है।

उद्‌बोधन

अर्थात्

धर्म्मविषयिणी उपेक्षा अथच आवश्यकता की
ओर सनातन धर्म्मावलम्बियों का
दृष्टि-आकर्षण

पण्डित अयोध्या सिंह उपाध्याय
संकेत नाम हरिऔध निज़ामाबाद-
निवासी प्रणीत.

म० कु० बाबू रामरणविजय सिंह द्वारा प्रकाशित.

पटना "खड्गविलास" प्रेस—बांकीपुर.

बाबू चण्डीप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित.

१९०६

प्रथम बार १०००

शुद्धाशुद्धापत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	२३	कल्पित	कथित
१४	१०	दिग्मण्डल	दिङ्मण्डल
१४	११	के	की
२१	१८	और न	और
२५	५	अवृत्त	प्रवृत्त
२६	५,२३	संख्या	संस्था
२८	२५	डेग	डग
२९	१६	संख्या	संस्था
२९	२०	वह कलंक	यह कलंक
३०	१६	यह	वह
३२	७	कसता	सकता
३३	१९	शीतांतक	शीतातंक
३३	२६	नहा	नहीं
३६	१	आगाध	अगाध
४०	२३	दिन्दू	हिन्दू

निवेदन ।

सज्जनगण !

पुस्तक के स्वरूप में जो लेख आज आप लोगों के सन्मुख उपस्थित है, पहले वह एक क्षुद्र आकार में पुण्यस्थल प्रयागक्षेत्र की श्री सनातनधर्म्ममहासभा में पठित होने के लिये लिखा गया था। दैवदुर्विपाकवश कतिपय मुख्य कारणों से मै उक्त महती सभा में उपस्थित न हो सका, अतएव वह लेख भी वहां पठित किये जाने के सौभाग्य-लाभ से वंचित रहा। पहले उस क्षुद्र लेखही को ट्रेक्ट के आकार मे प्रकाशित कर देने का विचार था, परन्तु हृदय के कुछ अनिवार्य्य उच्छ्वासों ने मेरे इस विचार को बदल दिया और उन्हीं के एकान्त प्राबल्यलाभ का यह फल है कि आज उस क्षुद्र लेख को आपलोग इस बृहत् आकार में परि-णत हुआ अवलोकन करते हैं ॥

इस पुस्तक में कुछ ऐसे वाक्य और विषय दृष्टिगोचर होंगे जो बार बार कथन किये किम्वा लिखे गये है। किसी लेख अथवा पुस्तक के लिये यह दूषण है, परन्तु बहुत स्थानों पर दूषण भी भूषण का काम देता है, कहीं कहीं बिष भी अमृत के समान उपकारक होता है। घोर निद्रित को जगाने के लिये एक बार 'जागो' कहने से काम नहीं चलता, उस को कई बार 'जागो जागो' कह कर जगाने की आवश्यकता होती है। उपेक्षा और असावधानी जिस की प्रकृति हो गई है, उस को एक एक विषय जब तक कई बार स्मरण न दिलाया जावे, जब तक दो दो तीन तीन बार कह कर उस के निमित्त उस को सतर्क न बनाया जावे, उस समय तक

सफलकाम होने की आशा बहुत ही स्वल्प होती है। अतएव इन्हीं विचारों से मैं भी ऐसा करने के लिये बाध्य हुआ हूं। सुधी पाठक मेरे इस दोष को क्षमा करेंगे। इस के अतिरिक्त इतना और निवेदन करना समुचित जान पड़ता है कि हम पर दोषारोपण भलेही हो, परन्तु जिन वाक्य और विषयों के कारण दोषारोपण होने की सम्भावना है। यदि हिन्दूसमाज का एक प्राणी भी उन से उत्तेजित होकर अपने कर्तव्यकार्य्य की ओर यत्किंचित् भी अग्रसर होगा तो दोषारोपण होने पर भी मैं अपने को भाग्यवान और सफलमनोरथ समझूंगा, विशेष लिखना बाहुल्यमात्र है।

विनयावनत

हरिऔध।

ॐ

उद्बोधन

श्रीमंगलमूर्त्तये नमः

'सनातनधर्म्म' बड़ा प्यारा नाम है—जो हिन्दू हैं, जिन की नसों में हिन्दू माता पिता का रक्त दौड़ रहा है, जो हिन्दू रजवीर्य्य से उत्पन्न हैं, इस पवित्र नाम को सुनकर उन के हृदय में एक अननुभवनीय आनन्द का स्रोत प्रवहमान होता है, और प्रेमातिरेक से वह मंत्रमुग्धवत् हो जाते हैं। किन्तु इस आनन्दविह्वलता और इस प्रेमजनित व्यामोह में क्या उन को 'सनातनधर्म' विषयक अपने कर्तव्य का भी ज्ञान है? क्या वह इस की संकटापन्न अवस्था पर कभी सच्चे हृदय से सकरुण अश्रुपात भी करते हैं? उन के प्यारे हिन्दू धर्म्म पर, उन की प्राणादपि गरीयसी सनातनधर्म्म मर्य्यादा पर, आज वज्र प्रहार हो रहा है, आज कुठार चल रहा है, आज हमारे ही रज वीर्य्य से उत्पन्न हिन्दूकुल कुलांगार उस को ध्वंस कर देना चाहते हैं, उस को जड़ मूल से उखाड़कर फेंक देना चाहते हैं। पर क्या हम इन अनर्थों को इन हृत्कम्प उपस्थित करनेवाले उत्पातों को, इन रोम रोम में अग्निप्रज्वलित कर देनेवाले दुष्कर्मों को, कभी यथारीति अपने हृत्पटल पर अंकित करते हैं? हमारी एक च पृथ्वी पर भी यदि कोई हाथ डालता है, यदि अन्याय कोई उस को अपहरण करना चाहता है—तो हम बल

पौरुष रहते-शक्ति रहते, शरीर की एक शिरा में भी रक्त का प्रवाह रहते-उस को नहीं सह्य कर सकते, उस के लिये आकाश पाताल तक को हिला डालना चाहते है। पर आज हमारा धर्म्म का साम्राज्य लुट रहा है। आज हमारी जगत मुखोज्ज्वलकारिणी पैतृकसम्पत्ति निष्ठुरअत्याचारियों द्वारा बलात् विनष्ट की जा रही है, किन्तु हम निश्चेष्ट हैं, निष्क्रिय हैं, प्रगाढ़निद्राभिभूत है, क्या इस से भी बढ़कर शोक, लज्या, और दुःख की कोई दूसरी बात हो सकती है! क्या इस से भी अधिक कोई मर्म्मान्तिक कष्ट बतलाया जा सकता है! संसारमें हमारी धर्म्ममता प्रसिद्ध है, विश्वमें हमारा धर्म्माग्रह आदर्श है, प्राणीमात्र हमारी धर्म्माभिमानता पर उद्ग्रीव है परन्तु क्या यही हमारी धर्म्ममता है? यही हमारा धर्म्माग्रह है, और यही हमारा धर्म्माभिमान है? यदि ऐसीही हमारी धर्म्ममना है, यदि ऐसाही हमारा धर्म्माग्रह है, और यदि ऐसाही हमारा धर्म्माभिमान है, तो हम से बढ़कर प्रवंचक, हम से बढ़कर किंकर्तव्यविमूढ़, और हम से बढ़कर कापुरुष, आज पृथ्वीतल पर कोई दूसरी जाति नहीं है। ऐ हिन्दू जाति! ऐ निश्चल, निष्पन्द, निर्जीव हिन्दू जाति! स्मरणरख! धर्म्महीं तेरा बल है, धर्म्मही तेरी शक्ति है, धर्म्मही तेरे जातीय शरीर में जीवन है, धर्म्मही पर तेरा अस्तित्वनिर्भर है,—यदि इसी धर्म्म के विषय में तू इतना किंकर्तव्यविमूढ़ है, इतनाममताहीन है, इतना अलस वो स्वार्थान्ध है, इतना निष्क्रिय वो निश्चेष्ट है-तो समझले कि दो सहस्र वर्ष पूर्व का वही भयंकर समय पुनः दूर नहीं है कि जिस का रोमांचकर चित्र आज भी हृदय को प्रकम्पित और शोकाभिभूत कर देता है।

हमारी प्राचीन विचार की पण्डितमण्डली में से अधिकांश का सिद्धान्त है कि यह दुर्दान्त कलियुग का समय है, आज कल धराधाम पर उस का चारों ओर अखण्ड प्रताप है, कलियुग के ऐसे दोर्दण्ड प्रताप के समय धर्म्म का संरक्षण, धर्म्म का उत्थापन, विडम्बना मात्र है। हमारे त्रिकालदर्शी पवित्र शास्त्रों में कलियुग में धर्म्म के पतन का जो उल्लेख है, धर्म्मह्रास वो धर्म्मसंकट का जो उज्ज्वल चित्र अंकित है, वह विधाता की अखण्ड लिपि समान अवश्यम्भावी है, अचल अटल है-अतएव उस सिद्धान्त के विरुद्ध—उस भविष्य, वाणी के प्रतिकूल, कथित कार्य्य का अनुष्ठान, किसी कर्तव्य का निर्धारण, किसी प्रकार का आयास वो परिश्रम, व्यर्थ वो नितान्त भ्रममूलक है, इस स्थल पर वक्तव्य यह है कि हमारे पवित्र शास्त्रों में धर्म्म के पतन का, धर्म्महास वो धर्म्म—संकट का निस्सन्देह उल्लेख है, परन्तु साथही धर्म्म के पुनरुत्थान, धर्म्ममार्तण्ड के पूर्ण अंशुओं के साथ पुनः देदीप्यमान होने का भी तो वर्णन है। और यदि धर्म्म-पतन, धर्म्म ह्रास और धर्म्म-संकट के उपरान्त धर्म्म का पुनरुत्थान एवम् धर्म्म का पुनरुदय सुनिश्चित है, तो क्या धर्म्म संरक्षण और धर्म्मोत्थापन के लिये किसी अनुष्ठान का न करना परिश्रम और अध्यवसाय से परांमुख होना एकान्त गर्हित, अत्यन्त अनुचित, और प्रथम कोटि की कापुरुषता नहीं है? क्या अभी धर्म्म का पतन नहीं हुआ, धर्म्म का ह्रास होने में क्या अभी कुछ सन्देह है? क्या अभी धर्म्मसंकट के लिये कोई दूसरा समय अपेक्षित है? आज वह दिन है कि वर्णाश्रम धर्म्म छिन्नभिन्न हो रहा है, देवता व पितर की विडम्बना की जा रही है, श्राद्ध वो तर्पण अकर्तव्य बतलाए

जाते हैं, मन्दिर वो मूर्ति पर वज्र चल रहा है—तीर्थों का संहार हो रहा है, भगवती भागीरथी की निन्दा की जारही है, ब्राह्मण साधु रौंदे जा रहे हैं, यज्ञोपवीत का सम्भ्रम नहीं रहा, शास्त्र पुराण की मर्य्यादा नहीं रही, सतीत्व का नाम लोप हुआ, अनेक पति की व्यवस्था हुई, क्या इस से अधिक अभी कुछ और धर्म्म की विडम्बना होगी। यह वह दुष्कर्म्म है जिन को सुनकर महापापी को भी हृत्कम्प उपस्थित होता है, महा नारकी को भी रोमांच होते हैं- अनेक जन्म का पामर भी त्राहि भगवन् कह कर कान पर हाथ रखता है- किन्तु आज इन कर्म्मों के करनेवाले, आज इन विषयों पर कटिबद्ध रहने वाले, आज इन्हीं कार्य्यों को धर्म्मसंगत वो श्रेय समझनेवाले, सर्वजनआदृत हैं, लोक पूज्य हैं-और जहां देखो वहीं उन की विजय दुन्दुभी निनादित है। कहते हृदय विदीर्ण होता है—जो पवित्र और पुण्यश्लोक, वेदधर्म्म के सेतु हैं, मर्य्यादा के कल्पतरु हैं, सत्कर्म्म के सर्वोत्कृष्ट सोपान हैं, उन्हीं पवित्र वेदों में उन्हीं आर्य्य जाति के एक मात्र गौरवस्तम्भों में इन नारकीय दुष्कर्म्मों की व्यवस्था दिखलाई जाती है, इन घृणित पातकों का विधान बतलाया जाता है- और उन्हीं को इन कदर्य्य कार्य्यों का आश्रयस्थल और प्रतिपादक कहा जाता है। अब इस से अधिक धर्म्म का पतन क्या होगा? अब इस से विशेष धर्म्म-ह्रास की कौन सूचना होगी? और अब इस से बढ़ कर धर्म्म विप्लव का कौन सा समय आवेगा? किन्तु समादरणीय हिन्दूसज्जनो! जो कुछ होना था हो चुका, धर्म्म पर जो बीतना था बीत चुका, हम पुकार कर डंके की चोट कहते हैं, कि अब धर्म्म के पुनरुत्थान का, अब धर्म्म के पुन-

हृदयका, अब धर्म्म की पुनर्जागृति का समय है- तुम सचेष्ट हो जाओ, मानापमान को भूल जाओ, ईर्षा, द्वेष को छोड़ दो, स्वार्थ-परता को तिलांजुली दो, अपने कर्तव्यको समझो देखो धर्म्म की मर्य्यादा स्थापित होती है कि नहीं—और सनातन धर्म्म की जय से दिग दिगन्त पूर्ण हो जाता है कि नहीं। यदि मेरी इस उक्ति में इदं कुतः हो, यदि मेरे इस कथन में तर्क वितर्क हो, यदि यह कहा जावे, कि अभी धर्म्मपतन, धर्म्मह्रास की पूर्ण मात्रा नहीं हुई, अतएव अभी धर्म्म के पुनरुत्थान वो धर्म्म जागृति का समय भी नहीं आया, तो हम कहेंगे कि मृत्यु सुनिश्चित होने पर भी क्या रुग्न वो व्याधिग्रस्त की औषधि करना अकर्तव्य है? यदि अकर्तव्य नहीं है, तो धर्म्मपतन, धर्म्मह्रास वो धर्म्मविप्लव सुनिश्चित होने पर भी क्या प्राणादपि प्रियतर धर्म्म के लिये ही सचेष्ट वो सयत्न होना अकर्तव्य है? हमारी अलस प्रकृति, हमारी कर्तव्यविमूढ़ता, हमारे निरुत्साह ने आज हम को संसार में मुख दिखलाने योग्य नहीं रखा, आज हम को प्राणीमात्र में कदर्य्य वो नीच बनाया, आज उसी अलस प्रकृति, किंकर्तव्यविमूढ़ता और निरुत्साह का यह फल है कि हम धर्म्म पराङ्मुख हैं, और उस के पतन का भाण करके उस के विषय में अपना कोई कर्तव्य निश्चित नहीं करते। कैसे कष्ट की बात है कि स्त्री पुत्र के विषय में हमारे कर्तव्य हैं, गृह परिवार के विषय में हमारे कर्तव्य है, धनजन के विषय में हमारे कर्तव्य है, यहां तक कि प्रतिपालित पशु और आरोपित वृक्ष तक के विषय में हमारे कर्तव्य हैं, परन्तु यदि हमारे कुछ कर्तव्य नहीं हैं, तो धर्म्म के विषय में नहीं है। हा! परमात्मन्! हमारे कैसे दुर्दिन है, हम में कैसी जड़ता हो गई है, जो धर्म्म

के विषय में, उस धर्म्म के विषय में जिस पर हमारा जीवन मरण निर्भर है, हमारी हिन्दू जाति हमारे हिन्दू जाति के अग्रणी ऐसे कर्तव्यविमुख और ऐसे उत्साहशून्य हैं। स्मरण रखना चाहिये, स्वस्थ माता पिता की अपेक्षा, रोगशून्य गुरुजनों की अपेक्षा, व्याधिग्रस्त माता पिता के विषय में, आपद्ग्रस्त गुरुजनों के विषय में, हमारे कर्तव्य का दायित्व कहीं अधिकतर है। फिर क्या उस धर्म्म के विषय में, जो हमारी माता पिता का भी पिता है, जो हमारे गुरुजनों का भी गुरु है, जो हमारे पूज्यों का भी पूज्य है, उस को पतनोन्मुख देख कर उस को संकटापन्न अवलोकन कर हमारे कर्तव्य-दायित्व की मात्रा अधिक नहीं हो गई है? अवश्य हो गई है!!! और यदि हमारे हृदय में स्पन्दन है, यदि हमारे रक्त में उष्णता है, और यदि हमारे गात्र में उत्साह का लेशमात्र है, तो हम को दृढ़ता के साथ उत्साह और परिश्रम के साथ धर्म्म संरक्षण के लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये, और संसार को भीत चकित कर के दिखला देना चाहिये कि 'यतोधर्म्मस्ततोजयः' सज्जनो! संसार कार्य्यक्षेत्र है। यहां का एक एक पत्ता धूलि का एक एक कणा अपने अपने कार्य्य में संलग्न हैं। उदीयमान सूर्य्य, प्रवहमानमारुत, शब्दायमान आकाश, घूर्णायमान वसुंधरा, क्षण क्षण उदात्त स्वर से क्या शिक्षा दे रहे हैं? यही कि कार्य्य कुरु। संसार निश्चेष्ट वा निष्क्रिय रहने का स्थान नहीं है, यहां प्रत्येक कर्तव्य कार्य्य के लिये प्रतिपल सचेष्ट रहना ही श्रेयः कल्प है। जिस कार्य्य के लिये हमारा कर्तव्यदायित्व जितनाही अधिक है, जितना ही उच्च है, और जितनाही गुरुतर है, उस महत् और विशाल कार्य्य के लिये हम को उतनाही अधिक सचेष्ट

उतनाही अधिक यत्नवान् और उतनाही अधिक अध्यवसाय-शील होने की आवश्यकता है। जगत के उज्ज्वल रत्न भारतीय दार्शनिक ग्रन्थों से लेकर ग्राम्यभाषा की साधारण कहावतों पर्यन्त का पर्य्यावेक्षण यदि आप सूक्ष्म दृष्टि से करेंगे, तो आप को प्रतिपन्न हो जावेगा, कि धर्म्म से बढ़कर हिन्दू जाति के लिये कर्तव्य कार्य्य अन्य नहीं है, और ऐसी अवस्था में यह निर्विवाद है कि धर्म्म के लिये हम को समधिक सचेष्ट, विशेष तर यत्नवान और अधिकतर अध्यवसायशील होना अपेक्षित है—परन्तु अत्यन्त मनोवेदना के साथ हम यह प्रकाशित करते हैं कि हमारा आचरण इस सिद्धान्त के सर्वथा प्रतिकूल है। हम एक अकृत कर्म्मापुरुष समान यह निश्चित किये बैठे हैं, इस सिद्धान्त पर उपनीत हैं, कि धर्म्म का पतन अवश्यम्भावी है, अतएव उस के लिये उद्योग करना निष्फल है, यत्न करना व्यर्थ है, और परिश्रम करना विडम्बना है। हम को पौरुष का अभिमान है, उत्साह का गर्व है, अध्यवसाय का दम्भ है, यत्न का मद है, और शक्ति का उन्माद है—परन्तु धर्म्म का नाम सुनतेही—हमारा पौरुष नष्ट हो जाता है, उत्साह ध्वंस हो जाता है, अध्यवसाय रसातल को चला जाता है, यत्न मिट्टी में मिल जाता है, और शक्ति का पता तक नहीं लगता। ऐसा होने पर भी हम को पुरुष होने का, धर्म्मप्राण बनने का, अध्यवसायशील कहलाने का, रोग है। छिः छिः छिः न जानें हमलोग कैसी मिट्टी से बनेहैं—और हम लोगों के रक्त पर कितना पाला पड़ गया है। परिणामदर्शिता उत्तम गुण है, फलप्रद कार्य्यही उत्कृष्ट है, यह सत्य है कि "प्रयोजन मनुद्दिश्यनमन्दोपि प्रवर्तते" किन्तु इस से भी श्रेष्ठतर, इस

से भी उच्च कोटि का, इस से भी अधिक श्रेयस्कर कोई सिद्धान्त है, देखिये दर्शन विज्ञान के सर्वोच्च शिखरारूढ़ हमारे परमाराध्य भगवान श्री कृष्ण संसार को विमुग्ध करके तार स्वर से क्या आज्ञा करते हैं—कर्म्मण्ये वाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन—परन्तु क्या हमारे पास ऐसे श्रद्धायुक्त कर्ण हैं? क्या हमारे पास ऐसा विश्वासपूर्ण हृदय है? जिस में इस महावाक्य की प्रतिध्वनि ठीक ठीक होती है? यदि वास्तव में हमारे पास ऐसे श्रद्धावान कर्ण हैं, ऐसा विश्वासपूर्ण हृदय है तो हम मुक्त कंठ से कहते हैं कि हमारे रक्त की एक एक बूंद, हमारे शरीर का एक एक रोम, हमारे कोटिशः परमाणुपुष्ट गात्र का एक एक अणु-एक एक तेजः पुंजअग्नि-स्फुलिंग से न्यून नहीं हैं, जो आलस अनुत्साह, भ्रम और प्रमाद तृणसमूह को क्षण मात्र में भस्मीभूत करने की विलक्षण शक्ति रखता है। परन्तु यदि उस महापुरुष के इस वाक्य के लिये—जिस को हम अपना परमाराध्य कहते हैं, जिस को स्वयं ब्रह्म कह कर आज सहस्रों वर्ष से पूजते आते हैं—हमारे कर्ण ऐसे श्रद्धायुक्त नहीं हैं, हमारा हृदय ऐसा विश्वास पूर्ण नहीं है, तो उचित है—वरन महान कर्तव्य है कि हम ऐसे कर्णों को नोच कर फेंक दें, और ऐसे कलुषित हृदय को खंड खंड कर डालें। और जिस पातकी शरीर ने आज तक इन को वहन किया है, उस को अगाध जलधि-गर्भ में विसर्जन कर दें, जिस में हमारे पापों का उचित प्रायश्चित्त हो।

अब से पन्द्रह सौ वर्ष के पूर्व से दो सहस्र वर्ष पूर्व तक का समय पवित्र सनातन धर्म्म के लिये घोर दुर्दिन का था, स समय भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में बौद्ध धर्म्म का अखण्ड

प्रताप था, उस की विजयदुंदुभी के गुरु गंभीर निनाद से दिग्‌दिगन्त विकम्पित था, महाप्राण बौद्ध श्रामणों का धर्म्म-कोलाहल महाराजाधिराज के समुच्च स्वर्गस्पर्द्धिनी अट्टालिका मे एक क्षुद्रश्रमजीवी के पर्णकुटीर पर्यन्त समस्वर से श्रुत होता था, सम्पूर्ण भारत के दण्डमुण्डाधिकारी महामहिपाल बौद्ध भिक्षुकों के सामने नतमस्तक थे, जनसमाज की आन्तरिक सहानुभूति हृदय का सम्पूर्ण उच्छ्वास बौद्धधर्म्म की प्रतिष्ठा सम्पादन में पर्य्यवसित था। वेद के कार्य्यकलाप लुप्तप्राय थे। वर्णाश्रमधर्म्म कण्ठगतप्राण था, न वैदिकधर्म्म पर किसी की आस्था थी, न वैदिकधर्म्म व्याख्याता का कहीं समादर था, ग्रामों में कठिनता से दो चार सनातन धर्म्मावलम्बी शेष थे, पर उन की भयानक दुर्गति का ठिकाना न था, नगरों की दशा इस से भी अधिक भयंकर थी, वहां सैकड़ पीछे एक दो का दर्शन भी दुर्लभ था, सम्पूर्ण भारतवर्ष से संकुचित होकर काशी और प्रयाग जैसे धर्म्म पीठों में वैदिक धर्म्म ने शरण ग्रहण किया था, पर इन स्थानों से भी इस के वहिष्कृत करने की चेष्टा में त्रुटि न थी। ऐसे कराल काल में वैदिकधर्म्म के ऐसे घोर विप्लव के दिनों में हमारे सामने एक अद्भुत दृश्य उपस्थित हुआ। दक्षिण प्रान्त के एक क्षुद्र पल्ली में एक पितृहीन वालक के महत्कण्ठ से एक लोकविस्मयकर शब्द श्रुत हुआ। इस क्षुद्र पल्लीजात निरवलम्ब ब्राह्मणकुमार का, इस दण्ड कमण्डलु मात्र सम्वल एक सहज संन्यासी का, यह लोकविस्मयकर शब्द हिमधवल हिमाचल के एक एक शृंगों पर प्रतिध्वनित हुआ, उत्ताल तरंगमाली जलनिधि के प्रत्येक कूलों पर प्रतिघातित हुआ। इधर जो पुण्य सलिला भगवती भागीरथी

के पवित्र तटों पर वह शब्दायमान हुआ, तो उधर कलकल वाहिनी गंभीरतोया गोदावरी के पुनीत पुलिनों पर निर्घोषित हुआ, भारतवर्ष के एक एक कोनों में उस की ध्वनि हुई, महानगरी से क्षुद्रपल्ली पर्यन्त उस से मुखरित हुए। उस ने मृतप्राय वैदिक धर्म्म के निर्जीव नसों में रक्त संचार किया, नष्टप्राय वर्णाश्रमधर्म्म मर्य्यादा को सजीव बनाया, लोप होते हुए सनातन धर्म्म की रक्षा की, और प्रतिक्षण वर्द्धनशील नास्तिकवाद को दमन किया। उस के प्रताप से वैदिक कार्य्य कलाप की पुनः प्रतिष्ठा हुई, भगवद्गुणानुवाद से दिग्दिगन्त प्रतिध्वनित हुआ, घर घर शास्त्रचर्चा हुई, पितरों को बलि मिला, देवताओं का समादर हुआ, और उस की विजयदुन्दुभी भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में प्रबलरूप से निनादित हुई। इतनाही नहीं, उस के वैद्युतिक प्रवाह ने यहां के रजकणों को बारूदकण बना दिया। वह आकाश में उड़े, प्रभावान नक्षत्रों में परिणत हुए, उन में कोई जर्मन में चमका, कोई अमेरिका में प्रकाशित हुआ, किसी ने इंगलैण्ड में प्रभाविकीर्ण की, और किसी किसी का ज्योतिःपुंज अब तक वसुंधरा के प्रत्येक विभागों में प्रभावितरण कर रहा है। यहीं उस के महत्त्व की इति श्री नहीं होती। यदि स्वनाम धन्य पुरुष महात्मा स्वामी रामतीर्थ के कण्ठ से हम अपना कण्ठ मिला दें, तो हम दृढ़ता के साथ कह सकते हैं कि आज वही विश्वव्यापी होने का, संसार के यावत् प्राणियों के एकमात्र पथ प्रदर्शक बनने का स्वत्व रखता है, और आज उसी के सामने धरातल के सम्पूर्ण धर्म्म नतमस्तक होने के लिये अग्रसर हैं।

महामहिम भगवान शंकराचार्य्य वैदिक धर्म्म के उन घोर दुर्दिनों में यदि सोचते कि यह कलियुग है, इस में धर्म्म का पतन अवश्यम्भावी है। यदि विचारते कि जो अवश्यम्भावी है, उस के लिये किसी कर्तव्य का निर्धारण विडम्बना मात्र है, श्रम वो प्रयास व्यर्थ है, तो न जानें पवित्र वैदिक धर्म्म के लिये आज कौन सा समय उपस्थित होता, परन्तु उन घोर दुर्दिनों में भी उन्हों ने ऐसा नहीं सोचा। और जो कुछ कर दिखलाया, आज समस्त संसार उस की प्रशंसा में सहस्रमुख है। किन्तु आज वैदिक धर्म्म के लिये न तो वह घोर दुर्दिन उपस्थित है, न अभी उस का वैसा समूल संहार हो रहा है, तथापि हम विचलित हैं, पश्चात् पद हैं, और किसी कर्तव्य निर्धारण में अक्षम हैं। वर्त्तमान बीस करोड़ हिन्दुओं में से, अनेक उन के पदानुसरण करनेवाले हैं, अनेक उन के धर्म्म का दम भरनेवाले हैं, अनेक उन के नाम पर उत्सर्ग होनेवाले हैं, अनेक उन के सजातीय हैं, अनेक उन के वंशधर हैं और अनेक उन के कार्य्य को प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते हैं। परन्तु क्या इन में से एक प्राणी में भी, इन में से एक आत्मा में भी, उक्त महात्मा के आत्मिक बल का शतांश भी, उक्त महोदय के सच्चे धर्म्मोत्साह का सहस्रांश भी उपस्थित है? "सत्ये नास्ति भयं क्वचित्" अतएव हम करोत्तोलन पूर्वक कहते हैं कि कदापि उपस्थित नहीं है, क्योंकि यदि उक्त आत्मिक बल का शतांश भी, ~~कल्पित~~ धर्म्मोत्साह का सहस्रांश भी दश बीस नहीं दो चार प्राणियों में भी उपस्थित होता, तो आज पवित्र सनातन धर्म्म पर इस प्रकार दुराक्रमण का समय न आता। वास्तव बात यह है कि उक्त विशेषणों को किम्वा पूर्वोल्लिखित

सम्बन्धों को केवल आत्म सम्मानलाभ किम्वा आत्मप्रतिष्ठा स्थापन के निमित्त हम सर्व साधारण के सन्मुख धारण करते अथवा प्रगट करते हैं । हमारीदृष्टि इस ओर सर्वथा नहीं है कि उक्त विशेषणों के धारण किम्वा पूर्वोल्लिखित सम्बन्धों के प्रकटीकरण का मुख्य उद्देश्य क्या है ? किन्तु जो उद्देश्य-ज्ञान की मूर्त्ति था, जो आत्मत्याग का जाज्वल्यमान उदाहरण था, जो धर्म्म प्राणता का साक्षात् अवतार था, और जो कर्तव्यनिष्ठा का एक मात्र आदर्श था, यदि उस के सजातीय होकर, उस के वंशधर कहला कर, उस के पदानुसरणकारी बनकर, उस के धर्म्म का झंडा लेकर, हम मुख्य उद्देश्य समझने की चेष्टा न करें, स्वार्थसाधन वो व्यर्थ के आडम्बर में ही संलग्न रहें, और आत्मप्रतिष्ठा स्थापन और आत्मसन्मान लाभही को अपना परम कर्तव्य समझें, तो हम को इस कलंकपूर्ण वो पापमय जीवन को लेकर अव इस सुरदुर्लभ पवित्र भारतभूमि को कलंकित न करना चाहिये, वरन हम लोगों को रसातल के किसी जन-हीन प्रान्त में, अफरिका के बहुदूर विस्तृत मानवशून्य मरुभूमि में किम्वा आस्ट्रेलिया के असंख्य पादपश्रेणीपूर्ण सहस्रशः क्रोशव्यापी निर्जन अरण्य में, स्थानअन्वेपण करना चाहिये, जिस में इस पुण्यस्थान को कोई दूसरा धर्म्मनिष्ठ कर्तव्य-परायण देवचरित पुरुष आकर सुशोभित करे।

प्रायः हम ने अनेक पंडितों से सुना है, पंडितों के अतिरिक्त और भी धर्म्मप्राण हिन्दुओं ने इस बात की चर्चा की है, कि देखो कैसा भयानक समय आकर उपस्थित हुआ है, कि अव भारतीय धर्म्मशिक्षा की अधिष्ठात्री देवी भी एक क्रिश्चियन स्त्री है । यहां के लोगों की धर्म्म-पिपासा अव

विद्वान ब्राह्मणों से नहीं निवृत्त होती, उन की ज्ञान-शिक्षा अब भारतीय संत महात्माओं द्वारा नहीं सांग होती, अब धर्म्मपिपासा निवृत्ति के लिये, ज्ञानशिक्षा सांग करने के लिये भी, इंगलेण्डनिवासिनी विचित्रचरित्रा एक पादरीपत्नी की आवश्यकता है। पूज्य पंडितों का यह कथन, धर्म्मप्राण हिन्दुओं की यह उक्ति, यद्यपि जातीय गौरव और स्वधर्म्म ममता से परिपूर्ण है, यद्यपि स्वदेश वत्सलता और आत्म-निर्भरता उस में कूट कूट कर भरी हुई है। किन्तु विचारना तो यह है कि वास्तव में समय की प्रतिकूलता ही उक्त क्रिश्चियनस्त्री, किम्वा विचित्रचरित्रा पादरीपत्नी के अभ्युत्थान और कृतकार्य्यता का कारण है—अथवा कोई दूसरा हेतु भी है। मेरा विचार है कि जो कर्म्मठ व्यक्ति हैं, जिन में अदम्य उत्साह है, लोकोत्तर साहस है, अश्रुतपूर्व अध्यवसाय है-समय कभी उन के प्रतिकूल नहीं होता- वह समय को प्रतिपल और प्रतिक्षण अपने अनुकूल पाते हैं-जड़समय में क्या सामर्थ्य है जो ऐसे जीवन्त महानुभाव की प्रतिकूलता कर सके। किन्तु जिन में यह गुण नहीं है, अलस-प्रकृति किंकर्तव्यविमूढ़ता, आदि ही जिन के सम्बल हैं, समय को अनुकूल कर लेना जिन को आता ही नहीं, वही समय की प्रतिकूलता का राग अलापा करते हैं। मनुष्य कितनाही बड़ा निष्कर्म्मा और अपदार्थ क्यों न हो, पर वह किसी दोष को अपने मत्थे मढ़ना अच्छा नहीं समझता, वह सर्वदा कोई न कोई युक्ति अपनी अपदार्थता के निराकरण का उद्भावन करता रहता है, और यही सिद्धान्त किंकर्तव्य विमूढ़ किम्वा अलस होने पर हम को समय की प्रतिकूलता का राग अलापने के लिये अग्रसर करता है, नहीं तो समय की प्रतिकूलता

भी कोई वस्तु है । सोचने का स्थान है कि जिस स्त्री का इस भारतवर्ष में एक भी सहायक, एक भी हितैषी, एक भी सुपरिचित व्यक्ति न था जिस के निवासस्थान और भारतवर्ष के बीच में सहस्रों कोश पर्यन्त उर्म्मिमालासंकुल अगाध जलशाली समुद्र तरंगायमान था, स्वयं उसी की जाति के लोग, उसी की जाति के धर्म्मोपदेष्टागण, जिस के रक्त के पिपासु थे, उस स्त्री ने, स्त्री होने पर भी, पुरुषोचित गुणों की न्यूनता-रखने पर भी क्या किया-वह असंख्य मतवाद घनपटल समाच्छन्न भारतगगन में अचांचक विद्युत समान प्रद्योतित हुई, और उस के उज्वण प्रकाश से देखते ही देखते समस्त ~~दिग्मण्डल~~ दे

आलोकित हो गया-आज वह भारतवर्ष की शिक्षित मण्डली की शीर्ष स्थानीया है, और प्रतिदिन भारत में उस की प्रतिपत्ति और प्रतिष्ठा परिवर्द्धित हो रही है । परन्तु हम इसी भारतभूमि में उत्पन्न होकर, यहां के पवन पानी में पलकर, यहां के धर्म्मनेता कहलाकर, समाजपरिचालक बन कर, सब प्रकार की क्षमता रख कर, करोड़ों सत्पुरुषों में श्रद्धा विश्वास के रहते, करोड़ों भावुक भक्तजनों द्वारा पूजित होते भी, अधः पतित हैं, स्थानच्युत हैं, और पदभ्रष्ट हैं । दिन दिन हमारी प्रतिपत्ति कम होती जाती है, प्रतिष्ठा उठती जाती है और समादर घटता जाता है । इस का क्या कारण है ? क्या समय की प्रतिकूलता इस का कारण है ? मैं कहूंगा कदापि नहीं । वास्तव बात यह है कि जो देश काल का ज्ञान नहीं रखता, जिस की दृष्टि परिणामदर्शिनी नहीं है, जो उद्योगशून्य है, लक्ष्यच्युत है, उद्देश्यरहित है, जिस में कर्तव्य-परायणता नहीं, उत्साह नहीं, साहस नहीं, यदि वह भगवान भुवनभास्कर के समान प्रतापशाली है, तो भी

उस का पतन होगा, और अनन्त काल के लिये उस का नाम इस परिवर्त्तनशील संसार स्रोत में निमग्न हो जावेगा, और यदि ये गुण उस में हैं तो वह रजकण से भी अधिक अपदार्थ क्यों न हो, परन्तु एक अद्भुत ईश्वरीय बल से बलीयान होकर नभोमण्डल में उस दुरन्त तेज से देदीप्यमान होगा, कि जिस की प्रसाद भिक्षा करने मे राकारजनीरंजन कलानाथ का हृत्कमल भी सुविकसित और समुत्फुल्ल होगा।

कर्तव्यपरायणा एनीवेसण्ट की अवस्था साठ वर्ष से न्यून नहीं है, अंग अंग शिथिल हो गया है, उन के लिये वह समय उपस्थित है जब प्राणी विश्राम के लिये कोमल आस्तरण की चिन्ता में लग्न होता है—परन्तु उन को विराम नहीं है, विश्राम नहीं है, कठोर परिश्रम करने में श्रान्ति नहीं है। उन का एक पांव भारतवर्ष में है तो दूसरा इंगलैण्ड में,—आज वह अमेरिका में है तो .ल फ्रान्स में—गहन वन, दुर्गम पर्वत, तरंगशाली समुद्र, कल्लोलशालिनी सरिता, उन के उत्साह को भंग नहीं करतीं, उन के साहस को क्षीण नहीं बनातीं, और उन की दुरन्त आशा की बाधिका नहीं होतीं। उन को कोई प्रपंचकारिणी कहता है, कोई पापाचारिणी कह कर गाली देता है, कोई मायारूपिणी बनाता है, कोई कपट की साक्षात् मूर्ति बतलाता है, परन्तु वह इन बातों पर भ्रूक्षेप तक नहीं करतीं, इन कटूक्तियों की परवाह तक नहीं करतीं, उन की दृष्टि है तो अपने कर्तव्य की ओर, उन का ध्यान है तो अपने कार्य्यसाधन की ओर, संसार के दूसरे समस्त प्रपंचों से उन को कोई सम्बन्ध नहीं। आज उन के रोम रोम से यही ध्वनि निकल रही है कि " स्वका-

र्य्यम् साधयेत् धीमान् कार्य्यभ्रंशोहि मूर्खता" और यही कारण है कि उस कृश्चियन स्त्री का उस विचित्रचरित्रा पादरीपत्नी का भारतवर्ष में इतना समादर है। और क्यों न हो, जब कि चारित्र्यबल ही चरमोत्कर्ष लाभ का सर्व्वोत्कृष्ट सोपान है। मेडमब्लावस्की एक रशियन महिला थी, मिसेज़ एनीबेसण्ट एक इंगलिश स्त्री हैं, न यह दोनों एक देशवासिनी थीं न इन दोनों में कोई आत्मसम्बन्ध था, तथापि यह दोनों एक जातीया हैं, स्त्री वह भी थीं, स्त्री यह भी हैं, जातीयता क्या वस्तु है, जातीयता का क्या महत्त्व है, जातीयता में कैसे चमत्कारक गुण हैं, जातीयता में कैसी वैद्युतिक-क्षमता है आज हम लोग इस के अवगत करने में अक्षम हैं, किन्तु यूरोपियन जातियां इस महामंत्र की पूर्णोपासक हैं, वह इस के जगतविमुग्धकारी गुण को पूर्णतया जानती हैं। आज इसी महामंत्र से दीक्षित होकर, आज इसी महामंत्र से मुग्ध होकर—जिस काल थियासोफी के प्रसार वो वृद्धि की कामना से मिसेज़ एनीबेसण्ट कार्य्यक्षेत्र में अवतीर्ण होती हैं, उस काल वह विशाल पर्वत को भी हस्तामलक समझती हैं, अपार समुद्र को भी गोपद समान उत्तीर्ण होती हैं, और कठिन बज्र को भी पुष्प के समान आलिङ्गन करती है—क्यों कि वह एक उन की सजातीया का, एक स्त्री जाति का, प्रचारित धर्म्म है। हमारी ईर्षाकलुषित वक्रदृष्टि उन के ऊपर पतित होती है, हमारा असूयासंदग्ध हृदय उन के विरुद्ध उद्वेलित होता है, किन्तु हमारी उसी दृष्टि में उन के गौरवान्वित सद्गुण स्थान नहीं ग्रहण करते, और हमारे उसी हृदय में उन की कठोर कर्तव्य परायणता, उन की अलौकिक जातीयता का समादर नहीं होता। मिसेज़ एनी-

बेसण्ट किसी आत्मसम्बन्ध न रहने पर भी, एकदेशीया और एककुलोत्पन्ना न होने पर भी, केवल सजातीयता के नाते, समानधर्म्मा होने के सम्बन्ध से, मेडमब्लावस्की के प्रचारित सिद्धान्त के लिये, उस के प्रदर्शित पथ के लिये- स्वार्थ को तिलांजलि देने के लिये सन्नद्ध हैं, मानमर्य्यादा से हस्ताकर्षण करने के लिये प्रस्तुत हैं, आत्मोत्सर्ग तक करने के लिये बद्धपरिकर हैं। किन्तु जिन महामहिम लोकोत्तर-चरित्र महात्माओं ने सनातनधर्म्म का प्रचार किया है, जिन समस्त संसार के एक मात्र पथप्रदर्शक महत्जनों ने उस के सत् सिद्धान्तों से जगत का मुख उज्वल किया है उन्हीं आर्य्य-कुल-तिलकों के वंशधर कहलाकर, उन्हीं लोक विश्रुतकीर्ति अत्रि, अंगिरा, गौतम, कपिल, कणाद, के रज वीर्य्य से उत्पन्न होकर, उन्हीं पुण्यश्लोक मर्य्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र वो श्रीकृष्ण से रुधिरसम्बन्ध रख कर, उन्हीं के सदेशीय वो सजातीय बनकर, अपने प्राण से भी प्रियतर धर्म्म की दुर्दशा देखते हुए भी, अपने जगद्वंद्य सिद्धान्तों पर सांघातिक प्रहार होते हुए भी, हम निश्चल, निस्पन्द हैं, अलस वो किंकर्तव्यविमूढ़ हैं, न वह अदम्य उत्साह है, न वह प्रगाढ़ कर्तव्यपरायणता है, न वह स्वार्थत्याग है, न वह आत्मोत्सर्ग है, न वह दुस्साहस है, और न वह कठोर अध्यवसाय है—फिर किस मुंह से हम समय की प्रतिकूलता का विषय उत्थापन करते हैं, और क्या मुंह लेकर हम मिसेज़ एनीबेसण्ट के विरुद्ध कुछ कथन का साहस करते हैं। यदि हम को वास्तव में स्पर्द्धा है, यदि हमारे हृदय में कुछ भी प्रतिद्वंदिता का लेश है, तो हम को वीरदर्प से, पुरुषोचित उमंग से, कार्य्य-क्षेत्र में दण्डायमान होना चाहिये और लोकोत्तर आत्मोत्सर्ग

के साहाय्य से प्रतिपन्न कर देना चाहिये कि हम निर्जीव नहीं हैं, निष्प्राण नहीं है, अब भी हमारे रुधिर में वैद्युतिक प्रवाह है, और अब भी हमारे रोमों मे अग्न्युद्गीरण की क्षमता है।

हम को स्मरण है गत वर्ष जब पुण्यश्लोक महाराजकुमार दीक्षित जवानसिंह का स्वर्गारोहण हुआ, जब धर्म्मगतप्राण महाचेता बाबू माधोप्रसाद हालूवासिया का लोकान्तर हुआ, उस समय सनातनधर्म्मावलम्बियों में हाहाकार मच गया था, उन के आर्त्त क्रन्दन से दिशायें प्रतिध्वनित हो उठी थीं। इस अनित्य संसार मे जन्म मरण नित्यही होता है, प्रतिवर्ष ही दो एक राजे महाराजे, सेठ और महाजन इस धराधाम से उठ जाते हैं—परन्तु हिन्दूसमाज जितना इन दोनों महानुभावों के स्वर्गारोहण होने पर विचलित और खिन्न हुआ, उतना और समय होते नहीं देखा गया। हिन्दूधर्म्म में जैसी प्रगाढ़ निष्ठा इन महात्माओं की थी, जैसा यह लोग इस धर्म के लिये उत्सर्गीकृतजीवन थे, ऐसे महत् व्यक्ति इस भारतवर्ष में अब बहुत अल्प है, ऐसे महात्मागण जब अपना स्थान शून्य कर के स्वर्ग की यात्रा करते हैं तो उन का स्थान पूर्ण करनेवाला प्राणी अब भारतवसुंधरा उत्पन्न नही करती और यही कारण है कि इन दोनों महापुरुषों के स्वर्गारोहण करने पर हिन्दूसमाज इतना मर्म्माहत हुआ था। आज वह दिन उपस्थित है कि चेष्टा करने पर भी लोग सनातन धर्म्म की ओर प्रवृत्त नहीं होते, बहुतही दुखपूर्ण हृदय से, बड़ेही करुणस्वर से, लोगों के हृदय पर हिन्दूधर्म्म की संकटापन्न अवस्था अंकित की जाती है, किन्तु वह इधर भ्रूक्षेप तक नहीं करते। यदि यह लोग कुछ सभ्यता से काम लेते

हैं तो दो चार सहानुभूति सूचक शब्दों द्वारा थोड़ा बहुत आंसू पोछ भी देते हैं अन्यथा ऐसी कटूक्ति करते हैं, ऐसे दुर्वचन कहते हैं, जिस को सुनकर अन्य धर्म्मावलम्बियों को भी दांतों उंगली दाबनी पड़ती है। यह उन के वंशधरों की अवस्था है, यह उन के रज वीर्य्य जात की गति है— जिन्हों ने धर्म्म के लिये संसार को तृण गिना, प्राण को तुच्छ जाना और शरीर को एक कच्चे घड़े से अधिक न समझा। जिस धर्म्ममता के वशीभूत होकर सोमनाथ के पवित्र मन्दिर पर कई सहस्र क्षत्रिय वीरों ने आत्मोत्सर्ग किया, जिस धर्म्माग्रह के गुरुत्वबल से प्रातस्मरणीय महात्मा राणा प्रताप ने चतुर्दश वर्ष बनवास की असह्य यन्त्रणा की ओर दृक्पात भी न किया, और जिस धर्म्मासक्ति के महत्त्व ने महाप्राण महाराज मानसिंह को सम्राट् अकबर के अनुरोध की रक्षा न करने के लिये वीरदर्प से बाध्य किया, आज वही धर्म्ममता, वही धर्म्माग्रह, वही धर्म्मासक्ति, आर्य्यसन्तानोंद्वारा उपेक्षित, अनादृत, और पद-दलित है, और आज उसी की अप्रतिष्ठा उन के जीवन का प्रधान लक्ष्य है। जिस दिन एक एक बार में सहस्रों मुण्ड धराशायी होते थे, जिस दिन एक एक बार सैकड़ों निरपराध दीवारों में चुने जाते थे, जिस दिन अबोध बालकों का कलेजा निकाल कर मर्म्माहत पिताओं के ऊपर फेंका जाता था, जिस दिन धर्म्म का नाम लेते जलते चिमटों से जीभ निकाली जाती थी, जब राज्यध्वंस होता था, धन धरती अपहरण की जाती थी, पुत्र कलत्र वध होते थे, घर बार दग्ध किया जाता था, उस दिन हम धर्म्मोन्मत्त थे, उस दिन हम ने धर्म्ममता न छोड़ी, परन्तु आज न वह दुर्दिन है,

न वह कठोर उत्पीड़न है, तथापि हम धर्म्मपराङ्मुख हैं और दिन२ धर्म्ममता छोड़ते जाते हैं। फिर क्यों न महाराजकुमार दीक्षित जवान सिंह और तेजस्वी वैश्यकुमार बाबू माधो प्रसाद जैसे धर्म्मप्राण पुरुषों के असमय स्वर्गारोहण होने से हिन्दूसमाज विचलित होगा? और क्यों न उस के मुख से हृदय-विदीर्ण-कारिणी आह विनिर्गत होगी?

इस समय इस विषय के उत्थापन की कोई आवश्यकता न थी, और न इस हृत्कम्पकरी घटना के उल्लेख का कोई प्रयोजन था, परन्तु हिन्दू समाज की दृष्टि को मुझे इस ओर आकर्षित करना है कि वह कौन से कारण हैं जिन से ऐसे महानुभाव अब उत्पन्न नहीं होते, और इसी लिये इस विषय की यहां चर्चा की गई है। आज उन्नति का दिन है, भारतवर्ष की प्रत्येक दिशाओं से उन्नति की ध्वनि उत्थित हो रही है, यहां का जनसमाज द्रुतगति से उन्नति पथ में धावमान है, जिस को देखो वही उन्नति का राग अलाप रहा है—फिर क्या कारण है, कौन सी बाधा है, जिस से हिन्दूधर्म्म के, उन्नतिपथ में कांटे पड़ रहे है, और वह कौन सी त्रुटि है, जिस से सनातनधर्म्म समुन्नत होने के स्थान पर संकुचित हो रहा है। हमारा शास्त्र कल्पतरु है, अगाध समुद्र की भांति विस्तृत वो गंभीर है, उस में प्रत्येक काल की व्यवस्थायें लिपिवद्ध हैं, उस में प्रत्येक रोग की उपयुक्त औषधि उल्लिखित है, ऐसी कोई विघ्नबाधा नहीं जिस के उपशम की उस में युक्ति न हो, और ऐसा कोई उपद्रव और उत्पात नहीं जिस की शान्ति की उस में व्यवस्था न हो। हमारे शास्त्र के जो सिद्धान्त समयानुकूल है, जिन सिद्धान्तों के प्रचार से देश का, समाज का,

हिन्दूजाति और धर्म्म का मंगल हो, आज उन्हीं सिद्धान्तों के प्रचार की आवश्यकता है, आज उन्हीं सिद्धान्तों की ओर सर्व्व साधारण को प्रवृत्त करने का प्रयोजन है। हमारे कोई धर्म्मशास्त्र, हमारे कोई धर्म्मग्रंथ, ऐसे नहीं हैं, जिन में देश काल, और पात्र का विचार ज्वलन्त अक्षरों में न लिखा गया हो, और जिन में समयानुकूल कार्य करने की व्यवस्था स्पष्ट वाक्यों में न दी गई हो। हमारे शास्त्रकर्ता, हमारे धर्म्मशास्त्रप्रणेता, सर्वज्ञ थे, त्रिकालदर्शी थे, उन की सूक्ष्मदृष्टि विस्तृत थी, उन का ज्ञान सर्वदेशी था, वह लोग न संकीर्ण मार्गों में विचरण करते थे, न अपने आस पास की बसुंधरा को ही समस्त संसार समझते थे, उन्हों ने जो कुछ लिखा है, वह मानवसमाज के लिये अमृत है, प्राणी मात्र के लिये कामधेनु है, और प्रत्येक समय के लिये विधिबद्ध आईन है। यदि उन लोगों का विचार इतना उन्नत न होता, यदि वह लोग ऐसे सर्वद्रष्टा न होते तो मनुधर्म्मशास्त्र के अतिरिक्त आज अष्टादश धर्म्मशास्त्र न तो हस्तगत होते, और न चारों वेद के अतिरिक्त षड्दर्शन और अष्टादश पुराणों के रचना की आवश्यकता होती। यदि मनु और याज्ञवल्क्य आज इस पृथ्वीतल पर वर्त्तमान नहीं हैं, यदि वशिष्ठ और व्यास की पवित्र मूर्त्ति इस धरा-धाम को आज पुनीत नहीं कर रही है, तोभी भारत बसुंधरा में अभी ऐसे ऐसे उदारचरित्र महात्मा, ऐसे ऐसे पुण्यश्लोक विद्वान, उपस्थित हैं, जो शास्त्रों को मथन कर के ऐसी उपादेय पद्धति को संग्रह कर सकते हैं, जो इस दुरन्त समय में इस कठोर काल में भी, हिन्दूसमाज और हिन्दूधर्म्म के लिये संजीवनी बूटी का काम दे सकती है। यह सत्य

बड़े बड़े कर्म्मठ व्यक्ति, और बड़े बड़े अध्यवसायशील पुरुष विद्यमान हैं, उस हिन्दूजाति को वात वात में किंकर्तव्यविमूढ़ और अलस कहना, कापुरुष और स्वार्थान्ध बनाना, कभी निष्क्रिय, निश्चल, निष्पन्द कह कर गालीदेना, कभी निरुत्साही, संकीर्ण हृदय, अदूरदर्शी बतलाकर निन्दाकरना बड़ी भारी धृष्टता, प्रथमकोटि की निरंकुशता, और महान अविमृश्यकारिता है। क्या अब यही शेष रह गया कि हिन्दू जाति रसातल को चली जाय, अथवा अफरिका की मरु भूमि वा आस्ट्रेलिया के अरण्य में स्थान ग्रहण करे ? क्या उस को अब अगाध जलधि गर्भ ही धारण कर सकता है ? क्या ज्वलन्त अग्नि में आत्मविसर्जन ही उस के लिये अब सर्व्वसम्मत विचार है ? क्या हिमाचल के सर्वोच्चशृंग ही उस की आत्मग्लानि के अब प्रधान अवलम्बन हैं ? यदि नहीं तो क्यों ऐसी ऐसी क्षुद्र वो घृणित बातें कह कर हिन्दू जाति कलंकित वो अपमानित की जाती है ? क्यों उस को ऐसे ऐसे कठोर वाक्य वाणों का लक्ष्य बनाया जाता है ? निर्जीव कहते कहते जाति निर्जीव होती है, कापुरुष कहते कहते जाति में कापुरुषता का प्रवेश होता है, फिर क्यों ऐसे शब्दों से वह स्मरण की जाती है, और क्यों उस को यह सब लाञ्छन लगाने का साहस किया जाता है ? बात बहुत सत्य है, जिन महोदयों के हृदय में ऐसे विचार उठते होंगे, मैं भक्ति भाव से उन को प्रेम पुष्पाञ्जलि अर्पण करता हूं, क्योंकि जिस के हृदय में जातीय प्रेम तरंगायित होगा, जो जातीय ममता के मनोमुग्धकारी मंत्र से दीक्षित होगा, उसी के हृदय में इस प्रकार के विचार उठने की संभावना है, और ऐसे महात्मा सर्वथा पूजनीय और वन्द्य है। परन्तु मेरी अति

विनीत प्रार्थना यह है कि क्या वास्तव में प्रमाद के वशीभूत हो कर मैंने ऐसा लिखने का साहस किया है ? क्या वास्तव में मैं ऐसा नीचमना हूं, ऐसा क्षुद्र हृदय और अदूरदर्शी हूं, कि हिन्दूजाति का महत्त्व, हिन्दूजाति का गौरव, मेरे लिये चक्षुशूल है, और मैं स्वतः प्रवृत्त हो कर उस को कलुषित और दूषणीय बनाना चाहता हूं। क्या धर्म्मप्राण महात्माओं, शास्त्र पारंगत विद्वानों, धर्म्मधुरन्धर महाराजों, धर्म्मनिष्ठ महाजनों, एवम् दूसरे हिन्दू सज्जनों के लिये, मेरे हृदय में श्रद्धा विश्वास नहीं है, मानसम्भ्रम नहीं है, जो मैं उन को कटु शब्दों द्वारा स्मरण करता हूं, और घृणित लांछनों द्वारा लांछनित बनाता हूं। महाशयो ! प्रिय सज्जनो ! शान्तिशील हिन्दूजाति पर, उदार प्रतिष्ठित हिन्दू सज्जनों पर, नहीं नहीं, हिन्दूजाति के किसी एक क्षुद्र अंग पर, हिन्दू समाज के किसी एक साधारण पुरुष पर, भी, स्वयं लांछन लगाना और कटु शब्द प्रयोग करना तो दूर ! किसी अन्य को लांछन लगाते देख कर, कटु शब्द प्रयोग करते सुन कर, हृदय को जो पीड़ा होती है, जो मर्म्मान्तिक कष्ट होता है, यदि क्षमता होती तो मैं आप लोगों को अपना हृदय खोल कर दिखलाता, परन्तु दुःख है कि इस विषय में मैं सर्वथा अक्षम हूं। हिन्दूजाति मेरी जन्मदाता है, उस के प्रतिष्ठित सज्जन मेरे सीस-मुकुट हैं, उस का साधारण प्राणी भी मेरा बन्धु है, मेरे शरीर का अंग है, मुझ में कहां ऐसी शक्ति है जो मैं उस के विरुद्ध कुछ कहने का साहस करूं। उस से बढ़कर पापात्मा इस पृथ्वीतल पर कौन है, जो वृथा अपनी जाति पर कलंक पंक निक्षेप करता है, और निष्प्रयोजन उस की अवमानना के लिये बद्धपरिकर होता है। किन्तु जब मैं

समयानुकूल मुसलमानों के धर्म्मोत्साह, धर्म्मप्राणता, और अद्भुत कार्य्य क्षमता को अवलोकन करता हूं, जब मैं क्रिश्चियन सम्प्रदाय के धर्म्मवीरों को अलौकिक तेज, अभूतपूर्व दर्प और साहस, से कार्य्य क्षेत्र में विचरण करते देखता हूं, जब मैं एक आधुनिक छोटी सी संस्था आर्य्यसमाज में लोगों को आत्मोत्सर्ग करते हुए, अविश्रान्त कार्य्यकारिणी शक्ति से काम लेते हुए निरीक्षण करता हूं, और तत्पश्चात् अपनी सामयिक किंकर्तव्यविमूढ़ता, अपनी निरुत्साहिता, और अपनी एकान्त अलसता पर दृष्टिपात करता हूं, तो हृदय संक्षुब्ध होता है, उत्कट आत्म-पीड़ा से शरीर जर्जरित होता है, और आंखों के सन्मुख एक भयंकर अंधकार छा जाता है। ऐसे आत्म-विस्मृति के समय, ऐसे रोमांचकर व्यामोह के समय, हिन्दूजाति के लिये, हिन्दूसमाज के भद्र पुरुषों के लिये, किसी असंयत वाक्य का प्रयोग हो जाना आश्चर्य नहीं। किन्तु जिस असंयत किन्तु सत्य वाक्य में हितैषिता का अंश है, जो कटुवादिता प्राणी के लिये औषधि का गुण रखती है, जो कठोर वचन ईर्षा द्वेष शून्य है, प्रेम और अनुरागपूर्ण है, वह कभी ताच्छिल्य प्रकाश करने के योग्य नहीं है, और न वह प्राणि पापात्मा अथवा नीचाशय हो सकता है, जो आन्तरिक कष्ट से व्यथित होकर एक सदुद्देश्य से ऐसा करने के लिये वाध्य हुआ है। हम विश्वव्यापी बृहत् मुसलमान सम्प्रदाय किम्वा क्रिश्चियन सम्प्रदाय को नहीं लेंगे, उस छोटी सी संस्था आर्य्यसमाज ही को लेते हैं, जिस में अब तक हिन्दू रजवीर्य्य से उत्पन्न संतान ही संयुक्त हैं, और दिखलाया चाहते हैं कि हिन्दू धर्म्मावलम्बियों और उन में कितना अंतर है। पं० भगवान दीन एक ब्राह्मणसंतान है,

पं० तुलसीराम एम. ए. भी ब्राह्मणवंश के ही कुमार हैं, उसी जाति में ही इन लोगों का जन्म हुआ है, कि जिस के समान दुर्वचन की अधिकारिणी जाति आर्य्यसमाजियों की दृष्टि में दूसरी नहीं है। परन्तु देखिये आर्य्यसमाज में जाने पर इन लोगों में कैसा परिवर्तन हुआ है, पं० भगवान दीन ने आर्य्यसामाजिक उद्देश्य के प्रचार वो वृद्धि के लिये डिप्टी कलक्टरी ऐसा पद छोड़ा, घर की बहुत बड़ी सम्पत्ति उस के अर्पण की। और अब तन मन से उस की सेवा करना ही उन के जीवन का प्रधान लक्ष्य है। दूसरे पुरुष पं० तुलसीराम ढाई सौ मासिक के प्रधान कर्म्मचारी थे, आप ने इस उच्च पद से हस्ताकर्षण किया, निस्स्वार्थ और निष्काम भाव से अपने को आर्य्यसमाज के अर्पण किया, और आज कल उस के सिद्धान्तों का अचल अटल भाव से प्रचार करना ही उन का मुख्य उद्देश्य है। पंजाब प्रान्त के कर्म्मवीर लाला लाजपत राय और लाला हंसराज का नाम भी इस अवसर पर उल्लेख योग्य है, इन में से प्रथम जन लाला लाजपत राय लाहौर के प्रसिद्ध वकील हैं, इन की वकालत की जितनी आय है उस में से अपने निर्वाह योग्य द्रव्य लेकर शेष समस्त आय को वह आर्य्यसमाज के अर्पण करते है, और इस के अतिरिक्त वकालत से जितना समय बँच जाता है उस सम्पूर्ण समय को वह आर्य्यसमाज की सेवा करने में व्यय करते हैं। दूसरे पुरुष लाला हंसराज दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज के आनरेरी प्रिन्सिपुल है, आप बिना एक पैसा वेतन लिये उक्त कालिज में निस्स्वार्थ भाव से कार्य्य करते हैं। इन के एक भ्राता इन को पचास रुपया मासिक देते हैं, यह इतनी ही आय में अपनी संसार यात्रा निर्वाह

करते हैं, और अहर्निश आर्य्यसमाज की हितकामना में संलग्न रहते हैं। यह लोग हिन्दूधर्म्म और हिन्दूजाति के कितने ही बड़े शत्रु क्यों न हों, प्रकारान्तर से वैदिकसिद्धान्तों का इन लोगों द्वारा समूल संहार क्यों न होता हो, हम लोगों से उन का प्रत्येक उद्देश्य और सिद्धान्तों में महान विरोध ही क्यों न हो, परन्तु जिस सिद्धान्त को उन लोगों ने ग्रहण किया है, उस के लिये उन लोगों का इस प्रकार का आत्मोत्सर्ग इस प्रकार का अपूर्व उत्साह और अध्यवसाय सर्वथा प्रशंसनीय है, और कोई हृदयवान ऐसा न होगा जो उन लोगों की इस स्वधर्म्म परायणता की सहस्र मुख से प्रशंसा न करे। दुःख है कि जब हम अपने हिन्दूसमाज पर दृष्टि डालते हैं तो देशकालानुसार हिन्दूधर्म्म के प्रसार, वृद्धि, और संरक्षण के लिये इस प्रकार आत्मोत्सर्ग और प्रयत्न करनेवाले दो चार सज्जन भी दृष्टिगत नहीं होते, और यदि दो चार सज्जन का होना स्वीकार भी करलें तब भी यह संख्या समुद्र में दो चार बूंद से अधिक नहीं है, क्या यह हिन्दूजाति के लिये कलंक का विषय नहीं है? क्या इस से अधिक कोई दूसरा लांछन हिन्दूसमाज के लिये हो सकता है? क्या इस से हमारी किंकर्तव्यविमूढ़ता और स्वार्थान्धता नहीं सिद्ध होती? और ऐसी अवस्था में यदि सदुद्देश्य से हिन्दूसमाज को उस के दुर्गुणों से अभिज्ञ किया जावे, उस को सतर्क और सावधान बनाया जावे, तो क्या यह प्रमाद और नीचता है, धृष्टता और कटुवादिता है। आर्य्यसमाज ही क्या जिन हिन्दूसंतानों पर कोई भी दूसरा रंग चढ़ गया है, जिन हिन्दू वंशधरों ने हिन्दू-धर्म्म, गंडीर से बाहर दो चार डेग भी आगे रक्खे हैं, हम उन्हीं को उत्साहशील, उन्हीं को उद्योगशील, उन्हीं

को आत्मोत्सर्गपरायण, और उन्हीं को कार्य्यक्षेत्र में कर्त्त-व्यनिष्ठ, अवलोकन करते हैं, परन्तु यदि यह गुण नहीं हैं तो हम सनातनधर्म्मावलम्बियों में नहीं हैं, और क्या इस से मर्म्मवेदना नहीं होती? और हृदय दग्ध नहीं होता? पूना के फरगुसन कालेज में विद्वद्वर प्रांजपे ऐसे गणितशास्त्र के पारंगत, देशहितैषी शिरोमणि गोखले ऐसे अद्वितीय वक्ता, केवल निर्वाह मात्र अति अल्प वेतन लेकर कार्य्य कर सकते हैं, क्योंकि उन लोगों पर प्रार्थना समाज का रंग चढ़ा हुआ है। सेंट्रल हिन्दूकालेज बनारस में, डिप्टीकलक्टरी छोड़कर बाबू भगवानदास आनरेरी सेक्रेटरी का पद ग्रहण कर सकते हैं, जरा जर्जरित होने पर भी पेंशन प्राप्त पं० छेदालाल सुपरिंटेंडेंट बोर्डिंगहौस बन सकते हैं, और निस्स्वार्थ भाव से आत्मोत्सर्गपूर्वक कर्म्म कर सकते हैं, क्योंकि थियासोफिकल सोसायटी के मंत्र से यह लोग दीक्षित हैं। परन्तु श्री भारतधर्म्म महामण्डल में अथवा इसी प्रकार की किसी अन्य हिन्दूधर्म सम्बन्धिनी संस्था में हमारे अपार हिन्दू भाइयों में से दो चार सुजन भी इस प्रकार का आत्मोत्सर्ग करने के लिये प्रस्तुत नहीं हैं, क्योंकि वह स्वच्छ हिन्दू हैं, और अब तक उन पर कोई दूसरा रंग नहीं चढ़ा है—हा! क्या यह कलंक सह्य होता है! क्या इन बातों के स्मरण होते ही हृदय खंड खंड नहीं होने लगता! क्या हमारी यह भयानकनिर्जीवता नहीं है!!! क्या अब हम अपनी पवित्र नसों में दूसरे का रुधिर प्रवेश करा कर ही सशक्त होंगे? क्या अब हम अपने पांवों के बल खड़े न हो सकेंगे? प्यारे सनातनधर्म्मावलम्बियो, तुम्हीं इस का उत्तर दो। आर्य्यसमाज के वार्षिक उत्सवों पर प्रतिवर्ष दो एक

उत्साही पुरुष आत्मोत्सर्ग करते हैं, सम्पूर्ण स्वार्थों से मुंह मोड़ कर आजन्म उस की सेवा के लिये बद्धपरिकर होते हैं, परन्तु सनातनधर्म्मावलम्बियों में कितने सज्जन ऐसे हैं, जो इस प्रकार का उदाहरण दिखलाने में समर्थ हैं, आज पन्द्रह वर्ष से भारतधर्म्म महामण्डल स्थापित है, उस की असफलता की ध्वनि जिधर से सुनो उधर से ही सुनाई देती है, परन्तु उस को पुष्ट करने के लिये, उस को सशक्त बनाने के लिये, उस को नियमबद्ध वा सर्वप्रिय करने के लिये कितने सज्जनों ने आत्मोत्सर्ग किया, कितने भद्र पुरुषों ने स्वार्थ को तिलाञ्जलि दी, क्या कोई साहस कर के बतला सकता है ? जब हमारे हिन्दू समाज की यह अवस्था है, जब वह ऐसे घोर प्रतिद्वन्दिता के समय ऐसा निद्रित है। तो जिस के हृदय में थोड़ी भी हिन्दूजाति और हिन्दूधर्म्म की ममता है, उस का हृदय क्यों न आलोड़ित होगा, क्यों न उस के हृदय पर गहरी चोट लगेगी, और ऐसी अवस्था में यदि वह उस को उस की भयंकर निश्चेष्टता से अभिज्ञ करेगा, तो कौन ऐसा मर्म्मज्ञ है जो उस के इस कृत्य को घृणित समझेगा, और उस को हिन्दूजाति का निन्दक बतलाने की चेष्टा करेगा।

अब तक जो कुछ हम ने कहा है उस से यह न निश्चित कर लेना चाहिये कि मैं महान हिन्दूजाति के अलौकिक सद्गुणों से सम्पूर्ण अनभिज्ञ हूं, किम्वा विद्वेषियों समान उस के तमस-अंश प्रदर्शन करने में ही अपना परम पुरुषार्थ समझता हूं। हिन्दूजाति किम्वा हिन्दूसमाज के नेताओं पर यदि कलंकारोपण हो सकता है तो केवल हिन्दूधर्म्म के संरक्षण के विषय में हो सकता है, यदि उन में निर्जीवता, अनुत्साह

और अनात्मोत्सर्ग है, तो इस विषय में है कि वह हिन्दूधर्म्म की नित्य पतनोन्मुख दशा को ठीक ठीक अनुभव नहीं कर सकते हैं, उस के प्रसार एवम् वृद्धि की ओर उन की यथोचित दृष्टि नहीं है, और वह यह नहीं निश्चित कर सकते कि हिन्दूधर्म्म के वर्द्धनोन्मुख संकटों के निवारण के लिये उन के प्रधान कर्तव्य क्या हैं। और यही एक देश ऐसा है कि जिधर समुचित दृष्टि न देने कारण मुझ को आन्तरिक कष्ट से उन के विरुद्ध कुछ बातें कहनी पड़ी हैं। किन्तु इस कथन का यह भाव कदापि नहीं है कि हिन्दूजाति किम्वा इस जाति के अग्रणी सर्वांश में निर्जीव, किंकर्तव्यविमूढ़, निष्कर्म्मा, और उत्साहशून्य हैं। हिन्दूधर्म्म के सिद्धान्तों के पालन करने में, दयादाक्षिण्य आदि सद्गुणों के व्यवहार करने में, आज भी जो सजीवता इस जाति में हैं, आज भी जो उत्साह और कर्तव्यनिष्ठा इन लोगों में उपस्थित है, वह संसार की अन्य जातियों के लिये एक अत्यन्त दुर्लभ सामग्री है। इस जाति में सहस्रों साधु महात्मा और पण्डित जन ऐसे दुरन्त समय में भी इस प्रकार के हैं कि राज्यविभव पर भी उन की दृष्टि सतृष्ण पड़ने में संकुचित होती है, यह महाभाग पुत्र कलत्र से वीतराग हैं, संसार के समस्त सुखों से वीतश्रद्ध हैं, इन में शरीर तक की ममता नहीं होती, मानापमान का इन को ध्यान तक नहीं होता, केवल स्वधर्म्मपालन और स्वधर्म्मकृत्य सम्पादन ही इन के जीवन का प्रधान लक्ष्य होता है। सहस्रों ऐसे सत्पुरुष हैं परोपकार ही जिन का प्रधान व्रत है, सदुपदेशही जिन के जीवन का प्रधान उद्देश्य है, वह आप साधारण कम्बलों को ओढ़ कर अपना समय व्यतीत करते हैं, और याचकों

को प्रसन्न चित्त से वहुमूल्य ऊर्ण वस्त्र प्रदान करने में भी अन्यमना नहीं होते। आज भी हिन्दूसमाज में प्रतिवर्ष करोड़ों मुद्रा दान होता है, करोड़ों मुद्रा दीन दरिद्र और कंगालों के भरण पोषण में व्यय होता है। करोड़ो रुपये आज भी देवमंदिरों के निर्माण में, साधु महात्माओं की सेवा में, पर्वोत्सवों के समारोह में, धर्मशालाओं की सदाव्रतों में लगते हैं। फिर कौन कह सकता है कि हिन्दूजाति में सजीवता नहीं, आत्मोत्सर्ग नहीं, और हिन्दूजाति सद्व्यय करना नहीं जानती। वास्तव बात यह है कि आज कल हम लोग अन्तःचक्षु से काम वहुत कम लेते है, वहिःचक्षुही हम लोगों के लिये सर्वेसर्वा है, और यही कारण है कि हम लोगों की दृष्टि इन सुकार्य्यों पर नहीं पड़ती, और हमलोग हिन्दुओं के विरुद्धकथन करने को उद्यत हो जाते हैं। हिन्दूजाति अपने धर्म्म विश्वास के अनुसार अपने परोपकार का विज्ञापन नहीं देती, अपने उत्तमोत्तम दानों की तालिका नहीं वनवाती, अपने धर्म्मकृत्यों को, अपने धर्म्मोत्साहों को, अपने विश्वविमुग्धकारी उदार भावों को, समाचारपत्रों में मुद्रण नहीं कराती, इसी से आजकल की सभ्यता के अनुरागियों की दृष्टि में उस का समादर नहीं है, और इसी लिये आज वह विद्वेषियों के वाक्वाण का लक्ष्य है। आज इस पवित्र पुण्यस्थल तीर्थराज में, पतितपावनी भगवती भागीरथी के विशालतटों पर जो वीस पचीस लाख धर्म्मप्राण हिन्दुओं की मण्डली समवेत है, और जैसा धर्म्मानुराग और धर्म्मोत्साह इन समस्त समवेत सज्जनों के मुखड़े से प्रगटित है, उस को अवलोकन कर कौन कह सकता है कि हिन्दूजाति मरण काल की अन्तिम स्वासें भर रहा है, कौन कह सकता है कि

हिन्दूजाति निर्जीव है, उत्साहशून्य है, उस में ऐकमत्य नहीं, एक भाव नहीं, एक उद्देश्य नहीं। आज के इस अलौकिक दृश्य को देख कर, असाधारण धर्म्मोन्माद को अवलोकन कर, जिस की आंखें नहीं खुलतीं, जो यह नहीं समझता कि आज भी हिन्दूजाति निष्प्राण नहीं है, आज भी उस के उत्साह की मात्रा विनष्ट नहीं हुई है, वह या तो हिन्दूजाति से विद्वेष परवश है, अथवा उस में गवेषणा और बिचार की शक्ति नहीं है। आज कल किसी राजपथ के किनारे खड़े होकर यदि किसी हृदयवान पुरुष ने पैदल जाते हुए यात्रियों की मण्डली को देखा होगा, और उन के कृश, क्षीण शरीर और कष्टसहिष्णु भाव को अवलोकन किया होगा, तो उस ने अवश्य अपने हृदयपटल पर अंकित किया होगा, कि हिन्दुओं में धर्म्मविषयिणी महाप्राणता अब तक कितनी है। भगवान सरोजिनीनायक अभी उदयाचल चूड़ावलम्बी नहीं हुए हैं, कठोर तुषारपात और शीत से हाथ पांव विवश हैं, उन में बृश्चिक दशन समान पीड़ा हो रही है, इस पर पश्चिमा वायु हृदय के मर्म्मस्थान को विद्ध करती हुई प्रवहमाना है, सुसज्जित गृह के सुरक्षित से सुरक्षित स्थान में शीतातङ्क से बड़े बड़े धैर्य्यवानों का धैर्य्य भी नष्टप्राय है, हृदय कम्पायमान है, किन्तु ऐसे कठोर और कष्टप्रद समय में भी कभी किसी उच्च अट्टालिका के निम्न भाग से कभी किसी सर्वोपस्कर सम्वलित सुधाधवलप्रासादो के सन्मुखस्थ पथों से असंख्य मानवमण्डली प्रवाह की भांति उमड़ी हुई जाती दृष्टिगोचर हो रही है, उन के प्राणोन्मत्तकारिणी श्रुतिमनोहर जयगंगे और हरहर ध्वनि से दिशायें प्रतिध्वनित हो रही हैं, उन के पावों में जूता नहीं

है, अंगों पर पूरा कपड़ा नहीं है, हिम की सहोदरा पश्चिमा वायु इन कपड़ों को भी यथास्थान नहीं रखती, कभी उस को हटा कर हृदय विद्ध करती है। कभी अंग अंग में प्रविष्ट होती है, तथापि यह मानवमण्डली पश्चात्पद नहीं है, और प्रतिपल अपने लक्ष्य की ओर धैर्य्यग्रहणपूर्वक अग्रसर हो रही है। यह मानवमण्डली कौन है ? वही धर्म्मप्राण तीर्थयात्रियों का दल है, और उसी हिन्दूजाति का वह अन्तःपाती है, जिस को हम उत्साहशून्य और प्रथम कोटि का अलस और कर्तव्यविमुख प्रतिपादन करने में त्रुटि नहीं करते। कभी कभी ऐसा दृश्य देखने में आता है कि आकाश घोर घनाच्छन्न है, पानी पड़ रहा है, धड़ाके से बूंदें गिर रही हैं, तीव्र पश्चिमा वायु सनसनाती हुई बह रही है, परन्तु इन यात्रियों की मण्डली को यात्रा से विराम नहीं है, कठोर शीत की ओर भ्रूक्षेप नहीं है, वह भींग गये हैं, थर थर कांप रहे हैं, परन्तु आगे ही बढ़ते जाते हैं, कठोर से कठोर विघ्नबाधा उन के उत्साह को नष्ट नहीं कर सकती, भयानक से भयानक दैवी उत्पात उन को धैर्य्यच्युत नहीं बना सकता, क्या यह निष्प्राणता के लक्षण हैं ? क्या इस में कठोर कार्य्यतत्परता नहीं झलकती ? मृत्यु बड़ी भयावनी वस्तु है, किसी घोर कर्तव्य परायण व्यक्ति किम्वा किसी रणोन्मत्त वीर केशरी के व्यतीत, कोई भी इस को प्रसन्नवदन आलिंगन करना नहीं चाहता, परन्तु इन यात्रियों में कभी कभी ऐसीही महाप्राणता दृष्टिगोचर होती है। गवर्नमेन्ट मेले में कठोर मारात्मक रोग फैलने की सूचना दे रही है, मार्ग में भी सर्वत्र इसी विषय की भयानक चर्चा है, वह स्वयं भी अपनी आंखों प्रतिवर्ष सैकड़ों मनुष्यों का

अचांचक निस्सहाय अवस्था में मरना अवलोकन कर के अनुभव प्राप्त हैं, तथापि उन का हृदय मृत्युभय से भीत नहीं होता, मरणशंका से विचलित नहीं होता वह साग्रह अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर होते है, और अपने अनुष्ठित कार्य की ओर धावमान होते हैं, क्या यह कठोर आत्मोत्सर्ग नहीं है? क्या यह भयंकर आत्मबलि नहीं है? हम इस को 'गतानुगतिको लोकः' कह कर ताच्छिल्य प्रकाश कर सकते हैं, एक अनुपयोगी व्यर्थ का धर्म्माग्रह बतलाकर नाक भौं चढ़ा सकते हैं, हम यह भी कथन कर सकते हैं कि यह एक अविद्याग्रस्त, अतत्त्वदर्शी जाति का शुष्क धर्म्माडम्बर है, निरर्थक क्रियाकलाप है, किन्तु वास्तव बात यह है कि ऐसी कष्टसहिष्णुता, ऐसा दुस्साहस, ऐसा आत्मोत्सर्ग, दिखलाने में स्वयं सर्वथा अक्षम और असमर्थ हैं। हमारी इन कतिपय पंक्तियों को पठन कर के यह भी कहा जा सकता है कि यह सत्यता का श्राद्ध कर के निष्प्रयोजन तिल को ताल बनाना है, जो विषय निस्सार एवम् अत्यन्त साधारण है उस को विशेष रंजित कर के प्रकाश करना कभी न्यायानुमोदित नहीं हो सकता। परन्तु प्रष्टव्य यह है, कि यात्रि-दल में जो कठोर कष्टसहिष्णुता, अपार श्रमशीलता, और मृत्युविपयिणी विचित्र निर्भीकता परिलक्षित होती है, क्या वह कृत्रिम है? मेरा विचार है उन का परम शत्रु भी उस को कृत्रिम कहने के लिये अग्रसर न होगा, क्योंकि कृत्रिमता में स्थायित्व गुण नहीं होता। और जब वह कृत्रिम नहीं है, तो यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि वह चिरसंस्कार जनित किम्वा कठोर धर्म्मानुरागद्वारा परिवर्द्धित एक विचित्र शक्ति है। और ऐसी अवस्था में उस का यथातथ्य निरूपण तिल-

को ताल बनाना कैसे है ? और कैसे ऐसा करना सत्यता का श्राद्ध करना है ? क्या किसी विषय का चित्र ठीक ठीक अंकित करना उस को विशेष रंजित करके प्रकाश करना है ? और जब वह ऐसा नहीं है तो फिर न्यायानुमोदित क्यों नहीं है ? हम यह स्वीकार करेंगे कि हिन्दूजाति का यह धर्म्मोन्माद, यह धर्म्मविषयिणी महाप्राणता समयानुसार विशेष कार्य्यकारिणी नहीं है ? हम यह मानेंगे कि इस प्रकार का धर्म्माग्रह और एकान्त धर्म्माडम्बर आज कल विशेष फलप्रद नहीं है, यह कौन कहेगा कि अपनी आत्मा के लिये ही सब कुछ कर्तव्य नहीं है, अपनी जाति, अपने धर्म्म, के लिये उस से अधिक हम को कुछ कर दिखलाने की आवश्यकता है। यह कौन न मानेगा कि स्वार्थ से परमार्थ उत्तम है, उदरम्भरिता से परोपकार श्रेष्ठ है, देहशुद्धि से आत्मशुद्धि प्रधान है। परन्तु किस प्रकार हिन्दुओं के वर्त्तमान विचार का स्रोत समयानुकूल कर लिया जावे, कैसे हिन्दूजाति की दृढ़ धर्म्मपरायणता और कठोर धर्म्मप्राणता को सामयिक शुभ फलप्रद कार्य्यों के आकार प्रकार में सुगठित किया जावे, कैसे वह धर्म्मपालन की अपेक्षा धर्म्मसंरक्षण को अपना प्रधान कर्तव्य समझें, कैसे वह अपने धर्म्मकृत्यों और धर्म्माचरण को हिन्दूमात्र के लिये उपकारक वो उपयुक्त बना सकें विचारणीय और चिन्तनीय यही है। वास्तव में हिन्दूजाति निर्जीव नहीं है, निष्प्राण नही है, उत्साहशून्य नहीं है, अलस वो कर्तव्यच्युत नहीं है- जिस विषय में उस की सजीवता है, सप्राणता है, उत्साहशीलता है, उद्योग वो कर्तव्यपरायणता है, उसी विषय को उपयोगी बनाकर उस के इन समस्त सद्गुणों को विकासित और समयानुकूल कर

लेने का प्रयोजन है। भगवती भागीरथी के समुद्र दिग्गामी प्रवाह को दूसरी दिशा में प्रवाहित कराने की चेष्टा प्रमाद ही नहीं है, प्रथम कोटि की निर्बुद्धिता है, परन्तु उस समुद्र दिग्गामी प्रवाह में से अनन्त शाखा प्रशाखायें निकाल कर उसी प्रवाह के अपार जलराशि से नाना उपयोगी बिधानों को कर के, स्वल्पायास में थोड़ी बुद्धिमत्ता से, हम अनेक फलप्रद कार्य्य कर सकते हैं, अनेक प्रकार के लाभ उठा सकते हैं, हम को यदि आवश्यकता है तो इसी बात की है। इस मर्म्म को न समझ कर जो अदूरदर्शी हिन्दुओं की वर्त्तमान रीति नीति को जड़ से उखाड़ कर फेंक देना चाहते हैं, हिन्दूजाति की वर्त्तमान शृंखला को छिन्न भिन्न कर डालना चाहते हैं, सर्व प्रकार से मटियामेट कर के उस को फिर से नये आकार प्रकार में गढ़ना चाहते हैं, वह स्वदेश के, हिन्दूजाति के परम शत्रु हैं, उन का किया हुआ कुछ नहीं हो सकता। वह हिन्दूजाति को रसातलगामी बनाने के लिये निस्सन्देह बद्धपरिकर हैं।

प्रिय हिन्दूजाति ! तेरी निर्जीवता निष्प्राणता, किंकर्तव्यविमूढ़ता का गीत गाते गाते मुझ को तेरी सजीवता, सप्राणता और कर्तव्यपरायणता का उल्लेख करना पड़ा। हम को तेरा दुर्बल अंश ही दिखाना अभीप्सित था, सुपुष्ट और बलदृप्त विभाग दिखाने की कोई आवश्यकता न थी, परन्तु जब तक तुझ को अपनी शक्ति का ज्ञान न होगा, अपने यथेष्ट बल से तू अभिज्ञता लाभ न करेगी, उस समय तक तुझ में आत्मावलम्बन जो गुण है उस का विकाश न होगा। अतएव इस उद्देश्य से एवम् तेरे विपक्षियों का भ्रमान्धकार निवारण के लिये अनिच्छा होने पर भी मुझ को ऐसा करना पड़ा।

परन्तु संसार का नियम है कि अपने सद्गुणों की सुख्याति होते देख कर मनुष्य गर्वित हो जाता है, हम को तुझ को गर्वित बनाना अभिप्र नहीं है, अतएव इस अभिज्ञता में जो गर्वान्वित होने का अंश है हम उस के परिहार करने की तुझ से प्रार्थना करते हैं। और अपने दुर्बल अंशों की ओर प्रवृत्त होने का साग्रह अनुरोध करते हैं। तू अपने दोषों की ओर दृष्टिपात कर और समुचित उत्तेजना के साथ उस के क्षालन करने में दत्तचित हो हमारा यही विनीत निवेदन है। तेरा विचार है कि हमारी संख्या आज भी बीस कोटि है, आज भी समुतुंग हिमाचल से समुद्र कूल परिशोभी कन्याकुमारी अन्तरीप तक हमारा धर्म्मकोलाहल तार स्वर से श्रुत होता है- आज भी प्रान्तवर्त्ती अफगानिस्तान से सुदूर स्थित ब्रह्मदेश पर्य्यन्त हिन्दूधर्म्म की विजय भेरी गुरु गम्भीर नाद से निनादित है, आज भी काशी श्रुतिमधुर संस्कृत शब्दोच्चारण से वैसीही मुखरा है, नदिया में आज भी अवच्छेदकावच्छिन्न का वैसाही गगनभेदी कोलाहल है भ्रष्टश्री अवधपुरी दिन दिन अधिक शोभाशालिनी हो रही है, पर्वोत्सवों पर पुण्यक्षेत्र प्रयाग धर्म्मक्षेत्र हरिद्वार आज भी समवेत मानवमण्डली से वैसीही अपूर्व शोभा धारण करते हैं, अब तक घर घर शास्त्र पुराण की चर्चा है, ग्राम ग्राम शास्त्रीय कार्य्यकलाप से पवीत्रीकृत है, फिर चिन्ता का कौन स्थान है ? आतंक और आशंका का कौन स्थल है ? वर्ष में दश पांच हिन्दूकुल कलंक के अन्य धर्म्मग्रहण से हिन्दूजाति उच्छिन्न नहीं हो सकती, स्वदेश और स्वजाति शत्रु कतिपय अपरिणाम दर्शियों के हिन्दूधर्म्म पर अनुचित कटाक्ष करने से इस धर्म्म की विश्वव्यापिनी महिमा मलिन नहीं हो सकती

अगाध
अगस्त्य समुद्र में से सौ पचास घड़ा जल निकल जाने से समुद्र का क्या बिगड़ेगा? पवित्रतोया भगवती भागीरथी में यदि कोई थूक देगा, यदि कोई मूत्र पुरीष कर देगा, तो उस की महिमा में क्या अन्तर होगा। परन्तु यदि सूक्ष्मदृष्टि से विचार किया जावे तो यह विचार समीचीन नहीं है, युक्ति संगत नहीं है, ऐ हिन्दूजाति! यह तेरी महाभयंकर उपेक्षा है। कोई दिन था जब समस्त भूमण्डल पर हमारे हिन्दूधर्म्म का दोर्दण्ड प्रताप था, जब पवित्र वैदिकधर्म्म के झंडे के नीचे समस्त सुसभ्य देश समवेत होता था, अभी कल तक, दिगन्त विश्रुतकीर्ति महानन्द और चन्द्रगुप्त के समय तक, तिब्बत, ततार, अफ़गानिस्तान, और ब्रह्मदेश में भी हिन्दूधर्म्म की विमुग्धकारिणी ज्योति विकीर्णित थी, जावा सुमात्रा और वोर्नियों में भी वैदिक क्रियाकलाप की विकासच्छटा प्रतिविकसित थी, परन्तु कहते हुए मर्म्मपीड़ा होती है कि आज तिब्बत तातार अफ़गानिस्तान और ब्रह्मदेश से भी हिन्दूधर्म्म विताड़ित है, आज सुमित्रा और वोर्नियों में भी उस का समूल संहार हो रहा है, विकृत अवस्था में जावा में वह अब तक विद्यमान है, किन्तु हमारी उपेक्षा से हमारे अमूलक कुसंस्कारों से, आज वह वहां से भी निर्मूल और विध्वंस होने के लिये अग्रसर है। हम इन सब स्थानों को छोड़ कर भारतवर्ष ही को लेते हैं, उसी भारतवर्ष को लेते हैं कि जिस भारतवर्ष में हमारा वैदिकधर्म्म अब समस्त भूमण्डल से संकुचित होकर विश्राम कर रहा है, परन्तु क्या इस भारतवर्ष में इस की दशा संतोषजनक है, जो भारतवर्ष केवल हिन्दूधर्म्म का क्रीड़ाक्षेत्र था, क्या आज उसी भारतवर्ष में उस की वही

निरन्तर वर्द्धनोन्मुख ज्योतिःकला है। हिन्दुओ! जिस समय तुम इस विषय को अभिनिवेश चित्त से विचारो गे, जिस काल इस प्रश्न पर गवेषणापूर्वक दृष्टि डालोगे, उस समय तुम्हारा हृदय चूर्ण होगा, और तुम्हारी निद्रित आंखों से रक्त की धारा निकलने लगेगी, आज उसी भारतवर्ष की २९ कोटि जनसंख्या में केवल २० कोटि तुम हो, शेष ९ कोटि अन्य धर्म्मावलम्बी हैं, इस पुण्यक्षेत्र भारतवर्ष में भी अब एक तिहाई के लगभग अन्य धर्म्मावलम्बी हैं, और केवल दो तिहाई के लगभग तुम रह गये हो। इस अवशिष्ट बीस कोटि संख्या में भी इस समय जो हलचल है, जो असंतोष और अशान्ति है, वह किसी महाभयंकर समय के आने की सूचना दे रही है। जैन सम्प्रदाय हिन्दूधर्म्म की ही एक शाखा है, परन्तु कई सौ वर्ष हो गये कि वह हिन्दूसमाज से विछिन्न हुआ, और अब उस को हिन्दूधर्म्म और हिन्दूजाति से कोई सम्बन्ध नहीं है। ब्रह्मोसमाज आर्य्यसमाज सिखसम्प्रदाय, भी पवित्र हिन्दूधर्म्म की ही शाखा प्रशाखा हैं, परन्तु आज उन्हें भी हिन्दूधर्म्म की गण्डीर में रहना अभीप्सित नहीं है, आज इन को भी हिन्दू बनने वो हिन्दू कहलाने में लज्जा है। थियासोफ़िकल सोसायटी यद्यपि अभी तक प्रगटरूप में हिन्दूसमाज से पृथक् होने के लिये सचेष्ट नहीं है—परन्तु कल क्या होगा—यह भी दूरदर्शियों से छिपा हुआ नहीं है—सिखसम्प्रदाय तीन सौ वर्ष तक हिंदू ही रहा है—हिन्दूधर्म्म का एक अंग कहलाने में ही वह अपनी प्रतिष्ठा समझता था—परन्तु आज उस ने जो रूप धारण किया है—उस को समस्त भारतवर्ष अवलोकन कर रहा है। निदान धीरे धीरे एक एक संप्रदाय,

एक एक हिन्दूधर्म्मान्तर्वर्त्ती सँस्था हिन्दूसमाज से स्खलित हो रही है, और अपने को एक पृथक् समाज और एक अन्य जाति निर्धारण करने में संलग्न है, इस क्रिया का इस हृत्कम्प उपस्थित करनेवाली पद्धति का, हिन्दूधर्म्म एवम् हिन्दूसमाज के लिये कैसा भयंकर परिणाम होनेवाला है, ऐ हिन्दूजाति ! इस समय तेरे लिये यही प्रधान विचारणीय विषय है। किन्तु वास्तव बात यह है कि तेरा ध्यान इस ओर आकर्षित नहीं हुआ है, इस विषय में तेरी ओर से अब तक बहुत कुछ उपेक्षा होती आई है, और अब भी हो रही है, परन्तु यह तेरी बहुत बड़ी निर्बलता है, प्रथम कोटि की अदूरदर्शिता है, और जो कुछ मैं ने तुझपर निर्जीवता आदि का दोषारोपण किया है, वह विशेष कर ऐसेही विषयों के लिये। यह ऐसी मारात्मक विषबटी है, कि अज्ञात में अपना कार्य्य कर रही है, और कुछ दिन में तेरे सुन्दर और निर्दोष अंग प्रत्यंग को छिन्न भिन्न एवम् नष्ट भ्रष्ट कर के रख देना चाहती है। नित्य तेरे प्रतिपालित एक दो प्राणी अल्पायास से या तो अन्यधर्म्मावम्बी हो जाते हैं, अथवा तुझ से ही प्रसूत नाना शाखा प्रशाखाओं में जाकर प्रयुक्त हो जाते हैं, और इस प्रकार तेरा निर्दोष और पवित्र अंक सदा के लिये शून्य कर जाते हैं। परंतु खेद है, और एकांत दुःख का विषय है कि तुझ को अब तक इस विषय की मर्म्मवेदना और अनुभूति नहीं है और तू इस विषय में सर्वथा निरपेक्ष और निष्क्रिय है। आज इस विषय में एक नहीं अनेक शक्तियां प्राणपण से तेरे विरुद्ध कार्य्य कर रही हैं, तेरे अज्ञात में अनेक प्रकार का दाव पेच चल रही हैं, परन्तु तू अपने को अजर अमर अक्षय और सनातन समझ रही है, क्या यह

हृदयविदारी किंकर्तव्यविमूढ़ता नहीं है ? अब वह समय आ गया है, जब तुझ को अपनी सम्पूर्ण शक्तियों के साथ अपने सम्पूर्ण जीवन्त उत्साहों अभूतपूर्व कार्य्यकारिणी क्षमताओं के साथ इधर प्रवृत्त होना अपेक्षित है। तेरे जितने विचार जितने धर्म्मोन्माद, जितने अपूर्व आत्मोत्सर्ग हैं, उन सब को एक सूत्र मे ग्रथित कर, एक भाव द्वारा सुसज्जित बनाकर, अब इस हिन्दूधर्म्म विरोधिनी, एवम् हिन्दूजातिविद्वेषिणी, शक्ति के विरुद्ध कार्य्यकारी और उपयुक्त बनाने की आवश्यकता है। धर्म्मपालन और धर्म्मानुराग प्रदर्शन में जो अमोघशक्ति-शालिनी केन्द्रीभूत तेरी महान क्षमता हैं, आज उसी क्षमता को धर्म्मसंरक्षण के लिये, धर्म्म के प्रसार और वृद्धि के लिये प्रयोग करना तेरा प्रधान कर्तव्य है। हिन्दूधर्म्म की शाखा प्रशाखा स्वरूपिणी नवप्रतिष्ठित संस्थायें यदि सुविस्तृत एवम् विशाल हिन्दूसमाज से पृथक् होने में अपना मंगल समझ रहीं हैं, यदि अपने जन्मदाता, अपने आदिकारणभूत हिन्दूधर्म्म को संकटापन्न देखकर उन का हृदय क्षुब्ध नहीं होता है, वह साहाय्य करना तो दूर यदि धक्के लगाकर हिन्दूधर्म्म को गंभीर गर्त्त में निक्षिप्त कर देना ही अपना परम कर्तव्य समझती हैं, यदि वह हिन्दूसमाज के शिर पर पादाघात कर के स्वयं आकाश में उड्डीयमान होने की चेष्टा में संलग्न हैं, तो भगवान उन का मंगल करे, वह अपने प्रयत्न में लब्धकाम हों, परन्तु ऐ हिन्दूजाति ! ऐ चिन्ता-शील, सरल, उदार, और विशेष अनुभव प्राप्त, हिन्दूजाति ! क्या तुझ को भी उन के साथ तादृश व्यवहार करना ही समुचित है ? यदि वह तुझ से उत्पन्न होकर तेरेही शरीर से पुष्ट होकर, तेरे साथ कुपुत्रवत् व्यवहार कर रही हैं, तो

क्या तू भी कुमाता होने की चेष्टा करेगी ? फिर इस वाक्य की सार्थकता कैसे होगी, "कुपुत्रोजायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति"। यदि वह दुर्दैववश अपनी आधुनिक शिक्षा दीक्षा के उत्कट व्यामोहवश, केन्द्रीभूत शक्ति को ध्वंस करना एकत्रित क्षमता को उन्मूलन करना श्रेयःफल समझ रहे हैं, तो क्या द्वेषपरवश होकर तू भी उन के साथ तदनुकूल आचरण करना उत्तम और नीतिसंगत समझेगी। तू प्राचीनता में जगत की शीर्षस्थानीया है, बुद्धि विवेक ज्ञान में प्राणीमात्र की शिक्षयित्री है, यदि अबोध बालक अपनी अल्पज्ञतावश, अपनी हठ कारिता वश, तुझ से दुर्व्यवहार करे तो क्या तू सदय होने के स्थान पर उस से रुष्ट होगी और उचित शिक्षा देने के स्थान पर उस को नष्ट कर देना उत्तम समझेगी। यदि वह नहीं समझती हैं कि ढाई चावल की खिचड़ी अलग पकाने में असुविधा ही असुविधा है, खिचड़ी पक भी नहीं सकती, उस से क्षुधा भी निवारण नहीं हो सकती, खिचड़ी तभी पकेगी, क्षुधा तभी निवारण होगी, जब वह परिमित चावलों की ढेर में मिल जावेगा और उन चावलों के साथ सुपरिपक्व होने का अवसर पावेगा तो क्या तू धीर गंभीर भाव से उन को इस विषय को नहीं समझा सकती ? हिन्दूजाति तेरे कर्तव्य अब यही हैं कि जिस में हिन्दूजाति का भला हो, बिछुड़े हुए एक हों, जो अबोध हों उन को ज्ञान मिले, जो दुराग्रही हों विनय नम्र बनें, जो उच्छृंखल हैं सुशासित हों, और जिन के हृदय में अदूरदर्शिता तमिस्रारजनी का दुर्दान्तप्रभाव है, उन के हृदय में सद्विचार प्रखर किरण अंशुमाली का समुज्ज्वल प्रकाश हो। एक प्राणी किम्वा एक समाज ऐसा है, विभेद नीति जिस

का प्रधान अवलम्बन है, जन साधारण में कलह और विद्वेषप्रचार जिस का लक्ष्य है, कटुवादिता जिस की प्रिय सहचरी है, और परहृदयपीड़न जिस का मुख्य उद्देश्य है, जो उद्धत और क्षुद्रमना है, उत्पातप्रिय और कुटिल है, एकत्रीभूत का पृथक्करण जिस के हृदय की प्यारी कामना है, और प्राचीन रीति नीति का समूलसंहार ही जिस की प्रधान इच्छा है। परन्तु दूसरा प्राणी किम्वा समाज ऐसा है, जो साम्यवादी है, धीर गंभीर है, मधुरभाषी अथच उदार है, शान्तिप्रिय अथच सहनशील है, जो दुष्टों के साथ भी शिष्टता करता है, शत्रु के साथ भी सद्व्यवहार करने में संकुचित नहीं होता। जो बिछुड़ों को मिलाता है, प्राचीन रीति नीति को आदर करता है, जो आर्त्त का त्राणदाता है, संकटापन्न का बन्धु है। तो अब विचार्य्य यह है कि इन दो बिभिन्न प्रकृति के समाज किम्वा प्राणी में विजयी और सफलकाम कौन होगा? जो चिन्ताशील और विचारवान हैं, वह अवश्य यह सम्मति प्रगट करेंगे कि दूसरी प्रकृति का प्राणी किम्वा समाज ही विजयी और सफलकाम होगा, क्योंकि जो शीर्षस्थानीय और हेड है, वह अवश्य शीर्षस्थान को ग्रहण करेगा, अवश्य हेड होकर रहेगा, प्रकृति के नियम में व्याघातक भी नहीं होता। कुछ काल तक वह अनादृत रह सकता है, उस का श्रम और अध्यवसाय पण्ड हो सकता है, उस का मनोरथ और उद्देश्य बिफल हो सकता है, परन्तु अंत को उसी का आदर होगा, उसी का श्रम और अध्यवसाय पूर्ण होगा, और उसी के मनोरथ और उद्देश्य में सफलता होगी। तेजःपुंजकलेवर भगवान मरीचिमाली कब तक निबिड़ जलदजालसमाच्छन्न रहेंगे, अन्त को उन की

प्रभाशालिनी किरणें भूमण्डल को समुद्दीप्त अवश्य करेंगी। प्यारे सनातनधर्म्मावलम्बियों! शान्तिप्रिय हिन्दू भाइयों! सत्यग्रहण करो, सत्य का प्रचार करो, विचारउन्नत रक्खो, संकीर्णता का परिहार करो, प्राणी मात्र पर दया करो, हिन्दू मात्र को अपना प्राण समझो, सच्चा आत्मोत्सर्ग करो, अदम्य उत्साह से काम लो भारतवर्ष के एक एक रजकण का रत्नसमान आदर करो, एक एक वृक्षों को कल्पपादप समान फलप्रद समझो, देखो सफलता प्राप्त होती है या नहीं? विघ्नबाधा क्या है? असफलता वो अकृतकार्य्यता, कौन वस्तु हैं? जिन का चित्त दृढ़ है? धैर्य्य अचल अटल है? साहस असीम है? जिन में सच्चा आत्मिकबल है, सच्चा धर्म्मोन्माद है, उन के ज्योतिर्म्मय उज्जल नेत्रों के सन्मुख क्या विघ्नबाधा ठहर सकती है? क्या असफलता वा अकृतकार्य्यता मुख दिखला सकती है? एक सच्चा आत्मिकबल ही ऐसी विलक्षण शक्ति है कि यदि तुम्हारे कार्य्यपथ में विघ्न स्वरूप गर्जन करता हुआ अगाध समुद्र तरंगायमान हो तो वीर केशरी पवनपूत के समान तुम उस को भी लीलामात्र ही में उल्लंघन कर सकते हो, यदि गगनस्पर्शी बहुदूर विस्तृत कथित् विशाल पर्वत दण्डायमान हो तो विचित्रकर्म्मा महात्मा अगस्त के समान उस को भी क्षणमात्र में धराशायी बना सकते हो। आत्मिकबल के सन्मुख विश्वब्रह्माण्ड का कोई कार्य्य असम्भव नहीं, कोई विषय दुरुह और दुष्कर नहीं, यह तुम्हारे घर का विश्वदुर्लभ चिन्तामणि रत्न है, तुम्हारी जाति का फलप्रद स्वर्गीयकल्प-पादप है इस को विश्वमोहन मंत्र द्वारा पूत होकर सादर ग्रहण करो, देखो तुम्हारा हृदयस्थल एक स्वर्गीय विलक्षण ज्योतिः-

पुंज से परिपूर्ण हो जाता है या नहीं, और उस की अलौकिक-प्रभा से भारतवर्ष का प्रत्येक प्रान्त ही नहीं, यूरप और अमेरिका पर्य्यंत आलोकित होता है या नहीं। तुम लोगों में आज भी महाप्राणता है, तुम लोग आज भी सशक्त हो, आज भी सजीव हो. तुम लोगों की प्रत्येक शिरा में आज भी ऊष्ण रक्त प्रवाहित है, तुम लोगों के हृदय में आज भी अपूर्व स्पन्दन है, देखो सावधान हो जाओ। तुम लोगों में आज भी धर्म्मार्थ उत्सर्गीकृतजीवन महाराजाधिराज हैं, आज भी धर्म्मगतप्राणधन कुबेर वैश्य महाजन हैं, आज भी महर्षि-कल्प महात्मा है, आज भी बृहस्पतिसमान मनीषी हैं, आज भी सहस्रों कर्म्मवीर है, आज भी सैकड़ों उत्साह की जीवन्त-मूर्त्ति हैं, देखो अपनी इस अमोघ शक्ति को स्मरण करो। और अपने इन समस्त सद्गुणों को, और अपनी इन अमोघ शक्तियों को, केन्द्रीभूत करो, उन को कार्य्यकारिणी बनाओ, तुम्हारी विजय अचल अटल है, तुम्हारी सफलता विधाता की अखण्ड लिपि है, देखो समस्त भूमण्डल को शब्दायमान करके यह कैसी श्रुति मधुर देववाणी श्रवणगोचर हो रही है।

उद्यमम् साहसम् धैर्य्यम् बलम् बुद्धिम् पराक्रमम्।
षड़ेते यस्य विद्यन्ते तस्मात् देवोऽपि शंकते॥

शान्तिरस्तु।

विज्ञापन ।

सच्चीमैत्री

मैत्री का आदर्श

पण्डित ईश्वरीप्रसाद शर्मा लिखित.

Friendship, peculiar boon of heaven,
The noble mind's delight and pride,
To men and angels given,
To all the lower world denied

—*Johnson.*

Friendship! mysterious cement of the soul!
Sweetner of life! and soldier of Society!
—*Robert Blair*

पटना—"खड्गविलास" प्रेस—बांकीपुर।
बाबू चण्डीप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।
१९११

प्रथमवार]   [मूल्य एक आना।

सच्ची मैत्री

वा

मैत्री का आदर्श ।

मित्रता दो मनुष्यों के ही बीच पैदा हो सकती है और वे दो भी ऐसे जिन में परस्पर रक्त का लगाव न हो, अर्थात् जो भिन्न २ कुलों के उत्पन्न हों। ऐडिसन साहब की उक्ति है कि "Our friends join us in our griefs and joys, diminishing the one and augmenting the other" अर्थात् हम लोगों के मित्र हमारे दुःख सुख में शामिल हो कर पहले को घटाते और दूसरे को बढ़ाते हैं। परन्तु हाय! काल की वक्रचाल में पड़ कर जैसे और २ प्राचीन वस्तुएं विलुप्त हो गयीं उसी प्रकार सच्चे दोस्त भी दुर्लभ हो गये। यही देख शेक्सपियर ने लिखा है कि "Faithful friends are hard to find." अर्थात् सच्चे दोस्त मुश्किल से मिलते हैं। आज कल ऐसे दोस्त नहीं पाये जाते जो आजन्म मैत्री निबाहे। दोस्ती पैदा कर लेना सहज है पर उसे कायम रख कर दिन दूना रात चौगुना पुष्ट करना बड़ी मुश्किल बात है। प्राचीनकाल में प्रत्येक मित्र अपने मित्र के लिये, अपने सारे सुखों का उत्सर्ग करने को प्रस्तुत रहता था:

पर श्रव तो मनुष्ये ऐसों ही की संख्या बढ़ गयी है जो सदा अपने मित्र को धोखा देने की घात में लगे रहते है। 'मित्र' यह शब्द उच्चारण करने पर तुरत ही श्रीराम और सुग्रीव, ऐन्टोनियो और वैमेनियो तथा डामन और पोथियस आदि सच्चे मित्रों की स्मृति जाग उठती है।

अधिक बात चीत करने और सदा मेलमिलाप करते रहने से ही मैत्री उत्पन्न हो सकती है। एक चाल, व्यवहार और प्रकृति के दो मनुष्य यदि कुछ दिनों तक एक संग रहे तो अवश्य उन के बीच गाढी दोस्ती हो जा सकती है, यह बात प्रकृति सिद्ध है। जो मैत्री उपर्युक्त कारणों से उत्पन्न होती है वह अधिकतर सच्ची उतरती है। जो दोस्ती कच्ची उमरवाले बालकों के बीच पैदा होती है वह चिरस्थायी होती है। अमीरों के दोस्त तो प्राय: ही कपटी हुआ करते है, क्योंकि अमीरी और दोस्ती मे आकाश पाताल का सा अन्तर है। यह स्वर्गीयप्रेम दरिद्रों की ही कुटी में प्राप्तव्य है।

अगर तुम सच्चे दोस्त होना चाहो तो सब से पहले सहिष्णुता का गुण प्राप्त करो, जिस में कि तुम अपने मित्र की प्रत्येक बात बर्दाश्त कर सको, नहीं तो मित्रता में बाधा पहुचने की सम्भावना है। शेक्सपियर कहते है :—A friend should bear a friend's infirmities अर्थात् मित्र को अपने दोस्तो के भ्रम प्रमाद को सहन करना चाहिये।

वारविक साहब का कथन है कि He is a happy man that has a true friend at his need अर्थात् वह धन्य है जिसे वक्त पर काम आनेवाला सच्चा मित्र है। सच्चे मित्रों की पहचान यह है कि वे एक दूसरे की सहायता करते, एक दूसरे के भ्रम दोषों को क्षमा और सहन करते एवं दुःख-सङ्कट आ पड़ने पर साथ २ उसे भोग करते है। यथार्थ में मनुष्य को बड़े पुण्य से सच्चे मित्र होते हैं। जिस को ऐसा मित्र है वह सचमुच बड़ा बड़-भागी है जैसा कि ऊपर कहा गया है। जिस को ऐसे मित्रों के सङ्ग रहना होता है, ऐसे मित्रों के साथ प्रेमालाप होता है, उस से बढ़ कर पुण्यवान् इस त्रिलोकी में और कोई नहीं।

दुःख में ही खरे खोटे मित्रों की पहचान होती है। बिना आग में तपाये काञ्चन की असलीयत नहीं जानी जाती।

ऊपर सच्चे मित्रों की जैसी पहचान लिखी गयी है वैसे ही दो सच्चे मित्रों का उपाख्यान नीचे लिपिबद्ध किया जाता है। जिस से पाठकगण उपर्युक्त बातों का चित्र पूर्णरूप से अपने मनः-पट पर चित्रित कर के सच्चे मित्रों को ग्रहण और कपटी मित्रों को त्याग करने में समर्थ हो सकेंगे।

—:o:—

(१)

रामसुन्दर राय और हरिचरण दत्त के बीच गाढ़ी मैत्री थी। इस मैत्री का जन्म इन की बाल्यावस्था में ही हुआ था। ज्यों२ इन की उमर बढ़ती गयी त्यों त्यों इन की मैत्री की मात्रा भी बढ़ती गयी। बाल्यकाल में इतना एक का दूसरे के प्रति अनुराग था कि वे अलग अलग नहीं रह सकते थे, अलग रहने से उन को व्यथा होती थी। इस कारण रामसुन्दर के पिता, जो उस समय अच्छी हालत मे थे, हरिचरण को अपने घर ले आये और उस का प्रतिपाल करने लगे। दोनो एक ही बार कालेज में भर्त्ती हुए और एक ही वर्ष बी॰ ए परीक्षा पास कर कालेज से निकले। अपनी मैत्री और अधिक गाढ़ी करने के लिये उन्हों ने एक ही परिवार की दो सुन्दरी कन्याओं का पाणि-ग्रहण किया। इन की पत्नियों मे भी बड़ा सख्य था। इस तरह अधिक दिन इन्हों ने अतिवाहित किये, परन्तु इन मे अभीतक विच्छेद नहीं हुआ। और इन्हो ने प्रतिज्ञा की कि जीवन के अवशिष्ट दिन भी इसी तरह एक साथ ही व्यतीत करेंगे; परन्तु "आपने मन कुछ और है, कर्त्ता के कुछ और।" रामसुन्दर को डेपुटी मैजिस्ट्रेटी मिल गयी क्योंकि उस के पिता का बड़ा प्रभाव था और उन्हों ने बड़ी बुद्धिमानी के साथ सरकार की नौकरी की थी। बिचारे हरिचरण को क्लर्की ही पर सन्तोष करना पड़ा। बस, दोनों के वियोग होने का समय के बाद ही आया। रामसुन्दर को कलकत्ते से किसी

दूसरी जगह बदली हो गयी और हरिचरण कलकत्ते में ही रहा। परन्तु इस से मैत्री की मात्रा न घटी—दोनों परस्पर पत्र व्यवहार करते रहे। अब दोनों दोस्तों की दोस्ती केवल उन्हीं दोनों तक न रही, किन्तु दोनों, दोनों की बहुओं का भी ख्याल करते थे।

रामसुन्दर कभी भी काम से छुट्टी लेकर घर नहीं आते थे। हरि का हृदय उन्हें देखे बिना सदा व्यथित होता था। कई वर्ष अतिवाहित हुए, रामसुन्दर घर नहीं आये। अकस्मात् उनके पिता की मृत्यु हो गयी। अबकी वार आवश्यकता से विवश हो कर उन्हें आना पड़ा। इस समय दोनों मित्रों को परस्पर एकत्र रहने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ, किन्तु पिता का श्राद्ध समाप्त होते ही रामसुन्दर फिर वहीं चले गये।

(२)

हरिचरण की पत्नी का नाम श्रीमती विनोदिनी था। आपने रूप, गुण और यौवन सब कुछ पाया था। आप रामसुन्दर की स्त्री प्रमदा की अपेक्षा अधिक बुद्धिमती थीं, किन्तु उन का मिजाज बड़ा शक्की था, पर इस से किसी दूसरे को कुछ हानि नहीं होती थी।

उन को यह बात ज्ञात थी कि हरिचरण १३०) रु० मुशाहरा पाते हैं पर उन को ८०) रु० से अधिक लाते विनोदिनी देवी

ने कभी नहीं देखा। इसी से उन को शक हुआ कि मेरा पति अपर स्त्री से प्रेम रखता है। वे कहती थीं कि यदि वे (हरि-चरण) किसी दूसरी से प्रीति नहीं करते तो पचास रुपये प्रतिमास क्या कर डालते हे ? विनोदिनी को गहने कपड़ों का ख्याल नहीं था, वे केवल स्वामी के प्रेम की भिखारिणी थीं। स्वामिप्रेम से वञ्चित होना वे सब दुःखों की अपेक्षा अधिक कष्टकर समझती थीं।

जिस समय रामसुन्दर सपत्नीक पिता का श्राद्ध करने आये उस समय विनोदिनी ने अपने शक की बात प्रमदा से कही और वह प्रमदा के द्वारा रामसुन्दर के कानों तक पहुंची। उन से यह बात सही न गयी कि मेरा प्यारा मित्र अपनी स्त्री को छोड़ दूसरी रमणी से प्रेम करे। बस, विना विचारे एक दिन अपने मित्र को कोसने लगे। उस दिन, दुरदृष्ट वशात्, हरि-चरण को उस के ऊपर वाले एक अफिसर ने भर्त्सना की थी। एक तो वे उसी के लिये दुःखित थे तिस पर डिपुटी बाबू का कोसना हुआ। बस, आप आपे से बाहर हो गये और शायद यह पहली ही बार थी कि उन दोनों की जिह्वा से कड़े शब्द निकले। इस के चार ही पांच दिन के बाद रामसुन्दर की छुट्टी की अवधि पूरी हो गयी और वे स्त्री को ले नौकरी पर चले गये। किन्तु हाय। हरिचरण अपने को निर्दोष प्रमाणित न कर सके और शकाग्नि में उन दोनों की दोस्ती की मात्रा घट गई।

(२)

रामसुन्दर को गये एक महीना हुआ होगा कि एक दिन रात्रि के समय जब हरि अपनी प्रियतमा के साथ सुख की नींद ले रहे थे उसी समय किसी ने बाहर से दरवाजा खटखटाया। इन की नींद टूट गयी और जल्दी बाहर आये तो तारप्यून Telegraph messenger ने इन के हाथ में एक Urgent telegram अर्जेण्ट तार दिया। चट पत्र का अवरण हटा कर जो पढ़ा उस से उन का माथा घूम गया। दरवाज़ा बन्द कर आप विनोदिनी के पास आये जो इन के प्रत्यागमन की प्रत्याशा से तथा कौन आया, क्या कहता था, इत्यादि जानने के अर्थ उद्ग्रीव हो बैठी थीं, उन के उदास बदन मण्डल को निरीक्षण कर पतिपरायणा विनोदिनी जल्दी से उन के समीप आयी, और बोली, "प्यारे! बात क्या है?" टेलिग्राम दिखाकर वे बोले, "राम बीमार है, बचने की उमीद नहीं है। मै अभी जाऊंगा।"

वि०—अभी! सो कैसे हो सकेगा? उन को क्या हुआ है?

हरि०—सो मै नहीं जानता। केवल तार से लिखा है कि "पिता बीमार है, बचने की आशा नहीं, शीघ्र आइये।" राधा (राम के पुत्र) ने भेजा है। इस समय तो नहीं लेकिन काल्ह साढ़े सात बजे सुबह को रवाना हो जाऊंगा।

उस रात को निद्रादेवी ने फिर उन की आखो पर कृपा नहीं की। तडके ही उठ साढे सात बजे की ट्रेन से वहा के लिये रवाना हो गये जहा इन के मित्र थे। जब वे वहा पहुचे तब

राम को बड़ी बुरी अवस्था में देखा। हरिचरण ने, जिन डाक्टरों को वे सुयोग्य समझते थे, उन्हें बुलाया। किन्तु हाय दोही दिन बाद गवर्न्मेंण्ट ने अपना एक सुयोग्य कर्म्मचारी, हरिचरण ने अपना एक दिली दोस्त तथा प्रमदा ने अपना सर्व्वस्व खो दिया !!!

(४)

रामसुन्दर की मृत्यु के उपरान्त हरिचरण ने अपने मृत मित्र की पत्नी तथा उस के लड़की के प्रतिपाल्न करने का भार अपने ऊपर लिया। उन्होंने देखा, यद्यपि राम बाबू अच्छी तनख्वाह पाते थे तथापि अपने पीछे कुछ भी नहीं छोड़ गये। केवल उन की स्त्री के गहने तथा कलकत्ते में एक मकान, यही सम्पत्ति उन के पीछे बची जो उन की आमदनी के देखते कुछ भी नहीं थी। हरिचरण ने राम बाबू के परिवार को अपने ही घर मे स्थान दिया और उन के खास मकान को किराये पर दे दिया। प्रतिमास उस मकान का किराया वे राम की विधवा स्त्री को दे दिया करते थे।

एक वर्ष इसी प्रकार बीत गया। तिस के बाद एक दिन हरिचरण को सर्दी लग गयी और क्रम से उस बीमारी के लक्षण उन में भी देख पड़ने लगे, जो उन के मित्र की मृत्यु का कारण हुई थी। डाक्टर लोग बुलाये गये, उन की दवा की गयी, प्रमदा और विनोदिनी ने अच्छी तरह सेवा की, परन्तु सब ही यत्न विफल हुए। दस दिन बीमार रह कर हरिचरण बाबू

अपनी पत्नी तथा दो निर्बोध शिशु और राम बाबू के परिवार को रोते विलखते छोड़ इस असार संसार से चल बसे !!!

अपनी मृत्युशय्या पर जब वे शायित थे तब कई वार नृत्य बाबू से मिलने की इच्छा आप ने प्रकट की थी। किन्तु इन की पत्नी इत्यादि पर यह बात विदित नहीं थी कि नृत्य बाबू कौन है? उन की मृत्यु के पश्चात् उन के कितने ही हेली मेली उन के परिवार के साथ सहानुभूति दिखाने आये, परन्तु नृत्य बाबू को किसी ने नहीं देखा। विचारी दोनों विधवाएं किस कष्ट से अपना जीवन निर्वाह कर रही थीं वह वर्णनातीत है। श्राद्ध हो जाने के एक मास पश्चात् एक भले मानस विनोदिनी के साथ मिलने को आये। पहले तो शक्की विनोदिनी ने भेंट करने से म.फ नाहीं कर दी, पर जब इन्हों ने अपना नाम नृत्य गोपाल बनर्जी बतलाया तब इन्हों ने सोचा, "क्या यह वही नृत्य बाबू है जिन्हे वे (मेरे पति) मरने के समय खोजते थे?" बस, इसी को ठीक जान उन्हों ने भेंट करना स्वीकार किया।

नृत्य बाबू दालान में बैठे और चिक के अन्दर से विनोदिनी उन की बातें सुनने लगीं। उन्हों ने कहा, "हरि बाबू ने एक दानपत्र [॥।॥] लिखा है जिस में आप ने अपनी सोलह सहस्त्र मुद्राओं में से दस सहस्त्र अपने लड़के और स्त्री एवम् शेष छः सहस्त्र मुद्राओं को प्रमदा और उस के बेटे को देन

की इच्छा प्रकट की है। आप लोग कहें तो मैं अभी रुपया दे दूं।"

विनोदिनी इन बातों को सुन कर आश्चर्यान्वित हो गयी और उन्हों ने कहा, "मैं यह बात नहीं जानती थी, पर आप ने निष्कपट भाव से सब बातें मुझ से कह दीं और रुपये देने को भी राजी हैं। फिर मैं यह कहना चाहती हूं कि आप उन रुपयों को अपने ही पास रखें और हम लोगों के रक्षक स्वरूप यहीं रहें। आप को मंजूर है?"

नृत्य बाबू ने हां किया। उन्हीं के प्रबन्ध से सब कार्य्य होने लगा। लड़के स्कूल में शिक्षा पाने के लिये भेज दिये गये। उन दोनों विधवाओं की जीवनलीला तब समाप्त हुई जब उन के पुत्र पूर्ण रूप से शिक्षित हो उच्च पद पर आसीन हुए।

अब पाठकों को मालूम हो गया होगा कि हरि पचास रुपये मासिक क्या करते थे, वे अपनी स्त्री को छोड़ किसी दूसरी को नहीं चाहते थे। उन्हो ने अपने दोस्त की फजूल-खर्ची देख कर उन के बालबच्चों के लिये भी धन सञ्चित कर रखा था। धन्य। ऐसे मित्र अब नहीं देखे जाते, अब तो जिन्दगी ही में दोस्ती निबाहना मुश्किल है। मरने के बाद की कौन चलावे? यहां तो लोग इसी ताकझांक में रहते हैं कि कैसे मित्र का गला घोंट लें। ऐसा करने में आकबत को भी वे लोग भूल हैं।

"अभी तो आराम से गुज़रती है।

आक़बत की ख़बर ख़ुदा जाने।"

हाय। कुटिल काल॥ तेरे ही कुचक्र में पड़ कर दुनियां कुछ की कुछ हो गयी है :—

"ज़मीने चमन गुल खिलाती है क्या क्या,

बदलता है रंग आसमां कैसे कैसे।"

हा। अब वह दिन कहां है, जब इस भारतवर्ष में राम सुग्रीव से सच्चे मित्र उत्पन्न होते थे। जब यहां नियम था कि "जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिनहिं विलोकत पातक भारी।" हा। वह समय अनन्त कालार्णव में निमग्न हो गया। परन्तु इस निकृष्ट समय में भी कभी २ कोई मित्र सच्चे निकलते हैं। ईश्वर हरिचरण के समान सच्चे मित्रों को सदा सुखी रखे, यही हमारी उन से प्रार्थना है। और साथ ही करबद्ध हो यही वर मांगते हैं कि सदा ऐसे ही मित्रों को पृथ्वीतल पर आविर्भूत करें।

इति शुभम्।